हरिदास संस्कृत सीरीज ३८७

षडाम्नायतन्त्रम्

सविमर्श 'निर्मला' हिन्दी अनुवाद सहित

व्याख्याकार

डॉ. रूपेश कुमार चौहान

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

हरिदास संस्कृत सीरीज
३८७

***

षडाम्नायतन्त्रम्

सविमर्श 'निर्मला' हिन्दी अनुवाद सहित

व्याख्याकार :
डॉ. रूपेश कुमार चौहान
एम. ए. एम. फिल.,पी-एच.डी.
नेट/जे. आ. एस. (संस्कृत) नेट (इतिहास)
तदर्थ असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
जाकिर हुसेन कॉलेज, नई दिल्ली

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि०सं० २०७४, सन् २०१७

ISBN : 978-81-7080-485-7

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफ़िस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

भूमिका

संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषा है। इसमें समस्त वैदिक साहित्य, स्मृतियां, पुराण, और अनेक महाकाव्य, काव्य नाटक तथा असंख्य तन्त्रग्रन्थ आते हैं। समस्त संस्कृत वाङ्मय को दो भागों में विभक्त करने की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। अतः समग्र वाङ्मय दो भागों में विभक्त है, वे हैं—निगम और आगम। तदनुसार भारतीय संस्कृति निगमागम मूलक है। निगम-आगम क्या हैं, इस विषय में कुलूकभट्ट का कथन है कि इश्वरप्रणीत धर्मग्रन्थ दो प्रकार के हैं—वैदिक और तान्त्रिक। द्विविधा हि ईश्वर प्रणीता मन्त्राग्रन्था वैदिका तान्त्रिकाश्च।

देवी भागवत पुराण में निगम शब्द की व्युत्पत्ति है 'निगम्यते ज्ञायतेऽनेन इति निगमः'—अर्थात् जिसके द्वारा किसी भी विषय अथवा तत्त्व को जाना जाता है, उसे निगम कहा जाता है।

वैसे भी 'नि' उपसर्गपूर्वक 'गम्' धातु में तत्रभवः से 'अण्' प्रत्यय से निगम शब्द बना है। 'गम्' धातु जाने, पहुंचने तथा ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त होती है तथा 'नि' उपसर्ग का अर्थ निश्चित रूप से है, अतः निगम का अर्थ हुआ कि निश्चित रूप से किसी तथ्य, तत्त्व अथवा विषय तक पहुंच सके, उसे जान सके, उसे निगम कहा जायेगा। इस दृष्टि से वैदिक साहित्य ही निगम की संज्ञा का अधिकारी है, क्योंकि वैदिक साहित्य मानव का उचित मार्गदर्शन करता है।

आगम शब्द की व्याख्या करते हुए वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि 'आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद् अभ्युदयनिःश्रेयसोपायाः स आगमः' अर्थात् जिससे कल्याणकारी उपाय बुद्धि में आते हैं, आरोहण करते हैं, वह आगम है।

ऐसे भी यदि हम आगम शब्द की व्युत्पत्ति करें तो 'आ' उपसर्ग पूर्वक 'गम्' धातु में 'अच्' प्रत्यय से आगम शब्द बनता है। आ उपसर्ग आ = समन्तात् के अनुसार समन्त अर्थ में आता है तथा इसका अर्थ विशिष्ट क्रम भी है, समन्त का अर्थ होगा सम्यक् प्रकार से अन्त तक, जो पूर्ण की पराकाष्ठा है तथा गम् धातु तो जाने, पहुंचने और जानने के अर्थ वाली है ही, अतः आगम शब्द का अर्थ हुआ जिसके द्वारा सम्यक् प्रकार से आदि से अन्त तक विशिष्ट क्रम से तत्त्व विषय अथवा तथ्य तक पहुंचा जा सके, उसे आगम कहा जायेगा। इस व्याख्या के अनुसार आगम-निगम से भी महत्त्वपूर्ण साहित्य माना जा सकता है। इसीलिये जिन धर्मनिष्ठ विद्वानों की तन्त्रमार्ग पर असीम श्रद्धा है, उन्होंने तन्त्र साहित्य को पञ्चम वेद कहा है। बंगाल प्रदेश के शाक्त विद्वान् तो तन्त्रग्रन्थों को वेदों से भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

प्राचीनकाल से ही निःश्रेयस साधना की दो धारायें भारत में चली आ रही हैं।

परम्परानुसार आगमशास्त्र (तन्त्र साहित्य) के प्रवर्तक आदिनाथ श्री शंकराचार्य माने गये है, क्योंकि इन्होंने ही इसका सामाजिक प्रवर्तन किया है, परन्तु तन्त्र साहित्य के आदिकर्ता स्वयंभू नारायण ही कहे गये हैं। शारदातिलक में आगम का अर्थ बताते हुए कहा गया है कि जो शंकर के मुख से आये हुए हैं तथा पार्वती के कानो में गये हुए हैं, उस परम पावन शास्त्र को आगम कहा गया है।

आगतं शिववक्त्रेभ्यो: गतं च गिरिजाश्रुतौ।
तदागम इति प्रोक्तं शास्त्रं परम पावनम्।।

इस उपर्युक्त श्लोक में आगम (तन्त्र साहित्य) की भी वेदों के समान ईश्वरनिर्मितता सिद्ध होती है। तन्त्रशास्त्र के श्रेष्ठ ग्रन्थकार भास्कर राय के अनुसार वेदों का अनुगमन करने के कारण तन्त्रों का परत: प्रामाण्य है। कुलार्णव तन्त्र में कौलागम को वेदात्मक शास्त्र कहा गया है। इस परम्परा के अनुसार आगम (तन्त्रशास्त्र) वेदतुल्य माना गया है। सम्भवत: इतना ही भेद है कि वेद सवर्णों के लिये ग्राह्य हैं; परन्तु आगम चारों वर्णो के लिये ग्राह्य है, परन्तु मैं इस परम्परा को नहीं मानता हूँ। इस परम्परा ने ही हिन्दू धर्म का बहुत ह्रास किया है।

तन्त्र साहित्य कोई सामान्य एवं सीमित साहित्य नहीं है। इसमें लाखों ग्रन्थ आते हैं। असंख्य ग्रन्थ तो अभी संग्रहालयों एवं मठों में पाण्डुलिपि रूप में स्थित हैं तथा अनेकों ग्रन्थ यवन शासकों की क्रोधाग्नि में सदा-सदा के लिये विलुप्त हो गये। इसका प्रमाण नालन्दा विश्वविद्यालय में ग्रन्थों की भस्म दे रही है। जो भी हो, जो भी साहित्य उपलब्ध है, वह कम तथा कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह तन्त्र साहित्य केवल हिन्दू साहित्य में ही नहीं है, जैन साहित्य में, नमस्कार मन्त्र कल्प, प्रतिष्ठा कल्प, चक्रेश्वरी कल्प, ज्वालामालिनी कल्प, पद्मावती कल्प, सूरिमन्त्रकल्प, वाग्वादिनी कल्प, श्रीविद्या कल्प, वर्धमान विद्या कल्प, रोगापहारिणी कल्प आदि अनेक तन्त्र ग्रन्थ विद्यमान हैं।

बौद्ध साहित्य में, वसुधारा कल्प, घण्टाकर्ण कल्प, तारा कल्प आदि अनेक ग्रन्थ हैं। वैदिक साहित्य में तो इनका एक अलग भण्डार ही है।

अत: तन्त्रशास्त्र केवल हिन्दुओं का ही साहित्य नहीं है, यह किसी न किसी रूप में सब धर्मों में प्रचलित है।

जब हम तन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हैं तो तनु = विस्तार अर्थ वाली धातु में 'ष्ट्रन्' प्रत्यय से तन्त्र शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'तन्यते विस्तार्यतेऽनेन इति तन्त्रम्' अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाता है, वह तन्त्र है तथा यही तन्त्र त्रै = रक्षात्मक धातु से भी बन सकता है। तब इसका अर्थ होगा 'त्रायते साधकान् इति तन्त्रम्' अर्थात् जो साधकों की रक्षा करता है, वह तन्त्र है।

तन्त्र की प्राचीनता—तन्त्र शब्द के व्यवहार को देखते हुए यह कहना मिथ्या न होगा कि तन्त्र प्राचीन तो है, परन्तु वेदों से प्राचीन नहीं है, क्योंकि प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में तन्त्र करघे के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अष्टाध्यायी, महाभाष्य, याज्ञवल्क्य स्मृति १/२२८, कौटिल्य अर्थशास्त्र, चरक, बृहस्पति आदि ने तन्त्र का अर्थ युक्ति या सिद्धान्त माना है। वाद में अथर्ववेद में और प्राय: अधिकांश पुराणों में तन्त्रविद्या का परिचय प्राप्त होता है। अत: तन्त्रविद्या अधिक प्राचीन नहीं है। रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है कि यह महाविद्या वशिष्ठ ऋषि के समक्ष प्रकट हुई थी। उसने इसे जानने के लिये वशिष्ठ से बुद्ध के पास चीन देश जाने को कहा। यही नहीं, यह भी कहा कि उस बौद्ध देश चीन को जाओ, जहाँ अथर्ववेद भी है तथा उन्होंने वहाँ पञ्चमकारों के उपयोग का निर्देश भी दिया। (रुद्रयामल तन्त्र, पटल ७, श्लोक १२१-१२३, १२५, १३५, १५२-१५३, १५७-१५८, १६०-१६१)। इससे तो यह भी सिद्ध होता है कि यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र विद्या का उत्तम ग्रन्थ अथर्ववेद चीन से लाया गया अथवा चीन देश में महात्मा बुद्ध द्वारा ले जाया गया हो, फिर बाद में लाया गया है।

वैसे ऐन्द्रजालिक विद्या के रूप में 'वेदों' में इसकी चर्चा मिलती है, परन्तु जादू-टोना के रूप में इसकी निन्दा की गई है। अथर्ववेद में वशीकरण और रोगोत्पादक कीड़ों को नष्ट करने वाले मन्त्र मिलते हैं (अ० ३/२५ तथा २/३०)। विन्टरनित्ज के अनुसार पाँचवीं-छठी शताब्दी पूर्व भी तन्त्र साहित्य की उत्पत्ति हुई होगी।

एल० वेगर के अनुसार सातवीं शती में ही चीनी अनुवाद हुए थे, तन्त्रों में दुर्गापूजा का बहुत महत्त्व है। यह दुर्गा परवर्त्ती वैदिक काल की देवी है। तन्त्रों के अनेक तत्त्व अथर्ववेद ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों में भी प्राप्त होते हैं। पुराणों में स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, कालिकापुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि में तन्त्रों का वर्णन मिलता है। यही नहीं, महाभारत में भी तन्त्रों का वर्णन उपलब्ध होता है। विन्टरनित्ज महोदय का दृष्टिकोण तन्त्रविरोधी प्रतीत होता है। वे पुराणों और तन्त्रों को हीन कोटि के लेखकों की कृतियाँ मानते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने तो पुराणों और तन्त्रग्रन्थों को पाखण्डियों के ग्रन्थ कहा है, परन्तु यदि गम्भीरतापूर्वक देखा जाये तो वास्तव में पुराण और समस्त तन्त्रग्रन्थ पाखण्डियों की रचनायें हैं, फिर भी इनमें कहीं-कहीं वैज्ञानिकता अवश्य झलकती है। यद्यपि विन्टरनित्ज महोदय ने यह भी कहा है कि यद्यपि तन्त्र स्पष्टत: वेदों के विरोधी नहीं हैं, तथापि उनका कहना है कि वेदविहित कर्म हमारे युग में नहीं चल सकते। कुलार्णव तन्त्र में वेदों की निन्दा की गयी है। उसमें वेदों को गणिका इव कहा है, तथापि समयमार्ग का सम्पूर्ण साहित्य पञ्चशुभागम वेदों को ही प्रमाण मानता है।

तन्त्र साहित्य की विशेषतायें—परम पूज्य महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा

माननीय विन्टरनित्ज के कथनों में अवश्य सारगर्भिता है, परन्तु ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि तन्त्र साहित्य निराधार और निरर्थक है। इसमें उपनिषदों की भाँति ब्रह्मचिन्तन है, साथ ही इनमें आगम और निगम दोनों परम्पराओं का पालन किया गया है। आगम को जहाँ तन्त्राम्नाय और निगम को वेदाम्नाय कहा गया है, वहाँ इसके अन्य अर्थ भी हैं। इन ग्रन्थों में पार्वती शिव सम्वाद है। पार्वती शिव से प्रश्न करती हैं, शिव उनका उत्तर देते हैं। अत: जब पार्वती प्रश्न करती हैं और शिव गुरु की भाँति उत्तर देते हैं, तब उसे आगम कहते हैं तथा जब शिव शिष्य की भाँति प्रश्न करते हैं और पार्वती गुरु की भाँति उत्तर देती हैं, तब उस ग्रन्थ को निगम कहते हैं।

तन्त्रसाहित्य पूर्ण रूप से दर्शनशास्त्र पर अवलम्बित है। तन्त्रसाहित्य में अनेकों ऐसे ग्रन्थ हैं, जो केवल ब्रह्मचिन्तनपरक हैं। जैसे कि महार्णवतन्त्र एक तन्त्रग्रन्थ है, जिसमें शाक्त सम्प्रदाय का सर्वोत्तम रूप पाया जाता है। भले ही यह ग्रन्थ प्राचीन नहीं, फिर भी हर प्रसाद शास्त्री के अनुसार गीता के बाद यही रचना सम्भवत: सबसे लोकप्रिय हुई है। इसमें उपनिषदों की भाँति ब्रह्मचिन्तन है। यहाँ परमात्मा पिता के रूप में न होकर माता के रूप में आराध्य रहा है। इसमें शक्ति प्रकृति की पूजा की गयी है। शाक्त दर्शन में प्रयुक्त पराप्रकृति, मूलप्रकृति और जगन्माता आदि शब्द शक्ति के ही पर्याय हैं। समस्त पौराणिक देवियाँ तन्त्र साहित्य में पार्वती, उमा, दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती, भैरवी आदि जगन्माता के रूप में स्वीकार की गयी हैं। अद्वैतवाद इस तन्त्रसाहित्य की विशेषता रही है। वेदों ने जहाँ निराकार ब्रह्म को ही एक सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता माना है, वहाँ शाक्त दर्शन ने भी शक्ति को ही सब कुछ स्वीकार किया है, अत: विन्टरनित्ज महोदय का कथन ठीक है कि भारतीय बुद्धि बहुत पहले से अनेक दिखायी देने वाले तत्त्वों में एकता खोजने में अभ्यस्त रही है, अत: देवी को किसी नाम से पुकारा जाये, वह सारे देवों की शक्तियों का एक रूप है। ब्रह्माण्ड की रचयिता ब्रह्मा की वह ब्राह्मी शक्ति सरस्वती है। पालन करने वाले विष्णु की वह वैष्णवी शक्ति लक्ष्मी है तथा संहार करने वाले शिव की वह रौद्री शक्ति है, ये सब उसी में स्थित हैं। जब यह महाकाल को आत्मसात् कर लेती हैं, तब आद्या काली कही जाती हैं। यही शक्ति महायोगिनी के रूप में जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करती हैं। इसी शक्ति को त्रिपुरा भी कहा गया है। शक्ति की निम्न विशेषतायें हैं। **शक्ति स्वतन्त्र है।** शक्ति की स्वतन्त्रता ही तन्त्रशास्त्र की मान्यता है। शैव दार्शनिक 'शिव' को स्वतन्त्र मानते हैं, परन्तु शाक्त दार्शनिक शक्ति को स्वतन्त्र मानते हैं। हयग्रीव ने कहा है कि 'शक्तिरेव कारणम्' अर्थात् शक्ति ही समस्त प्रपंच का कारण है।

भगवती सर्वयोनि है—जिस प्रकार समस्त वृक्ष बीज का विकास है और सूक्ष्म रूप से बीज का स्वरूप है, उसी प्रकार भगवती भी बीज रूप है। यह शक्ति तीन

रूपों वाली है—१. वामा शक्ति, २. ज्येष्ठा शक्ति और ३. रौद्री शक्ति। समस्त विश्व की जो परमा शक्ति है, जो सम्पूर्ण संसार की परमेश्वरी है, वही भगवती त्रिपुरा हैं। उस शक्ति के तीन रूप हैं—१. ज्ञानशक्ति, २. क्रिया शक्ति और ३. इच्छाशक्ति।

तन्त्र में पंचतत्त्व—शक्ति की आनन्दपूर्ण सृष्टि का भौतिक कारण पंचतत्त्व हैं, ये पंचतत्त्व पंचमकार के रूप हैं। पहला तत्त्व है—तेज, दूसरा है—वायु, तीसरा है—जल, चौथा है—पृथ्वी और पाँचवाँ है—आकाश (महानिर्वाण तन्त्र, ७/१०३, १११)।

इन पंच तत्त्वों को महानिर्वाण तन्त्र में बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है। वहाँ कहा गया है कि इनका प्रयोग दीक्षितों के चक्र में ही हो सकता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि स्त्री का स्थान पुरुष के वाम भाग में है, शायद इसी कारण इसे वामाचार कहा गया है। वामाचार का अर्थ है—वामा (स्त्री) का आचार। यह भी विधान है कि चक्रपूजा में जाति का भेद नहीं है, किसी भी जाति की नारी चक्रपूजा की अधिकारिणी है। जहां पंचमकार पूजा में मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन की बात आती है, उसके विषय में महानिर्वाण तन्त्र में कहा गया है कि जो अत्यधिक मद्यपान करने वाले हैं, वे देवी के सच्चे भक्त नहीं हो सकते। चक्रपूजा में किसी पराई स्त्री के अतिरिक्त मनुष्य अपनी पत्नी का भी उपयोग कर सकता है। मद्य के स्थान पर दूध, चीनी, शहद आदि के प्रयोग की भी आजादी दी गयी है। मैथुन के स्थान पर देवी के चरणकमल की पूजा की जा सकती है। सांसारिक पदार्थों एवं विषयों से पूर्ण विरक्त दिव्य भाव में स्थित साधक के लिये ही पंचतत्त्वों के स्थान पर शुद्ध प्रतीकात्मक वस्तुओं का प्रयोग विहित हैं। कुछ भी हो, यह तो मानना ही होगा कि तन्त्र साहित्य में पंचमकार पूजा है। अब उसे यह कहकर नहीं टाला जा सकता कि वह पराई स्त्री हो अथवा अपनी हो, उसकी पूजा तो करनी है। इसीलिये तन्त्र साहित्य को समाज ने व्यभिचार के रूप में तिरस्कृत कर दिया है। वैसे कुलार्णव तन्त्र में स्पष्ट रूप से कहा गया कि पंच मकार जो मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन हैं, उनके अर्थ अन्य ही हैं।

मद्य—मद्य का अर्थ बाहरी मदिरा नहीं है। मद्य का अर्थ ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल से बहने वाला अमृत है।

मांस—पुण्य और पाप रूपी पशुओं को ज्ञान रूपी खड्ग के द्वारा मार कर अपने मन को ब्रह्म में लीन करना मांसभोग है।

मत्स्य—मत्स्य एक रूप की साधना है, जो साधक प्राणायाम द्वारा श्वास-प्रश्वास को बंद करके कुम्भक के द्वारा प्राणवायु को सुषुम्ना के भीतर ले जाता है, वही यथार्थ रूप से मत्स्य साधना है। शरीर में इडा तथा पिङ्गला (गङ्गा-यमुना) में प्रवाहित होने वाले मत्स्य हैं।

मुद्रा—विजयतन्त्र के अनुसार दुष्ट व्यक्ति के संग का त्याग करना मुद्रा है।

मैथुन—सहस्रार में स्थित शिव तथा कुण्डलिनी या सुषुम्ना तथा प्राण के मिलन का नाम मैथुन है।

इन पंचमकार के विषय में कुलार्णव तन्त्र में तो यहाँ तक कह दिया है कि केवल शराब पीने से ही व्यक्ति को सिद्धि मिल जाती है तो सभी पापी मदिरापान कर सिद्धि को प्राप्त कर लें। मांस खाने से यदि सिद्धि हो जाये तो सभी मांसभक्षी सिद्ध पुरुष हो सकते थे तथा मैथुन करने से ही यदि सिद्धि हो जाये तो सभी लम्पटी पुरुष अनायास मुक्त हो जायें। अत: पंच मकारों को व्यभिचार अर्थ में नहीं लेना चाहिये, परन्तु इस प्रकार के अर्थ करना कुछ अटपटा-सा लगता है, क्योंकि जिस कुलार्णव तन्त्र में मांस खाने की इतनी आलोचना की गयी है कि मांस खाने से ही सिद्धि हो जाये तो फिर सभी मांसभक्षी सिद्धि प्राप्त कर लें, उसी में मांस को शुद्ध करने का विधान क्यों किया गया तथा कुलार्णव तन्त्र ५/४४ मांस की महिमा क्यों गायी गयी तथा देवता और द्विजों के लिये हिंसा को क्यों वैध कहा गया तथा मांस के अंगों में ब्रह्मा आदि का वास क्यों बताया गया। यही नहीं, उसी कुलार्णव तन्त्र में अनेकों प्रकार की मदिराओं के निर्माण की विधि बतायी गयी है। साथ ही यह भी कहा गया है कि सुरा को देखने मात्र से सब पापों से छुटकारा हो जाता है, उसकी गंध सूंघने मात्र से सौ यज्ञों का फल मिलता है। मद्य के स्पर्श मात्र से कोटि तीर्थों का पुण्य मिलता है तथा उसको पीने से चारों प्रकार की मुक्ति साक्षात् ही प्राप्त हो जाती है। यही नहीं यहाँ तक कह दिया कि सुरा की गन्ध में इच्छाशक्ति, उसके रस में क्रियाशक्ति एवं उसके स्वाद में ज्ञानशक्ति रहती है और उल्लास में पराशक्ति रहती है।

सुरादर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।
तद्गन्धाघ्राणमात्रेण शतक्रतु फलं भवेत्।।
मद्यस्पर्शनमात्रेण तीर्थकोटिफलं भवेत्।
देवि तत्पानतः साक्षाल्लभेन्मुक्तिं चतुर्विधा।।
इच्छाशक्ति सुरामोदे ज्ञानशक्तिश्च तद्रसे।
तत्स्वादे च क्रियाशक्तिस्तदुल्लासे परास्थिता:।।

—कुलार्णव तन्त्र, पंचम उल्लास

इस प्रकार ये परस्पर विरोधी कथन तन्त्र साहित्य की महत्ता पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं। अत: क्या उचित है, क्या अनुचित है, इसका परिणाम उभर कर सामने नहीं आता है, अत: जिसको जैसा उचित लगे, वही उचित है।

परन्तु एक दृष्टि से यह देखा जाये कि समाधि किस प्रकार से शीघ्र और उचित लगती है, तो उस दृष्टि से मैथुन प्रक्रिया अधिक उचित है तथा उसमें जो पीठों

का वर्णन किया है, वह तो बहुत ही कठिन है, क्योंकि तन्त्र में चार पीठों का वर्णन है, वे हैं—१. श्मशान पीठ, २. शव पीठ, ३. अरण्य पीठ, ४. श्यामा पीठ।

श्मशान पीठ—जिसमें प्रतिदिन रात्रि में श्मशान भूमि में जाकर यथाशक्ति विधि से मन्त्र का जाप करना है।

शव पीठ—में किसी मृतक की लाश पर बैठ कर मन्त्र जाप करना है, उसे शवपीठिका कहा जायेगा। अब कैसे और कहाँ कोई मुर्दा रोज मिलेगा, जिस पर बैठ कर मन्त्र जाप किया जा सके।

अरण्य पीठ—इसमें किसी वन में जाकर मन्त्रों का जाप करना है, वह भी ऐसे वन में, जहाँ हिंसक प्राणी भी हों, पता नहीं वे हिंसक प्राणी उस मन्त्री को कैसे छोड़ देंगे।

श्यामा पीठ—यह चौथी श्यामा पीठ है। इसकी साधना तो सबसे कठिन है। इसमें किसी षोडशवर्षीया सुन्दरी को वस्त्ररहित कर सम्मुख बैठा कर ब्रह्मचर्य में स्थिर रह कर मन्त्र साधना करे।

अत: यह मार्ग बहुत ही कठिन और असम्भव-सा प्रतीत होता है, परन्तु हमें नीरक्षीरविवेक द्वारा तन्त्रसाहित्य की वरणीय विद्याओं को ग्रहण करना चाहिये, उनके दोषों पर विचार नहीं करना चाहिये।

तन्त्र साहित्य की महत्ता पर विचार करने से पूर्व हम तन्त्रों के वर्ण्य विषयों पर प्रकाश डालते हैं—

तन्त्रसाधना के चार खण्ड—१. ज्ञानखण्ड, २. योगखण्ड, ३. क्रियाखण्ड, ४. चर्या खण्ड। जिन्हें पाद भी कह सकते हैं।

१. ज्ञानखण्ड (ज्ञानपाद)—

१. ज्ञानपाद—यह दार्शनिक विवेचन से सम्बन्ध रखता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद का समर्थन है। यह अक्षरों, पदों, मन्त्रों से सम्बद्ध है। यह तन्त्रशास्त्र का अपना निजी दर्शन है, जो सांख्य और वेदान्त से मेल खाता है। अत: यहाँ कोई तन्त्र एकदम अद्वैतवादी है तो कोई द्वैत का भी समर्थन करता है।

कहा भी गया है कि—

अद्वैत केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्तिचापरे।
ममतत्त्वं विजानन्तो द्वैताद्वैत विवर्जितम्।।

—कुलार्णवतंत्रम्

तंत्रों के अनुसार प्रकृति और पुरुष दो अलग-अलग शक्तियां हैं, परन्तु मूल तत्त्व एक ही है। इनमें प्रकृति के पाँच कार्य हैं—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान,

अनुग्रह। तथा उसकी पाँच शक्तियाँ हैं—चित् शक्ति, आनन्द शक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति। मनुष्य का शरीर एक ब्रह्माण्ड है। शरीर ही विश्व का रूप है। इसी प्रकार शिव, शक्ति, जीव एवं विश्व सभी एकात्मक हैं।

मुक्ति का अर्थ कुछ पाना नहीं है, प्रत्युत विस्मृत विराट् की पुनः स्मृति 'प्रत्यभिज्ञा' है। 'मैं शिव हूँ' इसकी अभिव्यक्ति जीवन का परम लक्ष्य है।

२. योगपाद—

आध्यात्मिक साधना के मार्ग में अग्रसर होने के लिये जिन आत्मिक शक्तिकेन्द्रों को जगाने की आवश्यकता होती है, वे शरीर में मेरुदण्ड के निम्नतम भाग से उच्चतम भाग तथा उससे भी ऊपर शून्य तक फैले हुए हैं। वे हैं—

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध आज्ञा, अर्धेन्दु (अर्धचन्द्र) रोधिनी, नाद, नादान्त शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मना और महाविन्दु इसी मार्ग में जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय एवं तुरीयातीत रूपी चेतना के अनेकों पर्वतों को लांघना पड़ता है। तब महाबिन्दु तक पहुँचना होता है तथा इसके लिये षट्चक्र और ग्रन्थित्रय (तीन ग्रन्थियों) का भी भेदन करना होता है। साथ ही कुण्डलिनी को भी जगाना पड़ता है। इस साधना के मार्ग में सफलता के लिये साधक को सात साधन पंचकोश साधन की भी आवश्यकता होती है। इसके लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन आठ साधनों की भी आवश्यकता होती है। अष्टांग योग को सफल बनाने के लिये १. प्राण, २. बिन्दु, ३. नाद, ४. मन, ५. आत्मा की साधना की आवश्यकता होती है। ज्ञानपाद श्रवण, मनन और निदिध्यासन से सिद्ध हो सकता है, किन्तु विचारों की शुद्धता, पिण्डशुद्धि, प्राणशुद्धि, बिन्दुशुद्धि, नादशुद्धि एवं मन:शुद्धि के बिना असम्भव है। योग पुरुष को प्रकृति से अलग करके उसके अपने स्वरूप का दर्शन कराता है। इसी को कैवल्य की स्थिति कहा जाता है। सांख्य में कहा गया है कि यह प्रकृति जो मन, बुद्धि, अहंकार एवं सेन्द्रिय शरीर वाली है, वह अपने मन द्वारा इन्द्रियों को भटका कर तरह-तरह के आनन्द दिलाती हुई पुरुष को अपने वशीभूत कर लेती है, उसे उसके लक्ष्य कैवल्य से भटकाती रहती है। अत: कैवल्य की प्राप्ति योग द्वारा ही सम्भव है तथा चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है, जो योगदर्शन का मूल सिद्धान्त है। अत: इस योग को प्राप्त करने के लिये साधक अभ्यास और वैराग्य की साधना का सहारा लेता है, क्योंकि 'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोध:।' उसे वितर्क विचार आनन्द और अस्मिता से युक्त चित्तवृत्तियों के निरोध रूप सम्प्रज्ञात समाधि एवं निर्बीज निर्विकल्प की भी साधना करनी पड़ती है। तब योगी अपने चरम लक्ष्य कैवल्य, चित् शक्ति (आत्मा) की स्वरूप प्रतिष्ठा या अपने वास्तविक स्वरूप अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। इस मार्ग में ऊर्जा प्राप्त करने हेतु साधक छ: चक्रों का भेदन,

पंचभूतों पर विजय, भूतशुद्धि, कोशशुद्धि और मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग एवं राजयोग की साधना भी करनी पड़ती है तथा मुख्य रूप से छः चक्रों का भेदन करने पर सोयी हुई कुण्डलिनी को जगाकर शक्ति शिव संयोग रूप समरसता प्राप्त करते ही उसे अणिमादि सिद्धि स्वत: प्राप्त हो जाती है और फिर साधक स्वत: शिव बन जाता है।

सांख्य कारिका में बताया गया है कि प्रकृति और पुरुष का साथ अंधे और लंगड़े का साथ है। दोनों ही अलग चल नहीं सकते। प्रकृति अंधी और पुरुष लंगड़ा है, अत: इस संसार को चलाने के लिये दोनों का यह समझौता है, अंधी प्रकृति पर लंगड़ा पुरुष सवार हो जाये, यही हो रहा है। अंधी प्रकृति पर लंगड़ा पुरुष सवार है, दोनों मिल कर संसार चला रहे हैं।

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृत: सर्ग:।।

—(सांख्यकारिका २१)

यही सृष्टि के विकास की दार्शनिक दृष्टि है। सांख्यतंत्र और योग दोनों ही इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं तथा तन्त्र भी इसका समर्थन करता है। अत: पुरुष प्रकृति के वन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करे यही तन्त्र का लक्ष्य है।

अव मोक्ष क्या है, इसे बताते हैं।

मोक्ष का स्वरूप—सांख्य का योग और तन्त्र तीनों का ही लक्ष्य मोक्ष प्राप्त कराना है, परन्तु तीनों ने मोक्ष को अलग-अलग माना है।

योग एवं सांख्य के अनुसार पुरुष को प्रकृति से अलग कराना मोक्ष है, परन्तु तन्त्र की दृष्टि में पुरुष और प्रकृति का मिलन करना मोक्ष है, अत: तन्त्र की मुक्ति सारगर्भित है।

तन्त्रशास्त्र का तृतीय पाद (क्रियापाद)—क्रियापाद में मन्दिर-मूर्ति आदि के निर्माण की विधि का वर्णन है। तन्त्रशास्त्र की यह विशेषता हैं कि उसने समाज को एक सूत्र में बाँधने के लिये उपासना की संस्थायें, मन्दिर, याग, तीर्थयात्रा के पुण्य स्थल, भैरवीचक्र, श्रीचक्र आदि का भी विधान किया है।

तन्त्रशास्त्र का चतुर्थ पाद (चर्यापाद)—इसमें विभिन्न क्रियाओं, उत्सवों एवं सामाजिक कर्त्तव्यों का वर्णन किया जाता है। तन्त्र में ही अन्तिम चरण चर्यापाद पूजा के क्रिया कलापों का विवेचन करता है, जो कि साधक को उसकी उपासना के महत्त्वपूर्ण मार्ग के रूप में उपदिष्ट है। चर्यापाद में भिन्न-भिन्न प्रकृति के साधकों की भिन्न-भिन्न प्रकार की साधना की विवेचना की गयी है।

तन्त्रशास्त्र में भावत्रय—

तत्रैव त्रिविधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम्

अत: इसमें तीन भाव हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। इन्हीं को दिव्यभाव, वीरभाव और पशुभाव कहा गया है।

सात्त्विक साधकों के लिये दिव्य भाव है। राजसिकों के लिये वीर भाव है और तामसिक साधकों के लिये पशु भाव है।

यहाँ पहले पशुभाव से गुजरना है, फिर वीरभाव में विकास करना है, अन्त में दिव्यभाव रूपी महाफल को प्राप्त करना है। कहा है कि—

सर्वे च पशवः सन्ति, तलवद्भूतले नराः।
तेषां ज्ञान प्रकाशाय, वीरभावः प्रकाशितः।।

पशुभाव में द्वैतभाव बना रहता है, परन्तु वीरभाव में द्वैत का कुछ अंश शेष रहता है, परन्तु दिव्यभाव में साधक पूर्णत: द्वैतभाव को दूर करके परमात्मा और आत्मा में एकरूपता प्राप्त कर लेता है।

तन्त्र में आचार-विचार—तन्त्रसाहित्य में सात प्रकार के आचार कहे गये हैं। वे हैं—१. वेदाचार, २. वैष्णवाचार, ३. शैवाचार, ४. दक्षिणाचार, ५. वामाचार, ६. सिद्धान्ताचार और ७. कौलाचार।

वेदाचार—इसमें वेदोक्त रीति से यज्ञ करना, मांसभक्षण न करना, परस्त्री चिन्तन न करना, लोभ, भोग, कुटिलता, गुरुनिन्दा त्याग आदि अनिवार्य है।

वैष्णवाचार—यह भी वेदाचार के ही समान है। इसमें निरन्तर विष्णु के प्रति समर्पित भाव रखना है। लगातार "सर्वं विष्णुमयं जगत्" की भावना रहनी चाहिये।

शैवाचार—वेदाचार क्रम शैव में मान्य है, परन्तु शैवाचार में पशुहिंसा विहित है।

दक्षिणाचार—दक्षिणामूर्ति द्वारा प्रवर्तित यह आचार है, इसमें परमेश्वरी का पूजन वेदाचार क्रम से करना है।

वामाचार—वीरभाव स्थित साधकों को वामाचार ग्रहण करना चाहिये तथा इसमें पंचतत्त्वों द्वारा देवता की अर्चना, विभिन्न द्रव्यों द्वारा अर्चना करनी चाहिये तथा साधना की सफलता के लिये साधक को अपने इष्ट कार्य में तत्पर रहना चाहिये तथा सभी प्रकार के पुष्प, दीप, नैवेद्य से अर्चना करते हुए साक्षात् शिव बन कर प्रकृति की पूजा करनी चाहिये।

साक्षात् शिवमयो भूत्वा प्रकृतिं परमां भजेत्।

साधक को चाहिये कि वह महामंत्र की साधना करके अपने में दिव्यभाव का उदय करके कौलाचार का अभ्यास करना चाहिये। तब फिर अपने को देवता जान कर आगम विधान से सूक्ष्म तत्त्वपूर्वक भाव पूजा करनी चाहिये।

सिद्धान्ताचार—शान्ति और इन्द्रियदमन का आश्रय लेकर यज्ञ करते हुए होकर एवं शाक्ततन्त्र शास्त्र का अनुसरण करते हुए आचरण करना चाहिये।

अपनी आत्मा में परतत्त्व की स्थिति मानकर तथा अपने को परमात्ममय समझ कर तथा अपनी आत्मा के सत्य रूप को निरन्तर जानते हुए जीवन जीने से अपनी आत्मा का ज्ञान हो जाता है। ऐसा योगी सालम्ब योगी माना जाता है (भावरहस्य, अ० १२)।

कुलाचार—

आचारैस्तु विहीनोऽपि ब्रह्मभावरत: सदा।
कौलाचार: स विज्ञेय: पूर्णानन्द परायण:।।

अर्थात् जो आचारों से विहीन भी हो, परन्तु सदा ब्रह्म भाव में रहे और पूर्ण आनन्द परायण हो, वही वृत्ति कौलाचारी वृत्ति है।

अत: कुल शब्द से कुलाचार बना है, अत: कुल शब्द को भी जानना आवश्यक है। अत: विद्वानों ने पंचभूतमय इस समस्त चराचर ब्रह्माण्ड जीव और प्रकृति तत्त्व को कुल कहा है।

कुल और अकुल—महाशक्तिरूपिणी कुण्डलिनी कुल है तथा अकुल शिव को कहा गया है। जो शुद्धसत्त्वगुणमय तथा विभु हैं।

कुलं कुण्डलिनी ज्ञेया महाशक्तिस्वरूपिणी।
अकुलन्तु शिव: प्रोक्त: शुद्धसत्त्वमयो विभु।।

कुलीन—जो साधक दोनों परम तत्त्वों शक्ति एवं शिव को जानता है, वह वर्णभेद न रखने वाला, परम श्रेष्ठ साधक कुलीन कहा जाता है।

तपस्तु परमं तत्त्वं यो वै जानाति साधक:।
कुलीन: परम: सोऽपि वर्णभेदविवर्जित:।।

पंच मकारों के विषय में पहले ही बता दिया गया है।

कौलार्णव तन्त्र में तो योग ध्यान धारणा यम नियम आदि को भी छोड़ने का विधान किया गया है। कौलावस्था होने पर नियमों, बन्धों, ग्राह्य वस्तुओं, समाधि को भी त्यागने का विधान है।

तान्त्रिक अद्वैतवाद—वैसे तो तन्त्र में अनेकों प्रकार की दृष्टियाँ हैं, परन्तु मूल रूप से तन्त्र में अद्वैत दृष्टि पायी जाती है। कौलमत और समयमत भी अद्वैतवादी हैं, यद्यपि कौल स्वयं द्वैताद्वैत विलक्षणवादी मानते हैं तथापि उनकी मूल चेतना अद्वैतनिष्ठ है।

कौल धारा के महान् दार्शनिक परशुराम जी कहते हैं कि कञ्चुक ही जीव एवं परशिव के मध्य भेदक तत्त्व है, अत: कञ्चुक के हटते ही जीव और परशिव में कोई भेद नहीं रह जाता।

कुलार्णव तन्त्र में 'अहं ब्रह्मास्मि' की अद्वैतनिष्ठ दृष्टि स्वीकारते हुए कहा गया है कि—

क्षणं ब्रह्मास्मीतिं यः कुर्यादात्मचिन्तनम्।
तत्सर्वं पातकं हन्यात् तमः सूर्योदये यथा॥

यदि मैं ब्रह्म हूँ, यह क्षण भर के लिये आत्मचिन्तन करे तो जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार साधक के सब पाप नष्ट हो जाने चाहियें।

जीव की शिवरूपता—कौलदर्शन में जीव और शिव की एकरूपता होती है तथा जीव इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जीव ही शिव है, शिव ही जीव है तथा वह जीव केवल शिव है। कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि—

पाशबद्धः स्मृतो जीव पाशमुक्तः सदाशिवः।

अर्थात् इस सेन्द्रिय शरीररूपी जाल में फँसा हुआ जीव जीव है तथा इससे मुक्त हुआ जीव सदाशिव है।

जातिवाद विहीनता—तन्त्रशास्त्र की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें जातिवादिता नहीं है। कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि 'तथा श्रीचक्रमध्ये तु जातिभेदो न विद्यते।' यही नहीं यहाँ तक कहा गया है कि इस चक्र में जातिभेद नहीं है, सब शिव के समान माने गये हैं।

जीवन्मुक्ति—तन्त्र साहित्य में साधक का लक्ष्य मृत्यु के बाद स्वर्ग प्राप्त करना नहीं है। तन्त्र के अनुसार जीवन्मुक्त का अर्थ है कि जो साक्षात् जीता हुआ मरे के समान स्थित रहता है। न सुनता है, न देखता है, न बैठता है और न चलता है और न सुख को जानता है और न दुःख से संलिप्त होता है और काष्ठ के समान न कुछ जानता है। यह स्थिति तो एक पागल की ही कही जा सकती है, परन्तु मेरे विचार से जीवन्मुक्त वह कहा जायेगा, जिसने कि जीते हुए ही समस्त काम-क्रोध-लोभ-मोह और अहंकार का परित्याग कर दिया है। सब कुछ त्याग कर समाज एवं देश सेवा में लग गया है।

सबमें चैतन्य की कल्पना—तन्त्र की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें सभी चर और अचर में चेतन तत्त्व का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। इसमें जड़ का अर्थ चेतनताहीन होना नहीं है, अपितु चेतन तत्त्व का सोया हुआ होना या फिर अल्पांशता है। यह वास्तव में वैज्ञानिक रहस्य है तथा तन्त्र साहित्य सबको चैतन्ययुक्त देखना चाहता है। तन्त्र के अनुसार शरीर, मन, बुद्धि, आसन, माला, दिशा, शरीर के अंग मन्त्र और देवता सभी का चैतन्यीकरण आवश्यक है। इसीलिये कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि—

मन्त्राश्चैतन्यसहिता सर्वसिद्धिकराः स्मृताः।
चैतन्यरहिता मन्त्राः प्रोक्ता वर्णास्तु केवलम्॥

अर्थात् चैतन्ययुक्त मन्त्र ही सब सिद्धि कराने वाले हैं। चैतन्यरहित मन्त्र तो केवल वर्ण कहे गये हैं।

तन्त्र में दीक्षा एवं गुरु का महत्त्व—तन्त्र में दीक्षा सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। दीक्षा बिना साधक का साधना में प्रवेश कदापि सम्भव नहीं। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार अदीक्षित व्यक्ति की जप-तप आदि सारी साधनायें व्यर्थ हो जाती हैं।

दीक्षाओं के अनेक प्रकार भिन्न-भिन्न तन्त्रों में बताये गये हैं। परशुराम कल्पसूत्र के अनुसार दीक्षायें चार प्रकार की हैं—१. शाक्ती दीक्षा, २. शाम्भवी दीक्षा, ३. मान्त्री दीक्षा, ४. शाक्ती शाम्भवी और मान्त्री तीनों प्रकार की दीक्षा। किसी तन्त्र में दीक्षा के ७ तथा ८ भेद बताये हैं। १. समय दीक्षा, २. विशेष दीक्षा, ३. साधिका दीक्षा, ४. पुत्रक दीक्षा, ५. वेध दीक्षा, ६. पूर्ण दीक्षा, ७. आचार्य दीक्षा और ८. निर्वाण दीक्षा।

कुलार्णव तन्त्र के अनुसार दीक्षा तीन प्रकार की है—१. स्पर्शी दीक्षा, जो स्पर्श से दी जाती है। २. दृग्दीक्षा, आँखों से देख कर दी जाने वाली दीक्षा। ३. मानसी दीक्षा, मन से दी जाने वाली दीक्षा। इस प्रकार भिन्न-भिन्न तन्त्रों के अनुसार दीक्षा के भिन्न भेद बताये हैं। यहाँ विषय विस्तार भय से सबका वर्णन सम्भव नहीं है। तन्त्र साहित्य में दीक्षा का अत्यन्त महत्त्व है। दीक्षा गुरुकृपा या शक्ति का आना माना जाता है। तन्त्र में बिना गुरु के केवल शास्त्राध्ययन से सफलता सम्भव नहीं, तन्त्र में गुरु द्वारा ही आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। साधना निर्बलों के लिये नहीं 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य।' दीक्षा का कार्य है साधक को नीचे जाने से रोकना और फिर उसे आगे जाने का मार्ग दिखाना। तथा इसके लिये आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता है। आध्यात्मिक शक्ति के बिना तात्त्विक सिद्धि कदापि सम्भव नहीं।

तन्त्र में ज्ञान का महत्त्व—तान्त्रिकों में साधन पद्धति सर्वसाधन प्रेमी रही है, उन्होंने ज्ञान, भक्ति और योग तीनों मार्गों को स्वीकार किया है, परन्तु ज्ञानमार्ग को विशेष महत्त्व दिया है। वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि 'ज्ञानवान्मानवः प्रोक्तः ज्ञानहीनः पशुः प्रिये।' अर्थात् ज्ञानवान् मानव कहा गया है, ज्ञानहीन तो पशु है। ज्ञान भी दो प्रकार का है, एक आगमादि ग्रन्थों से प्राप्त, दूसरा स्वविवेक से प्राप्त, यहाँ दोनों को स्वीकार किया गया है।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध—तन्त्र में दो प्रकार के गुरु माने हैं। एक गुरु लौकिक गुरु हैं, जो दीक्षा देते हैं तथा दूसरे गुरु वे 'सदाशिव' हैं, जो परम ब्रह्म स्वरूप हैं, वे गुरुओं के भी गुरु हैं। यहाँ पर दीक्षा गुरु के विषय में बताया जा रहा है कि गुरु और शिष्य की एकता ही दोनों के सम्बन्धों का आदर्श है। परात्रिंशिका विवरण के अनुसार 'गुरु शिष्य पदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः, पूर्वोत्तर पदैर्वाक्यस्तन्त्रं समवतारयत्।'

अर्थात् गुरु शिष्य पद में स्थित होकर स्वयं सर्वोच्च गुरु सदाशिव ने पूर्वोत्तर वाक्यों द्वारा इस तन्त्र को सृष्टि पर उतारा था। इससे गुरु शिष्य का सम्बन्ध तथा गुरु का महत्त्व स्वत: स्पष्ट हो रहा है।

तन्त्र में कुण्डलिनी साधना—कुण्डलिनी साधना तन्त्र का सबसे महत्त्वपूर्ण विषय है। जैसे कि शक्ति (प्रकृति) की उपासना जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव और शाक्त आदि सभी में स्वीकृत है, उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति की साधना भी स्वीकृत है। कुण्डलिनी क्या है, इसके विषय में वामकेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि सर्प के आकार के रूप से मूलाधार से समन्वित कमल के तन्तु (डण्ठल) के समान शक्ति नामक कुण्डलिनी है। जैसे कमल का कन्द होता है, उसी मूल कन्द को कणाग्र से देख कर मुख द्वारा पूंछ को ग्रहण करके ब्रह्मरन्ध्र तक समाश्रित है। पद्मासन पर बैठा हुआ अपनी आत्मा में स्थित साधक गुरु द्वारा संकेत पाकर प्राणवायु को ऊर्ध्वगत करता हुआ कुम्भक प्राणायाम में आविष्ट मन होकर वायु के आघात वश से स्वाधिष्ठान गत अग्नि को जलाता हुआ, अग्नि की ज्वाला और वायु के आघात से सर्पराज (कुण्डलिनी) को जगाता है, उसके बाद पहले रुद्रग्रन्थि तोड़ता है, उसके बाद विष्णुग्रन्थि और ब्रह्मग्रन्थि को तोड़ कर षट्चक्रदल कमल को तोड़ता है और सहस्रदल कमल में शिव के साथ आह्लाद प्राप्त करता है। वही परावस्था कही जाती है। वही मोक्ष का कारण है।

'वामकेश्वर तन्त्र' में कुण्डलिनी का परिचय देते हुए कहा गया है कि—

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्ति: कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभाऽऽशुभा।।
मूलकन्दं कणाग्रेण दष्ट्वा कमल कन्दवत् ।
मुखेन पृच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समाश्रिता।
पद्मासनगत: स्वस्थो गुदमाकुञ्च्य साधक:।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानस:।।
वाय्वाघातवशादग्नि: स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।
ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट् ।।
रुद्रग्रन्थिं ततो भित्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्यत:।
ब्रह्मग्रन्थिं च भित्वैव कमलानि भिनत्ति षट्।।
सहस्रकमले शक्ति: शिवेन सह मोदते।
सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृति कारणम्।।
आधारकन्दमध्यस्थितसुषिरमध्ये बिसतन्तुनिभा।
तत्र कुण्डलिनी शक्ति: वर्तत इति तात्पर्यम्।। (लक्ष्मीधरा)

भगवती त्रिपुरा भी 'सहस्रवार' में परमशिव के पास जाकर विहार करती हैं—

मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे।।

और भगवती कुण्डलिनी भी सहस्रार में पहुँचने के अनन्तर सारे प्रपञ्च को अमृत से नहलाकर 'मूलाधार चक्र' के कुलकुण्ड में आकर सो जाती हैं—

'स्वामात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि।

कुण्डलिनी जागरण प्रक्रिया—देवी कुण्डलिनी हुङ्कारपूर्वक जाग्रत होती है और षट्चक्र एवं ग्रन्थित्रय का भेदन करती हुई सहस्रार में अपने प्रियतम शिव के पास पहुँचकर विहार करती हैं—

'हूङ्कारेणैव देवीं यमनियमसमभ्यासशीलः सुशीलो।
ज्ञात्वा श्रीनाथवक्त्रात् क्रममिति च महामोक्षवर्त्मप्रकाशम्।।
ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयति सतां शुद्धबुद्धिस्वभावो।
भित्वा तल्लिंगरूपं पवनदहनयोरा क्रमेणैव गुप्तम्।।
''भित्वालिङ्गत्रयं तत् परमरसशिवे सूक्ष्मधाम्नि प्रदीपे।
सा देवी शुद्धसत्वा तडिदिव विलसतन्तुरूपस्वरूपा।।
ब्रह्माख्यायाः शिराया सकलसरसिजं प्राप्य देदीप्यते तनु।
मोक्षाख्यानन्दरूपं घटयति सहसा सूक्ष्मताल लक्षणेन।।''
''नीत्वा तां कुलकुण्डलीं लयवशाज्जीवेन सार्द्धसुधी-
र्मोक्षे धामनि शुद्धपद्मसदने शैवे परे स्वामिनि।
ध्यायेदिष्टफलप्रदां भवगतीं चैतन्यरूपां परां,
योगीन्द्रो गुरुपादपद्मयुगलाम्वी समाधौ यतः।।''
''लाक्षाभं परमामृतं परशिवात् पीत्वा पुनः कुण्डली।
नित्यानन्दमहोदयात् कुलपथान्मूले विशेत् सुन्दरी।।
तद्दिव्यामृतधारया स्थिरमतिः सन्तर्पयेद् दैवतं।
योगी योगपरम्पराविदितया ब्रह्माण्डभाण्डस्थितम्।।

अर्थात् तन्त्रशास्त्र में मूलाधार में सर्प के समान कुण्डली मार कर स्थित है, इसे ही शक्ति कुण्डलिनी कहते हैं। यह कुण्डलिनी जब जगती है, तब हुंकार की ध्वनि होती है और षट्चक्र और तीन ग्रन्थियों को तोड़ती हुई सहस्रदल कमल में अपने प्रियतम शिव के साथ पहुँच कर विहार करती है। इसे कोई सामान्य मनुष्य नहीं जगा सकता। इसे यम-नियम, आसनादि का अभ्यास करने वाला व्यक्ति ही जगा सकता है, जिसने श्रीनाथ के मुख से क्रमानुसार अभ्यास किया हो। ऐसा शुद्ध बुद्धि स्वभाव वाला व्यक्ति ब्रह्मद्वार के मध्य में पवनदहन योग के आक्रमण से प्रतप्त तथा स्वयम्भू लिंग को घेर कर आधी त्रिवली के आकार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को जो कि हुंकार बीज का

उच्चारण करते हुए जगाता है और स्वयंभू लिंग के छिद्र से निकाल कर उसे ब्रह्मद्वार तक पहुँचाता है। पहले कुण्डलिनी अनाहत चक्र स्थित बाण लिंग का, फिर आज्ञाचक्र स्थित आज्ञा लिंग का भेदन करती हुई ब्रह्मनाड़ी की सहायता से सहस्त्रदल कमल में प्रवेश करती है और फिर वहाँ परमानन्दमय शिव में प्रतिष्ठित हो जाती है। यह योगी का काम है कि वह अपने जीवभाव के साथ कुलकुण्डलिनी को मूलाधार से उठा कर बिन्दु शिव के साथ समरस कर दे, वहाँ सहस्त्रार के कुण्डलिनी लाक्षावर्ण के समान परमामृत का पान कर तृप्त हो जाती है। उसके बाद परमानन्द की अनुभूति को मन में रखते हुए पुन: मूलाधार चक्र में लौट आती है। यही है कुण्डलिनी जागरण योग। इसकी सिद्धि योगी को जीवन्मुक्त बनाती है तथा योगी साक्षात् शिवरूप हो जाता है।

नाद बिन्दु और कला

नाद—प्रणव की १२ कलाओं में बिन्दु और नाद की स्थित है। आगम और तन्त्रासार की विभिन्न शाखाओं में नाद और बिन्दु की अपनी अलग-अलग व्याख्यायें हैं। सबने अपने-अपने तरह से नाद की व्याख्या की है। नादकारिका में नाद को मालिनी महामाया समना अनाहत बिन्दु अघोष वाणी और ब्रह्म कुण्डलिनी बताया है। प्राणवायु के द्वारा निकाली गयी ध्वनि को भी नाद कहा जाता है। हकारस्तु स्मृत: प्राण: स्वप्रवृत्तो हलाकृति: स्वच्छन्द तन्त्र (४.२५७) के इस कथन के अनुसार स्वाभाविक रूप लगातार हलाकृति प्राण को ही हकार कहा गया है। यही हंसोच्चार कहलाता है। इसी का अनाहत ध्वनि अथवा नादभट्टारक भी कहा गया है। यह नादभट्टारक शब्द ब्रह्म का ही प्रतीक है। यह दश प्रकार का होता है। तंत्रालोक (५.५९) में दश प्रकार का राव नाद बताया गया है। स्वच्छन्द तन्त्र के ११.१७ में महाशब्द के नाम से नवम नाद भी माना गया है। दस प्रकार के नाद में धारणा ध्यान और समाधि का अभ्यास करने पर शब्दब्रह्म के स्वरूप को समझ लेता है, वह जान लेता है कि शब्द ब्रह्म से ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार प्रकार की वाणियों का विकास होता है।

यह नाद तत्त्व परा और पश्यन्ती के क्रम से विकसित होता हुआ मध्यमा में आकर योगाभ्यास द्वारा श्रवंणेन्द्रिय के अन्तर्मुख होने पर सुनाई पड़ता है। जब यह अन्तर्मुखता की ओर बढ़ता है, तब इसका सूक्ष्म सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम अभ्यास क़रते-करते और फिर अन्वेषण करके योगी इसके रहस्य को भली-भाँति जान लेता है और फिर वह निष्णात हो जाता है। शब्दब्रह्म के स्वरूप को अच्छी तरह जान लेने पर साधक अनायास परं ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् लगातार नदन करती हुई अनाहत ध्वनि में चित्त को एकाग्र कर लेने पर योगी का परमाकाशस्वरूप चिदाकाशमय और प्रकाशात्मक स्वरूप प्रकट हो जाता है।

नाद बिन्दु का प्रथम परिमाण है। बिन्दु इच्छा शक्ति है, जो प्रकाश प्रधान है।

नाद उसी का विमर्श प्रधान स्वरूप है। सदाशिव दशा नाद का बाहरी स्फोट है। चित्तवृत्ति के ज्ञान में भी नाद व्याप्त है; क्योंकि वहाँ भी वस्तु विमर्शन होता है। शुद्ध विमर्श नाद का सूक्ष्मतर स्वरूप है इसका आकार "अहम्" है। बुद्धि का व्यापार यह नाद विषयोन्मुख विमर्श है तथा सदाशिव को बताने वाला है शैवस्यिन्त में ज्ञान आत्मा के साथ मिला हुआ रहने पर भी यह नाद की उपाधि है आत्मा अनन्त है, तो नाद भी अनन्त है। सभी प्रकार के ज्ञान बुद्धि में आकर नाद के रूप में व्यवहार्य है। कथन का आशय है कि ज्ञान शक्ति की अतिसूक्ष्म स्थिति ही नादवृत्ति है। सविकल्पक ज्ञान में यह मायावृत्ति के साथ सम्बद्ध रहती है। ज्ञान को यदि बुद्धि का व्यापार माल लें तो शुद्ध भुवनों में स्थित अनन्तादि में सविकल्पकज्ञान नहीं हो सकता; क्योंकि माया के ऊपर बुद्धि तत्त्व का कोई प्रभाव नहीं होता। इसीलिये नादतत्त्व को स्वीकारना ही पड़ेगा। बुद्धि से निश्चय किया हुआ ज्ञान किसी इन्द्रिय से ही ग्राह्य होगा। इसी प्रकार अन्दरूनी विचार से किसी विषय का निश्चय होता है तथा अन्तः बिन्दु रूप आन्तरिक सम्यक् कथन का कारण नाद है। वह नाद आन्तरिक सम्यक् कथन को उत्पन्न करता है। इसी नाद के कारण बुद्धि बाह्य विषय के प्रतिबिम्ब का निश्चय करती है। बाहर प्रकट होने वला शब्द आन्तरिक सम्यक् कथन का बाहरी आकार वास्तव में नाद को बुद्धि के सामने रखता है। बुद्धि द्वारा निश्चय किया हुआ विषय प्रकट वर्णों द्वारा प्रकट होता है। अतः नाद शक्तितत्त्व का नामान्तर है। इसीलिये इसे शैवसिद्धान्त में द्वितीय तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है।

बिन्दु—सत्त्वगुण की वह अवस्था ही बिन्दु है, जिसे वैष्णव विशुद्ध सत्त्व तथा व्यास प्रकृष्ट सत्त्व कहते हैं। यह तमोगुण और रजोगुण से सदा के लिये विमुक्त अवस्था है। तान्त्रिक गण इसे बिन्दु कहते हैं।

शैवसिद्धान्त में छत्तीस तत्त्वों के अन्तर्गत बिन्दु को पहला स्थान दिया गया है। रत्नत्रय श्लोक ७१ में इसे शिव कहा गया है। शक्ति सदाशिव, ईश्वर तथा शुद्ध विद्या इन चार शुद्ध तत्त्वों के शरीर बिन्दु तत्त्व से ही बने हैं। अर्थात् इनका शरीर बैनदव कहा जाता है। तत्त्व प्रकाश (पृ. २७) के अनुसार बिन्दु को ही परनाद कुण्डलिनी ब्रह्म आदि कहा गया है। भुवनेश्वरों की आराधना करने पर तथा दीक्षित साधकों की अपनी ज्ञान और क्रियाशक्ति से यह प्रकट होता है। यह परमात्म की शक्ति है। हवा से जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठती हैं, उसी प्रकार बिन्दु में लहरें उठती हैं। नाद और ज्योति ही इसकी लहरें हैं। मंत्रों मंत्रेश्वर और मंत्रमहेश्वरों का शरीर बैन्दव होता है। बिन्दु का अगला रूप परबिन्दु है। परमकारण व्योमाकार शिवतत्त्व में सभी शब्दों वाक़ कारण अतिसूक्ष्म नाद अप्रकटरूप में विद्यमान है। इसी को परबिन्दु कहा जाता है।

शक्ति तत्त्व के आविर्भूत काल में सभी शब्द समुदाय के केन्द्र में स्थित स्फोट रूपी तत्त्व यही है। आगम और तन्त्र के महान् आचार्य भास्करराय के अनुसार प्रलयावस्था में ब्रह्म घनीभूत दशा में अवस्थित रहता है। उस समय आगे की सृष्टि की प्रत्याशा में माया शक्ति भी प्रसुप्तावस्था में रहती है। समयानुसार जब ब्रह्म में सृष्टि की विशेष इच्छा होती है, उस समय माया शक्ति जग जाती है, जिसे अव्यक्त प्रकृति कहा जाता है; क्योंकि इस दशा में यद्यपि कर्मों का परिपाक हो जाता है और उसकी शक्ति भी जग जाती है; किन्तु वह अभी अप्रकट ही रहती है। इसी को कारण बिन्दु कहा जाता है; क्योंकि यह सृष्टि रूपी वृक्ष का बीज है। जैसे कन्द से अंकुर फूट कर ऊपर आता है, उसी तरह इस कारण बिन्दु के विकास से आगे की सृष्टि चलती है। प्रपञ्चसार (१.४१) के अनुसार यह बिन्दु शब्द कारण बिन्दु का बोधक है।

कारण बिन्दु से कार्य बिन्दु नाद और बीज की उत्पत्ति होती है, जो पदार्थों पर, सूक्ष्म और स्थूल दशा के प्रतीक हैं। ये क्रमश: चित्स्वरूप (केवल चैतन्य रूप) चिद् अचिद् मिला हुआ रूप और फिर अचित् स्वरूप (साकार) होते हैं। ये ही कारण बिन्दु आदिकालीन चार तत्त्व अधिदैवत् अवस्था में अव्यक्त, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् के रूप में शान्ता, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री शक्ति के रूप में तथा अम्बिका, इच्छा ज्ञान, क्रिया शक्ति के रूप में विकसित होते हैं। अधिभूत अवस्था में से कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर, ओड्याण पीठ के रूप में होते हैं तथा अध्यात्म पक्ष में कारण, बिन्दु, शक्ति, पिण्ड, कुण्डली जैसे शब्दों से पुकारे जाते हैं। जो मूलाधार में स्थित होते हैं।

तन्त्र साहित्य का कलेवर—तन्त्र साहित्य विशाल साहित्य है। शाक्तों ने भारत एवं एशिया को तीन भागों में विभाजित कर क्रान्ताओं के रूप में तन्त्रों के ६४ भेद किये हैं।

१. भारतीय तन्त्रशास्त्र सिद्धान्त और साधना ग्रन्थ में इनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जहाँ ये विष्णुक्रान्ता, जिसमें सिद्धीश्वर कालीतन्त्र, कुलार्णव, ज्ञानार्णव, नील केत्कारी और श्रीक्रम और सिद्धियामलादि ६४ तन्त्र हैं। २. रथाक्रान्त में मत्स्य सूत शक्तिसंगम, षडाम्नाय, योग स्वरोदय, स्वरोदय, ज्ञानभैरव, कालभैरव आदि ६४ तन्त्र हैं तथा अश्वक्रान्ता में भूतशुद्धि, क्रियासार, तत्त्वचिन्तामणि, बृहत्कंकालिनी क्रियासार, वर्णसार, चूड़ामणि, महायोगिनी आदि ६४ तन्त्र हैं।

चतुश्शती में ६४ तन्त्रों का विवरण मिलता है, जो इस प्रकार है—

शुभागम के ग्रन्थ हैं—१. वशिष्ठ संहिता, २. सनक संहिता, ३. शुक्र संहिता, ४. सनन्दन संहिता, ५. सनत्कुमार संहिता।

२८ ग्रन्थ आगम के हैं, जिनका विवरण भारतीय तन्त्रशास्त्र सिद्धान्त एवं साधना में इस प्रकार दिया गया है—

१. कामिक, २. योगज, ३. कारण, ४. प्रसृतागम, ५. अजितागम, ६. दीप्तागम, ७. अंशुमानागम, ८. सुप्रभेदागम, ९. विजयागम, १०. निःश्वासागम, ११. स्वायंभुवागम, १२. अनलागम, १३. वीरागम, १४. रौरवागम, १५. मुकुटागम, १६. विमलागम, १७. चन्द्रज्ञानागम, १८. बिम्बागम, १९. प्रोद्गीत, २०. ललितागम, २१. सिद्धागम, २२. सन्तानागम, २३. किरणागम, २४. वातुलागम, २५. सूक्ष्म, २६. सहस्र, २७. सर्वोत्तर, २८. परमेश्वर।

तंत्र एवं पुराणों में विज्ञान—वित्तरनित्ज महोदय तथा परमश्रेद्धय स्वामी दयानन्द सरस्वती ने पुराण एवं तन्त्र साहित्य को पाखण्ड घोषित किया, इसमें कुछ तो सत्यता है; परन्तु ऐसा भी नही है कि समस्त पुराण या तन्त्रसाहित्य निन्दनीय हो। पुराण हमारे इतिहास हैं। उनमें सब विद्यायें हैं, उनमें वैज्ञानिक रहस्य भरे पड़े हैं। आवश्यकता है, उन्हें समझने की जैसे कि मार्कण्डेय पुराण स्थित दुर्गासप्तशती का नित्य लोग पाठ करते हैं। शक्ति पीठों में जाकर कोई स्वयं करता है, तो कोई पण्डित द्वारा कराता है; परन्तु मां के रहस्य को जानने का प्रयास नहीं किया जाता। मेरे पिताश्री ने एक लेख द्वारा यह सिद्ध किया है कि दुर्गा सप्तशती में मां दुर्गा के जो नौ रूप हैं, वे सृष्टि रचना के प्रतीक हैं, उनका वह लेख कई पत्रिकाओं में छपा तथा २०१६ के प्राच्य विद्या सम्मेलन में भी पढ़ा गया। उनके अनुसार मां दुर्गा का प्रथम रूप शैलपुत्री है। इसका अर्थ है—सबसे पहले यह प्रकृति जिसे दुर्गा कहो, चण्डी कहो, काली कहो इसके अनेक नाम है। तन्त्र में इसे शक्ति कहा गया है। अत: ये जीवन तत्त्व है। अत: पहले यह जीवन तत्त्व शैल (पर्वत) पर पैदा हुआ। अर्थात् प्रलय के बाद जब सूर्य की आग कुछ कम हुई तो जलतत्त्व जिसे जीवन कहा जाता है, ऊँचे पर्वतों पर बर्फ के रूप में पैदा हुआ; क्योंकि पर्वत पर सूर्य की किरणों के बिखर जाने पर वहाँ का तापमान बहुत कम हो जाता है। अत: वहाँ जलतत्त्व बर्फ के रूप में पैदा होता है। इसीलिये इन्हें मां प्रकृति को शैलपुत्री कहा गया। प्रकृति (मां दुर्गा) का दूसरा रूप है, ब्रह्म चारिणी अत: इसकी व्युत्पत्ति की गयी तो 'बृंह' वर्धने धातु में 'मनिप्' प्रत्यय से 'ब्रह्म' शब्द बना, जिसका अर्थ हुआ बढ़ने वाला तथा चारिणी 'चर्' धातु 'घञ्' प्रत्यय से चार शब्द बना; फिर 'णिनि' प्रत्यय से 'चारिन्' बना। स्त्रीलिङ्ग 'ङीप्' लगाने पर चारिणी बना, जिसका अर्थ है—चलाने वाली। तब ब्रह्मचारिणी का अर्थ हुआ—बढ़े हुए को चलाने वाली। स्वाभाविक है कि बर्फ बढ़ेगी, तब चलेगी। अत: पर्वतस्थ हिम बढ़कर और पिघलकर चलने लगा, तब तीसरा है 'चन्द्रघण्टा' अत: चन्द्र का अर्थ है—चन्द्रमा और पानी। घण्टा का अर्थ है—समूह। अत: चन्द्रघण्टा का अर्थ हुआ—जल का समूह। अत: उस बर्फ के पिघल कर बहने से जल समूह (समुद्र) बन गये। उसके बाद चौथा रूप है—कूष्माण्डा। कूष्माण्डा शब्द कु+ऊष्मा+अण्ड का सन्धि रूप

है। 'कु' का अर्थ 'कम', ऊष्मा का अर्थ—गर्मी, अण्ड का अर्थ है—ब्रह्माण्ड; क्योंकि प्रलयकालीन उग्र सूर्य जब करोड़ों वर्ष के बाद ठण्डे हुए और जब कम ऊष्मा वाले हुए तो स्वाभाविक है जल (समुद्र का जल) वाष्प रूप में बदलेगा तथा जब वाष्व बनेगा तो फिर वह वाष्प ठण्ड पाकर जल रूप में परिवर्तित होगी, तो फिर बादल बनेंगे। अत: मां दुर्गा (प्रकृति) का पांचवा रूप है—स्कन्दमाता। जिसका अर्थ है—स्कन्द = बादल, माता = बनाने वाली। अत: यह प्रकृति बादल बनाने वाली बन गयी। जब बादल बनेंगे तो बरसेंगे ही तथा जब बरसेंगे तो सर्वत्र जल फैलेगा। अत: मा का छठा रूप है—कात्यायनी, जिसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है—क+तनु विस्तारे धातु में 'ष्यञ्' प्रत्यय लगा तो 'तनु' का अनुबन्धलोप होकर 'त्' शेष रहा और 'ष्यञ्' प्रत्यय का अनुबन्ध लोप होकर 'य' शेष रहा, तब हुआ क+त्+य। क्योंकि 'ष्यञ्' प्रत्यय ञित् है। इसमें 'ञ्' की इत्संज्ञा हुई है तथा जहाँ 'ञ्' की इत्संज्ञा होती है, वहाँ पर आदि वृद्धि का नियम है। अत: आदि वर्ण 'क' को 'का' होकर कात्य शब्द बना, फिर कात्य में 'फक्' प्रत्यय लगा और 'फक्' को आपन आदेश हुआ तो कात्यायन शब्द बना और स्त्रीलिङ्ग में 'ङीप्' से कात्यायनी शब्द बना, जिसका अर्थ है—जल का विस्तार करने वाली। अत: जब बादल जल वर्षा करेंगे, तो जल का विस्तार होगा ही, जल फैलेगा ही। अत: मां प्रकृति का यह षष्ठ रूप कात्यायनी है। जब समस्त ब्रह्माण्ड मेघाच्छत्र होगा तो अन्धकार छा जायेगा। अत: मां का सप्तम रूप कालरात्रि इस कालरात्रि का समय लाखों वर्ष का रहा होगा। तब चिकाल के बाद महागौरी मां का अष्टम रूप है जो अन्धकार पर विजय का प्रतीक है तथा नवम रूप सिद्धिदात्री रूप सृष्टिकार्य में सफलता का द्योतक है। इस प्रकार मां, दुर्गा, प्रकृति, महात्रिपुरेश्वरी (प्रकृति) द्वारा सृष्टि करने की प्रक्रिया मार्कण्डेय पुराण में स्पष्ट घोषित है। कुछ लोग इसे यदि मनगणन्त कहें तो बतायें कि इसमें कैसे कल्पना है। ऐसी कथायें पुराणों में और तन्त्रसाहित्य में अनेकों हैं, जो सब वैज्ञानिक है।

उदाहरण के लिये मधुकैटभ का विष्णु के साथ पांच हजार दिव्य वर्षों तक युद्ध हुआ। तब यह संख्या ६६६१२५०० मानव वर्ष होता है। अत: ऐसा युद्ध किसी मानव रूप विष्णु और मधुकैटभ रूप राक्षस में तो सम्भव नहीं है अत: यह मानना ही होगा कि विष्णु कोई मनुष्य नहीं; अपितु जीवनदायक प्रकृति का रूप रहा होगा। अथवा विष्णु सत्त्व गुण का प्रतीक है, जिसे ऑक्सीजन भी कहा जा सकता है तथा मधुकैटभ तमोगुण का प्रतीक है तथा सत्त्वगुण के उद्रेक को रोकने के लिये तमोगुण प्रवृत्त रहा। तब ६६ करोड़ वर्ष बाद तमोगुण पर सत्त्वगुण की विजय हुई और फिर विष्णु सत्त्व द्वारा सृष्टि सम्पन्न हुआ।

अत: मेरे कहने का आशय है कि पुराण और तन्त्र साहित्य पूर्णत: वैज्ञानिक

हैं। आवश्यकता उस पर गहन अध्ययन की है। यदि वैज्ञानिक इस पर अनुसन्धान करें तो अवश्य संसार के कल्याणार्थ कुछ तथ्य प्राप्त कर सकेंगे।

अत: यह मानना होगा की पुराणों में तन्त्रसाहित्य है, वह बहुत ही रहस्यात्मक है तथा तन्त्रसाहित्य प्राय: अधिकांश पुराणों और हमारे विशालकाय ग्रन्थ महाभारत में भी है। अत: पुराणों और तन्त्र साहित्य को पाखण्डियों का ग्रन्थ कहना उचित नहीं है।

षडाम्नाय तन्त्र—षडाम्नाय तन्त्र तन्त्र संग्रह में पाया गया है। शाक्तों ने जो भारत एशिया को तीन विभागों में विभक्त कर विष्णुक्रान्ता, रथाक्रान्ता और अश्वक्रान्ता के रूप में जो तीन विभाग किये हैं, उनमें रथाक्रान्ता वर्ग में षडानन तन्त्र का नाम आया है। वैसे षडाम्नाय का अर्थ—षड् = छ:, आम्नाय का अर्थ है मुख। अत: यह तन्त्र षडाम्नाय छ: मुख वाले कार्तिकेय द्वारा लिखा गया हो, परन्तु यह तथ्यगत रहस्य नहीं है। रथाक्रान्ता वर्ग में बताया गया है कि इस वर्ग में भी ६४ तन्त्र हैं, परन्तु उपलब्ध वहुत ही कम हैं। हो सकता है कि कुछ पाण्डुलिपि के रूप में संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रहे हों, जहाँ कुछ दीमक के उदरस्थ हो गये हों, अथवा कुछ यवन शासकों की क्रोधाग्नि में मात्र भस्म रूप में बदल गये हों। फिर भी आम्नाय ग्रन्थों का परिचय प्राप्त होता है।

तांत्रिक साहित्य का स्रोतो विभाग और आम्नाय विभाग प्रसिद्ध है, जिसमें पहला विभाग शैव तन्त्रों के लिये है और दूसरा विभाग शाक्त तन्त्रों के लिये मान्य है। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार पाँच आम्नायों की उत्पत्ति शिव के मुख से हुई है। मुख से उत्पत्ति होने के कारण इन्हें आम्नाय कहा गया है। वे आम्नाय हैं—१. पूर्वाम्नाय, २. पश्चिमाम्नाय, ३. दक्षिणाम्नाय, ४. उत्तराम्नाय तथा ५. ऊर्ध्वाम्नाय। यहाँ शंकर जी स्वयं पार्वती से कह रहे हैं कि ये उपर्युक्त पाँचों मेरे मुख से ही निकले हैं।

मत पंचवक्त्रेभ्यश्च पञ्चाम्नाया: समुद्गता:।
पूर्वश्च पश्चिमश्चैव दक्षिणश्चोत्तरस्तथा।।

—कुलार्णव तन्त्र, ३/७

यह विभाग परशराम कल्प सूत्र (१-२) में कुछ भिन्नता के साथ निर्दिष्ट है। नित्यषोडशिकार्णव में चार ही आम्नाय स्वीकृत हैं तथा सभी टीकाकार सहमत भी हैं, किन्तु भास्कर राय का मत है कि चतु: शब्द ऊर्ध्वाम्नाय का ही सूचक है। सौन्दर्यलहरी (१/१०) में छ: आम्नाय सूचित हैं। टीकाकार कैवल्याश्रम ने अनुत्तराम्नाय को छठा आम्नाय, तन्त्रालोक में षष्ठ आम्नाय का उल्लेख रहस्यस्रोतस् ज्येष्ठ अधोवक्त्र पाताल यन्त्र अथवा पिचुवक्त्र के नाम से हुआ है। अत: छठा आम्नाय प्राय: कम ही ग्रन्थों में मिलता है। षडाम्नाय तन्त्रों का विस्तार से वर्णन शक्तिसंगमतन्त्र में मिलता है। उपर्युक्त पाँचों आम्नायों के विषय में कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि पूर्वाम्नाय सृष्टि रूप है,

दक्षिणाम्नाय स्थिति रूप है, पश्चिमाम्नाय संहार रूप है और उत्तराम्नाय अनुग्रह रूप है। दूसरे प्रकार से पूर्वाम्नाय मन्त्रयोग है। दक्षिणाम्नाय भक्तियोग, पश्चिमाम्नाय कर्मयोग है और उत्तराम्नाय ज्ञानयोग है। (कु० तन्त्र, ३/४१-४२) कुलार्णव तन्त्र में ऊर्ध्वाम्नाय को सबसे उत्तम माना गया है। वहाँ कहा गया है कि श्रीगुरुमुख से जो उचित प्रकार से ऊर्ध्वाम्नाय को जानता है, वह शास्त्रोक्त मार्ग से जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है।

शक्तिसगम तन्त्र में कुछ षडाम्नाय तन्त्र का परिचय मिलता है, जहाँ सभी प्रकार के आम्नायों के मार्ग कथन को क्रम से बताया गया है कि पूर्वाम्नाय में दक्षिण और वाम दोनों मार्गों का प्रयोग होता है। दक्षिणाम्नाय में भी दिव्य एवं वाम दोनों मार्गों का प्रयोग होता है। पश्चिमाम्नाय में कौल और दक्षिण मार्ग का प्रयोग होता है। उत्तराम्नाय में कौल और वाम दोनों मार्ग प्रचलित हैं। ऊर्ध्वाम्नाय में केवल दिव्य मार्ग का प्रयोग तथा षडाम्नाय (पातालाम्नाय) में केवल वाममार्ग ही प्रचलित है। (शक्तिसंगमतन्त्र, छिन्नमस्तक खण्ड, पटल ६/८३-८४)।

षडाम्नाय में शकुन निरूपण—१. जय, २. लाभ, ३. मन:खेद, ४. सौख्य, ५. गमन, ६. भृत्य, ये षडाम्नाय के शकुन हैं। अत: साधक छ: कोष्ठों का निर्माण करे, फिर उनमें मंत्राभिमन्त्रित पूंगीफल स्थापित करे। (श०सं०तं०, छिन्नमस्तिका खण्ड, ६/८८-८९)।

शक्तिसंगम तन्त्र छिन्नमस्तिका खण्ड में सभी आम्नायों के देवताओं के वर्णनक्रम में कहा गया है कि—षडाम्नाय (पातालाम्नाय) के देवता हैं—१. दक्षिणी, २. किन्नरी, ३. सिद्धि, ४. पूतना, ५. कवचा, ६. कूष्माण्डिनी। (श०सं०, ७/१५)।

महामूर्ति के मतानुसार षडाम्नाय के देवता—

षडाम्नाय में चेटकादि प्रयोग में देखे जाते हैं तथा इनमें कादि हादि दोनों मान्य हैं। कादि का अर्थ काली तथा हादि का अर्थ शिव है, अत: इस आम्नाय में शिव और काली दोनों ही मान्य हैं।

भगवान् शंकर ने पार्वती से कहा कि हे परमेश्वरि! महेन्द्रजालविद्या तथा परकाया प्रवेश और खेचरी विद्या से सम्बन्धित पातालाम्नाय (षडाम्नाय) विद्या कही जाती है। इसमें १०५ तन्त्र और १४०० उपतन्त्र हैं, यहाँ तक कि इसमें रहस्य से भी अतिरहस्य आम्नायों को कहा गया है।

पातालाम्नाय (षडाम्नाय) के अन्तर्गत समस्त शाबर, समस्त अघोर जातियाँ, चीन, बौद्धागम, जैन एवं समस्त चेटकादि, पितृभू निवासिनी, चण्डकात्यायनी, दो महामण्डल, आठ यक्षिणी, कालकूट, सर्प के अधीश्वर, किन्नरी, चेटिका ये सब षडाम्नाय के देवता हैं। श.छि.खं. ७/१३३-१३४

षडाम्नाय में ६६ तन्त्रों से युक्त काली ऊर्ध्वमुखी है। मधुमती विराट् रूपा पाताल में राज्य संचालन करती है। (श.छि.खं., ७/१६४)।

पातालाम्नाय में तीनों लोकों की उत्पत्ति रूप सम्भोग योग का निरूपण किया गया है। इसमें रसायन, वेताल, वह्नि वेताल और यक्षिणी दिखाई पड़ती है। इसमें सम्भोग योग और पञ्चयोग अर्थात् मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन वाला आम्नाय कहा गया है। साथ ही भगवान् शंकर द्वारा इसे अत्यन्त गुप्त रखने को कहा गया है तथा 'गोपनीयं गोपनीय गोपनीयं पुनः शिवे।' यह कह कर इसकी गोपनीयता पर जोर दिया गया है तथा यह भी कहा गया है कि गोपनीय रखने वाला साधक त्रिशक्ति से समायुक्त होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है, तथा शिव ने पार्वती से यह भी कहा कि हे देवि! कलियुग में यही योग विस्तार को प्राप्त करेगा। (श०स०, छिन्न०, ८/५६-६०)।

षडाम्नाय में मन्त्रों की संख्या—शक्तिांगम तन्त्र छि. म. खण्ड के अनुसार इस तन्त्र में कोट्यर्बुद मन्त्रों की संख्या मानी गयी है। अतः उपर्युक्त वर्णनानुसार षडाम्नाय तन्त्र में मन्त्रों की संख्या की कोई गिनती नहीं है।

शक्ति संगम तन्त्र के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह षडाम्नाय तन्त्र शाक्त सम्प्रदाय का तन्त्र है तथा यह सबसे भिन्न प्रतीत होता है।

षडाम्नाय तन्त्र की विशेषतायें—षडाम्नाय तन्त्र का षडाम्नाय के रूप में स्पष्टतः कहीं भी परिचय नहीं प्राप्त होता है, केवल शक्तिसंगम तन्त्र में षडाम्नाय को पातालाम्नाय के नाम से आख्यात किया है, अतः इसी पातालम्नाय तन्त्र को ही षडाम्नाय मानना होगा तथा उपर्युक्त वर्णन से ऐसा स्पष्ट भी हो रहा है कि यह पातालाम्नाय ही षडाम्नाय तन्त्र है। जैसा कि शक्तिसंगम में कहा गया है कि पातालाम्नाय में कादि और हादि दोनों देवता समान माने गये हैं।

कादि हादिमते साम्यं देशपर्याय एव च।
इति संक्षेपतः प्रोक्तमाम्नायाख्यं शृणु प्रिये।।

—(श०सं०तं०, छिन्न०, ७/२६)

इस तन्त्र की पाण्डुलिपि में भी कहा गया है कि—

ककारः कालिका साक्षात् महायोनि स्वरूपिणी।

इस तन्त्र में ककार को साक्षात् कालिका माना गया है तथा उसे महायोनि स्वरूपिणी कहा गया है। यही नहीं, इसमें तो यहाँ तक कहा गया है कि—

श०सं० तन्त्र के छिन्नमस्ता खण्ड में शाबर नाम आया है ७/१३३-१३४ में जिन देवताओं का नाम आया है वह देवता इसमें भी वर्णित हैं, इसके लिये इस तन्त्र के १/१५ श्लोक को मिलाया जा सकता है, जिसमें शाबर नाम स्पष्टतः घोषित है। देखिये—

रसातलाम्नायं शृणं यत्नेन शाम्भवि।
समस्तं शाबरं देवि समस्ताघोर जातयः।।

—(शक्तिसंगम छिन्नमस्ता खण्ड ७/१३१)

उड्डीश-डामर-जाल-शाबरादिरसायना।

—(षडाम्नाय तन्त्र १/१५)

यहाँ दोनों में शाबर शब्द मिल रहा है। इससे सिद्ध होता है कि यह तन्त्र शक्तिसंगम तन्त्र के पातालाम्नाय तन्त्र से कुछ मेल खाता है, परन्तु यही षडाम्नाय तन्त्र है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस तन्त्र की अपनी कुछ भिन्न विशेषतायें ही हैं, परन्तु इतना निश्चित है कि यह शाक्त तन्त्र है तथा इसमें महामाया प्रकृतिस्वरूपा त्रिपुरेश्वरी का वर्णन किया गया है। इस वर्णन क्रम में इस तन्त्र की अनेकों विशेषतायें सामने उभर कर आती हैं।

षडाम्नाय तन्त्र में कामदेव को ही षडाम्नाय माना गया है तथा उसका नित्य स्मरण करना बताया गया है। इसमें सत्यता है कि यह कामदेव ही तो संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का प्रतीक है। कामदेव के कारण ही तो यह संसार चल रहा है, अतः वह पूज्य और स्मरणीय है, इसीलिये तो कहा गया है कि—

कामो मन्मथः कन्दर्पो मकरध्वजसञ्ज्ञकः।
मीनकेतुं स्मरेन्नित्यं षडाननं स्वराननम्।।
षडाम्ना ब्रह्मा सायुज्य आधारः सर्वव्यापितः।
पञ्चाननः परमात्मा च योगी भोगी सदाशिवः।।

कामदेव मन को मथने वाला है, अर्थात् मन को व्यथित कर देने वाला है तथा वही कुत्सित दर्प वाला है, इसीलिये उसे मकरध्वज नाम दिया गया है, क्योंकि मकर (मगर) के समान उसका अभिमान है, दर्प है, इसी कारण उसकी ध्वजा को मकर की ध्वजा बताया गया है, तदनुसार उसका नाम मकरध्वज रखा गया है। वास्तव में कामदेव ऐसा ही है, वह जो चाहता है, वह प्राणधारी से कराने में सफल हो ही जाता है। उन कामदेव को मीनकेतु भी कहा गया है, अर्थात् उनकी ध्वजा पर मत्स्य का चिह्न भी है, अतः उन मीनकेतु मकरध्वज षडानन स्वरानन भगवान् कामदेव का नित्य स्मरण करना चाहिये। —(षडम्नाय तन्त्र १/५०-५१)

षडाम्ना तन्त्र द्वारा ब्रह्म के निकट पहुँचना सर्वव्यापित आधार है। पंचानन भगवान् शिव परमात्मा, योगी, भोगी और सदा सबका कल्याण करने वाले हैं।

षडाम्नाय में पंच मकार—जैसा कि कहा जाता है कि शाक्त तन्त्रों में मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन आवश्यक होते हैं। अतः इनका प्रयोग साधक को करना चाहिये तथा गुरु गोरखनाथ ने तो इसकी भरपूर निन्दा की है, परन्तु बाद में मत्स्येन्द्रनाथ

ने इससे परहेज नहीं किया है। अत: इस तन्त्र में भी इन पंचतत्त्वों के प्रयोग की बात कही गयी है तो कुछ अभद्र नहीं है। इसके कुछ संकेत इसके अन्तिम चरण में मिलते हैं, परन्तु वहाँ स्पष्ट नहीं है, फिर भी इस शंका का निवारण कर दिया गया है—

वहाँ पर सुरा शक्ति है, मांस शिव है और मत्स्य सुख के मार्ग का गमन करने वाला है। अर्थात् सुख के मार्ग को प्राप्त कराने वाला है। श्वास ग्रास में और मृत्यु का नाश करे में मुद्रा का प्रकाश करने वाली है। यहाँ वाम साधना के पञ्च मकार में से चार का वर्णन किया गया है। जो हैं सुरा (मद्य), मांस, मत्स्य और चौथा मकार मुद्रा। अब पाँचवाँ मकार है—मैथुन। शिव के सम्यक् दर्शन के लिये वासुकी सदा व्याकुल रहती है। रकार रमण (मैथुन) करने वाली बाला है तथा वह आकार स्वरूप वाली है। मकार श्री महाकाल है जो ब्रह्मपुर में स्थित है तथा वे ही गुरु हैं। रमणी रमणयोग है तथा वे ही आत्माराम कहे जाते हैं।—(षडम्नाय तन्त्र १/६४-६६)

षडाम्नाय में ॐ की अपूर्व व्याख्या—ओइम 'परमेश्वर' परं ब्रह्म के नाम की जितनी विज्ञान सम्मत व्याख्या षडम्नाय तन्त्र में की गयी है, वैसी किसी दर्शन में नहीं है। इसमें कहा गया है कि—

उस परमब्रह्म परमात्मा का सगुण स्वरूप ओंकार है। अर्थात् 'ओ३म्' जो तीन गुण वाला है, वे तीन गुण हैं अ, उ, म्। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत और सृष्टि, स्थिति, प्रलय तथा सत्त्व, रजस् तमस्। तथा यह ओंकार ही वेद का मूल कारण है। यही ओंकार शब्द नाद और बिन्दु के समायोग में भ्रमर मोक्ष प्रदान करने वाला है।

यह ओंकार ही मन की छाया है, यही महामाया है तथा सृष्टि का मूल कारण है। यह ओ३म् का मकार तीन बिन्दुओं वाला है। इसमें अकार साक्षात् है तथा यह अकार सृष्टि का करने वाला है। भाव यह है कि परमात्मा का मुख्य नाम 'ओ३म्' तथा यह ओ३म् अ, उ और म् इन तीन अक्षरों से बना है, जो तीनों अक्षर तीन अर्थ रखते हैं। इन तीन अर्थों में उस परमात्मा के तीन कार्य बतलाये गये हैं। इसमें अकार साक्षात् सृष्टिकारक है, अर्थात् वह परमात्मा सृष्टि का करने वाला है।

इस ओ३म् शब्द में दूसरा अक्षर उ है, जो 'उ' स्थितिरूप है, अर्थात् उ का अर्थ है स्थिति रखने वाला, अर्थात् वह परमात्मा इस सृष्टि को स्थित रखता है अर्थात् समस्त प्रपञ्च को स्थिर रखता है, अर्थात् जो सृष्टि हुई है, उसका पालन करता है तथा यह उकार ही बुद्धि रूप है और जनार्दन अर्थात् भगवान् विष्णु हैं। तथा इस प्रकार भी कह सकते हैं कि अकार सृष्टिरूप अर्थात् ब्रह्मा है तथा उकार स्थितिरूप अर्थात् विष्णु है तथा मकार बिन्दु (सकल प्रपंच) का संहार करने वाला है तथा वही अहंकार स्वरूप अर्थात् महेश्वर है।

अब ओ३म् की देवों के रूप में कल्पना करते हैं।

अकार ब्रह्मा का रूप है, उकार विष्णु का रूप धारण करने वाला है और मकार महारुद्र (शिव) है जो भौंहों के मध्य में स्थित है। इस प्रकार इस बिन्दु की सम्यक् व्याख्या की गयी है। यह बिन्दु ही नाद, सूक्ष्म और लयात्मक है। इस ओंकार बिन्दु में अकार नयन स्थान है, उकार कृष्णरूप को धारण करने वाला है और मकार शिव रूप है। —(षडाम्नाय तन्त्र १/७३-७७)।

क्रमाभ्यास की इस जन्म में अथवा दूसरे जन्म में अवश्यम्भाविता—क्रमानुसार अभ्यास करने की इस तन्त्र में अत्यन्त आवश्यकता बतायी है तथा उसे इस जन्म में अथवा परजन्म में अवश्य फल प्राप्ति का कारण बताया है। कुलशक्ति अर्थात् शिवशक्ति के मार्ग में क्रमशः अभ्यास आवश्यक है। बिना अभ्यास सफलता सम्भव नहीं। इसका कितना मार्मिक विज्ञान सम्मत वर्णन इस तन्त्र में पाया गया है।

षडाम्नाय तन्त्र में गुरु और उसका महत्त्व—इस तन्त्र के अनुसार तीन प्रकार के गुरु बतायें गये हैं—१. शिक्षागुरु, २. दीक्षा और गुरु और ३. सद्‌गुरु।

शिक्षा गुरु—यहाँ पढ़ाने वाले गुरु को देवता कहा गया है। देखिये—

विद्या देने वाला सच्चा गुरु होता है, वही देवता है, यशोऽर्थी है। यश को प्राप्त करने वाला है। अर्थार्थी है तथा ज्ञान से हीन होने, ज्ञान की वृत्ति का अपहारक है।

दीक्षा गुरु—यहाँ महाकाल शिव को दीक्षा गुरु माना गया है तथा माता-पिता को शिक्षा गुरु कहा गया है। वैसे भी माता-पिता सन्तान के पहले गुरु होते हैं।

दीक्षा गुरु महाकाल (शिव) है, अर्थात् जो तन्त्र का अभ्यास कराने वाला गुरु है, वह महाकाल (शिव) है तथा परमेश्वरी कालिका है। माता-पिता शिक्षा गुरु हैं। इस प्रकार गुरु के अनेकों अंग स्मरण किये गये हैं। —(षडाम्नाय तन्त्र २/१३-१४)

गुरु मन्त्र और सद्‌गुरु के प्रति भाव—गुरु के प्रति, मन्त्र के प्रति तथा देव के प्रति एक आत्मा का दृढ़ निश्चय करना चाहिये। अर्थात् गुरु (शिव) परब्रह्म में, मन्त्र में और देव की आराधना में एक आत्मभाव होना चाहिये। यहाँ यह भी कहा जाता है कि साधना काल में गुरु मन्त्र और इष्टदेव के प्रति एकात्म भाव रखना चाहिये। इन तीनों में एकता का भाव रखने पर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अर्थात् सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। —(षडाम्नाय तन्त्र २/१५)

ज्ञान के प्रकाश में गुरु का महत्त्व—ज्ञान को प्रकाशित करने में गुरु का अत्यन्त महत्त्व है। अतः यहाँ कहा गया है कि—

जिस प्रकार काष्ठ (लकड़ी) के मध्य अग्नि होती है, उसी प्रकार शिष्य के मध्य ईश्वरी (भगवती) निवास करती है। तेल से भीगी हुई बत्ती से दीपक की धार बहती है, अर्थात् दीपक जलता है तथा भस्म (राख) से आच्छादित होते हुए भी अग्नि बिना मिले हुए ही अन्धकार को दूर कर प्रकाश करता है, उसी प्रकार गुरु भी शिष्य के हृदय में ज्ञान का प्रकाश करता है।

शिव ही सद्गुरु—इस तन्त्र में शिव को ही सद्गुरु माना गया है, देखिये—वह परं ब्रह्म स्वप्रकाश स्वरूप है, उसी प्रकार सद्गुरु (शिव) एवं ईश्वरी (भगवती) भी स्वयं प्रकाशित हैं। तथा यह समस्त ब्रह्माण्ड पिण्ड समस्त कलाओं वाला और सब खण्डों वाला स्वयं प्रकाशित है। —(षडाम्नाय तन्त्र २/१८-२१)

मन्त्र प्रकाशन में गुरु का महत्त्व—यहाँ कहा गया है कि जिस प्रकार वृक्ष से वीज तथा वीज से वृक्ष प्रकाशित होता है, उसी प्रकार गुरुदेव से मन्त्रराज प्रकाशित होता है। मन्त्रराज से गुरुदेव प्रकाशित होते हैं। अन्य प्रकार से नहीं। स्थूल, सूक्ष्म तथा द्योति कभी स्वतन्त्र नहीं है। —(षडाम्नाय तन्त्र २/३५)

गुरु और सदाशिव एक ही हैं—इस तन्त्र में गुरु के प्रति, ब्रह्म के प्रति तथा मन्त्र के प्रति सच्चिदात्मा का अभेद है, अर्थात् गुरु, ब्रह्म और मन्त्र सत् चित् और आत्मा के समान हैं। महाकाल (सदाशिव) आदिनाथ हैं। वे ही परात्मा अर्थात् आत्मा से परे सनातन परं ब्रह्म है। इस तन्त्र के अनुसार हरि के चक्र यन्त्र और देव में कोई भेद नहीं है तथा वरेश्वर मन्त्र में भी कोई भेद नहीं है। सच्चिदानन्द परं ब्रह्म ही सद्गुरु हैं, वे ही शरीरों के मध्य शरीर हैं।

इस तन्त्र में कहा गया है उन गुरु के मुख में चिदात्मक (चैतन्यात्मक) महाद्योति प्रकाशित हो रही है। वहाँ निष्कल और सकल ब्रह्म का गुरु प्रकाश करने वाला है, अर्थात् गुरु के मुख से निष्कल और सकल ब्रह्म प्रकाशित हो रहा है।

इस तन्त्र के अनुसार सद्गुरु आयु को देने वाले और परमानन्द के प्रकाशक हैं। माया के योग में जिस प्रकार जीव पुनः-पुनः आता है। अर्थात् मरता है, जन्म लेता है। अतः सद्गुरु (सदाशिव) देवों की आयु को देने वाले हैं। वे चित्कुल हैं अर्थात् परमानन्द प्रकाश प्रदान करने वाले तथा कुल मन्त्र अर्थात् परमानन्द प्रकाश के मन्त्र को देने वाले हैं। —(षडाम्नाय तन्त्र २/३८, ४५, ४७)

सद्गुरु ही सर्वत्र—इस तन्त्र के अनुसार सद्गुरु ही किसी साधन के संकेत का ज्ञान रखने वाला होता है। वही क्रिया में कुशल होता है। वह सब कुछ जानने वाला तथा विशेष जानने वाला होता है। वही यथायोग्य नियोजित भावों के आचरण का अधिकारी होता है। —(षडाम्नाय तन्त्र ३/२०७)

सद्गुरु की ज्ञानप्रदाता—गुरु की कृपा के प्रसाद से संयोग होने पर और शुभ योग होने पर विशेष ज्ञान और प्रेम से मिला हुआ परम ज्ञान प्राप्त होता है।

श्री गुरु (सदाशिव) ज्ञान प्रदान करने वाले हैं और फल को प्रदान करने वाली परमेश्वरी (पार्वती) हैं, जिन्हें प्रकृति भी कहा जा सकता है। ये दोनों चिद्घनाकार हैं, अर्थात् ये दोनों अत्यन्त चेतनता के आकार वाले हैं तथा गुरु (सदाशिव) करुणा के सागर हैं। —(षडाम्नाय तन्त्र २/५३-५४)

गुरुभाव ही दीक्षाभाव—इस तन्त्र के अनुसार गुरु का होना दीक्षा प्राप्त होना है, क्योंकि गुरु ही दीक्षा देता है। तथा शिक्षा अनन्तक है। अर्थात् शिक्षा का होना कभी अन्त न होने वाला ज्ञान है। नि:सम्पर्क स्त्रियों द्वारा सम्बन्ध पति-पत्नी का ही होता है। स्त्रियाँ तो केवल देखने की वस्तु हैं। —(षडाम्नाय तन्त्र ३/२०५)

षडाम्नाय में वेदान्त भाव—षडाम्नाय तन्त्र में वेदान्त को आधार माना गया है। इसमें ब्रह्म सत्त्यं जगन्मिथ्या का अच्छा वर्णन है। वेदान्त का सिद्धान्त है कि ब्रह्म ही सत्य है, वही एक है। आत्मा परमात्मा एक ही हैं। दो समझना भ्रम है। देखिये यहाँ कहा गया है कि—

जिसका ज्ञान शुष्क होता है तथा जिसे अनैक्य (एकत्व होने) का ज्ञान रहता है, अर्थात् जो यह जानता है कि आत्मा परमात्मा का ऐक्य होता ही नहीं है, वह अनैक्य में ही ऐक्य की कल्पना करता है। द्वित्व के बिना एकत्व नहीं, क्योंकि शरीरस्थ आत्मा ही परात्मा ब्रह्म में लीन हो एकत्व में स्थित हो सकता है। द्वित्व की कल्पना करना द्वित्व नहीं है, क्योंकि द्वित्व तो है ही नहीं। वह तो एक भ्रम है। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। ब्रह्म ही है, अन्य सब तो मिथ्या है। सर्व खल्विदं ब्रह्म यह सब कुछ ब्रह्म है।

षडम्नाय में ब्रह्म का स्वरूप—षडाम्नाय तन्त्र के अनुसार समस्त ब्रह्माण्ड ही परम ब्रह्म है। देखिये—

ये समस्त आकाश में ही क्या ब्रह्माण्ड में फैला हुआ अग्नि मण्डल ही समस्त परम ब्रह्म है। जैसे कि काष्ठ के मध्य में अग्नि निष्कल (कलाओं से रहित) अर्थात् दिखाई न देता हुआ निष्क्रिय रूप में तथा सूक्ष्म तत्त्व रूप में स्थित है। उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड में ब्रह्म निष्कल तथा सूक्ष्म तत्त्व के रूप में स्थित है।

वह ब्रह्म सर्वव्यापक है, पूर्ण है, एक है तथा स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार का है तथा चिदात्मक है अर्थात् चैतन्य स्वरूप है। यह आत्मा जिसे जीव कहा गया है, वह सूक्ष्म है तथा ब्रह्म वृहद् है, अर्थात् आत्मा उस वृहद् ब्रह्म का एक सूक्ष्म अंश है। तथा दोनों ही चैतन्य रूप हैं। यहाँ ब्रह्म को स्थूल और सूक्ष्म दोनों इसलिये कहा गया है कि यह जो दृश्यमान स्थूल (ठोस पदार्थों) के रूप में संसार है, वह सब भी ब्रह्म ही है। तथा उसमें जो गतिशील तत्त्व है, जो दिखाई नहीं देता, वह भी ब्रह्म का सूक्ष्म रूप है। अत: आत्मा सूक्ष्म है, ब्रह्म बृहद् है तथा परमेश्वरी (प्रकृति) चैतन्यरूप तथा ठोस है।

सत् चित् और आनन्द स्वरूप ब्रह्म का शरीर सूक्ष्म प्रकाशक एवं स्थूल है। उनके पद में यन्त्र है, उनका शरीर सूर्य है, जो दिन और रात्रि करने वाला है।

—(षडाम्नाय तन्त्र २/३१-३३)

यहाँ पर ब्रह्म को निराकार और साकार दोनों प्रकार का बताया गया है—

निष्कल (निराकार) ब्रह्म शून्यमात्र है तथा साकार ब्रह्म दो में विलास करने वाला है, अर्थात् वह एक तो ब्रह्माण्ड में विलास करता है। दूसरा शरीरों में विलास कर

रहा है। परन्तु सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म में द्वित्व नहीं है। यह द्वित्वभाव अनुमान किया जाता है तथा यह एक अनुभव है।

द्वित्वभाव होने पर अर्थात् जब यह आत्मा शरीरस्थ होता है, तब द्वित्व भाव रहता है। तब उस द्वित्व भाव में जब द्वित्व एकात्म होने का चिन्तन करता है, तब रसाधिक्य होता है, अर्थात् परमानन्द प्राप्त होता है। शरीरस्थ आत्मा को जब परमात्मा में एक होने का ज्ञान होता है। तब ऐक्य होता है और वह ऐक्य ही उस आत्मा का प्रयोजन है। —(षडाम्नाय तन्त्र ३/२३०-२३१)

इस तन्त्र के अनुसार एक ही ब्रह्म द्वितीय है और वह निष्कल (कलाओं से रहित) और सकल कलाओं से युक्त है। पुरुष और स्त्री रूप ब्रह्म सकल है। अर्थात् जिसमें कलायें हैं, जो चलने-फिरने, घूमने आदि कलाओं वाले हैं। ऐसे ब्रह्म में स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग हैं। इनमें सब प्रकार के प्राणी आ जाते हैं। अत: ये दो प्रकार के जरूर हैं, परन्तु दो तरह के रहते हुए एक ही हैं। —(षडाम्नाय तन्त्र ३/३६८)

महावाक्य—'तत्त्वमसि' यह वेदान्त का महावाक्य है, जिसे इसमें भी स्वीकार किया गया है। देखिये—तत्त्वमसि अर्थात् 'वह तू है' अर्थात् यह आत्मा ही ब्रह्म है अर्थात् आत्मा का परमात्मा में मिलकर 'तत्त्वमसि' की स्थिति हो जाना ही (महावाक्य) है, अर्थात् तत्त्वमसि यह महावाक्य है। यह महावाक्य ज्ञान (आत्मा) और विज्ञान (परमात्मा) से संयुक्त है अर्थात् आत्मा से परमात्मा को मिलाने वाला है। पितर देवता आदि की क्रियाओं वाला सामवेद का गान शक्ति ज्ञान है। —(षडाम्नाय तन्त्र १/३१)

अहंतत्त्व और ब्रह्म—यहाँ अहं तत्त्व को भी ब्रह्म माना गया है—यह 'मैं' का भाव अर्थात् 'अहं' सबको अपने समान देखता है। यह आत्मा जो 'अहं' तत्त्व वाली है, वह हिंसा और वाद से रहित है। अहं तत्त्व ही ब्रह्म है। खण्डज्ञानी तथा आत्माराम है। —(षडाम्नाय तन्त्र १/३५)

आत्मा के दो रूप—षडाम्नाय तन्त्र के अनुसार प्राणी शरीर में स्थित परमात्मा का चैतन्य इस पिण्ड का आधेय है। सच्चिदानन्द स्वरूप वह सबको उत्पन्न करने वाला परमेश्वर सभी कलाओं (विद्याओं) वाला है। —(षडाम्नाय तन्त्र ३/१५)

मन्त्र का महत्त्व—षडाम्नाय तन्त्र में मन्त्र को ही सब योगों की सफलता का कारण बताया गया है। वहाँ पर कहा गया है कि—

सभी योग सहयोगी योग हैं। मन्त्रयोग ही सफलता वाला योग है। मन्त्र ही परम आराध्य है तथा देवताओं व बीजपूर्विका अर्थात् देवताओं को सिद्ध करने का पूर्व बीज है, पूर्व कारण है। पहला कारण है।

जो मन्त्रहीन है, यज्ञादि क्रिया नहीं करता है, ज्ञानहीन है, विडम्वित अर्थात् व्याकुल है तथा मन्त्र के अर्थ को, मन्त्र की चेतनता को एवं योनिमुद्रा को जो नहीं

जानता है, वह व्यक्ति यदि सैकड़ों करोड़ जप करे, तब भी सिद्धि (सफलता) नहीं होती है।
—(षडाम्नाय तन्त्र ३/१६५-१६६)

परमानन्द—षडाम्नाय तन्त्र आत्मसुख को ही परमानन्द मानता है। देखिये—

आत्मसुख और अपना रूप अर्थात् आत्मा का रूप ही आत्मसुख है, क्योंकि जब मनुष्य को अपना अर्थात् आत्मा का रूप ज्ञात हो जाता है, तब उसे आत्मसुख प्राप्त होता है तथा सुख ही आनन्द कहा जाता है। तथा आनन्द ब्रह्म का रूप है, क्योंकि आत्मानन्द जिसे ब्रह्मानन्द कहा गया है, वह नित्य होता है, इसलिये उसे नित्यानन्द भी कहा जाता है।
—(षडाम्नाय तन्त्र ३/२२१-२२२)

प्रकृति—सांख्य प्रकृति को तीन गणु वाली मानता है। अतः इस तन्त्र में प्रकृति को महामाया कहते हुए उसको तीन गुण वाली बताया है। देखिये—

महामाया जो उस महाकाल की माया है, जिसे प्रकृति कहा जाता है, उसमें गुणों का योग है। सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण का योग होने पर महामाया है तथा उस महामाया के योग में विष्णु, शिव आदि देवता पूर्ण हुए हैं। तब सत्त्वगुण होने पर देवता होते हैं तथा रजोगुण और तमोगुणों के अस्तित्व में यह समस्त चराचर जगत् है।
—(षडाम्नाय तन्त्र ३/१२)

फिर आगे कहा गया है कि—

महामाया वाले महेश्वर माया की कलाओं से युक्त हैं। माया (प्रकृति) गुणशक्ति वाली होती है तथा उसका प्रतिबिम्ब मनोमय है। अर्थात् उस गुणशक्ति वाली माया का प्रतिबिम्ब मन पर पड़ता है, जिसके प्रभाव में मन तरह-तरह की कल्पनायें करता है।

सांख्य के प्रकृति विकृति रूप अर्थात् कारण कार्य रूप महतत्त्व (बुद्धि) अहंकार और पंचतन्मात्राओं तथा इन्द्रियों का वर्णन यहाँ देखिये—

ये सात तत्त्व शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, बुद्धि और अहंकार स्वर्ग आदि में गम्य हैं, अर्थात् स्वर्ग आदि में गमन करते हैं। एवं पर ज्ञानभूमि है और विचारशील है। वह निष्कल और सकल परमेश्वर तत्त्व स्वरूप सब कुछ जानता है।

बाह्य और अन्तः इन्द्रियाँ धर्म और ज्ञान कर्म में श्रेय रखती हैं, अर्थात् बाह्य इन्द्रियाँ हैं। हाथ, पैर, मुख, मूत्रेन्द्रिय और गुदा जो धर्म कर्म करती हैं, अर्थात् कर्मेन्द्रियाँ तथा श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये अन्तः इन्द्रियाँ जो ज्ञानकर्म में प्रवृत्त हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के विषयों का ज्ञान कराती हैं।

विषयभूत और वर्ण तथा देवतागण इन सब इन्द्रियों के अलग-अलग हैं। मन, बुद्धि और अहंकार ये चित्तेन्द्रियाँ अन्तरा इन्द्रियाँ हैं। अर्थात् ये तीनों इन्द्रियाँ अन्तर्गत रहने वाली हैं, जो दिखाई नहीं देतीं।

दर्शन आदि जो विषय हैं, उनका तेज सूर्य आदि देवता हैं, अर्थात् सूर्य के कारण देखना सम्भव है। सूर्य, चन्द्रमा आदि देवता न हों तो देखना ही असम्भव है। पंच महाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के अस्तित्व के अंश में मन, अहंकार और बुद्धि ये अन्तरिन्द्रियां ही कारण हैं। भाव यह है कि इस पंचमहाभूत निर्मित शरीर के अस्तित्व में मन, बुद्धि और अहंकार का ही महत्त्व है। इनके कारण ही इनकी पहचान है। इनके बिना ये सब जडवत हैं।

प्रकृति के तीनों गुणों में से रजोगुण के समष्टिभूत होने पर पाँच प्राण उत्पन्न होते हैं, अर्थात् जब इन पंच महाभूतों में तीनों गुणों के अस्तित्व में रजोगुण का उद्रेक होता है, तब यह पाँच प्राण पैदा होते हैं। ये पाँच प्राण प्राणी के शरीर रहते हैं। इनके नाम हैं प्राण[१], अपान, समान, उदान और व्यान। इनमें प्राण का हृदय में वास है, अपान गुदा में रहता है, समान नाभि में स्थित है, उदान कण्ठदेश में स्थित है, जो डकार के रूप में बाहर आता है और व्यान समस्त शरीर में गमन करता है तथा तमोगुण के उद्रेक में केवल मोहरूपा पर और अपर जड़ तत्त्व की स्थिति है।

प्रत्येक भूत में सत्त्वगुण का अंश होने पर सुनना आदि विषय उत्पन्न होते हैं, अर्थात् जब आकाश भूत में सत्त्व का उद्रेक होता है, तब कान द्वारा सुनने की शक्ति, वायु भूत में होने पर त्वक् में स्पर्श शक्ति, अग्नि में सत्त्व प्राबल्य से आँख में देखने की शक्ति, जल में सत्त्व के उद्रेक से जिह्वा में रसनशक्ति तथा पृथ्वी में सत्त्व के उद्रेक से नासिका में घ्राण शक्ति का प्रादुर्भाव होता है तथा प्रत्येक भूत में रजोगुण के उद्रेक से कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति हुई। जैसे कि हाथों में कार्य करने की, पैरों में चलने की, मुख में खाने की, मूत्रेन्द्रिय में मूत्र त्याग तथा गुदा में मल त्याग की शक्ति पैदा हुई।

इन्हीं पंच महाभूतों में जब तमोगुण का उद्रेक हुआ, तब स्वभावत: काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार इन पाँच का प्रादुर्भाव हुआ। चार प्रकार के इस पृथ्वी पर जीव-जन्तु चराचर प्राणी हैं, वे हैं—१. अण्डज—अण्डे से उत्पन्न होने वाले पक्षी, सर्प, मगरमच्छ, मछली आदि। २. जरायुज—जार से पैदा होने वाले मनुष्य, पशु आदि जलज। ३. स्वेदज (पसीने से पैदा होने वाले डींगर आदि उद्भिज—मीन फोड़कर निकलने वाले वृक्ष, अन्न, वनस्पतियाँ आदि।

ये पाँच महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पंचीकृत[२] हैं तथा पञ्च कोष से समन्वित हैं, वे हैं—१. अन्नमय कोष, २. प्राणमय कोष, ३. मनोमय कोष, ४. विज्ञानमय कोष, ५. आनन्दमय कोष। सबका कारण आन्दमय कोष लिङ्ग प्राणमय कोष में व्याप्त है। इसे ही आत्मा कहा जाता है, क्योंकि यह अहंकारात्मक और अविद्यात्मक कोष है।

मनोमय कोष प्राणमय कोष और विज्ञानमय कोष ये तीनों ही अन्न और जल आदि से उत्पन्नहुए हैं, क्योंकि अन्नमय कोष वनस्पतियों से प्राणों की उत्पत्ति हुई है,

क्योंकि वनस्पति में भी प्राण है, फिर मनोमय का विकास हुआ, जिसमें पशु-पक्षी आदि हैं। जिनमें मन तो होता है, परन्तु बुद्धि का विकास नहीं है। उसके बाद बुद्धि रखने वाले मनुष्य हैं, जिसे विज्ञानमय कोष कहा जाता है। उसके बाद आनन्दमय कोष का विकास, जिनमें देवगण आते हैं। वैसे मेरे विचार से मनुष्यों में ही जो विशेष बुद्धिमान् व्यक्ति हैं, वे ही देव हैं तथा वे ही आनन्दमय कोष के प्राणी हैं। जीव में जागृत अवस्था में पच्चीस तत्त्व होते हैं। वे हैं—एक पुरुष जिसे आत्मा कहा जाता है तथा चौबीस प्रकृति के तत्त्व हैं। वे हैं—१. प्रकृति, २. महत्तत्त्व, ३. अहंकार, ४. शब्द, ५. स्पर्श, ६. रूप, ७. रस, ८. गंध, ९. आकाश, १०. वायु, ११. अग्नि, १२. जल, १३. पृथ्वी, १४. मन, १५. श्रोत्र, १६. त्वक्, १७. चक्षु, १८. जिह्वा, १९. घ्राण, २०. हस्त, २१. पाद, २२. मुख, २३. लिङ्ग, २४. गुदा।

इस प्रकार ये पुरुष और प्रकृति के मिलाकर २५ तत्त्व हुए। ये जीव की जागृत अवस्था अर्थात् जीवित प्राणी के तत्त्व हैं।

स्वप्न की वैज्ञानिकता—स्वप्नावस्था का कितना मार्मिक और विज्ञान सम्मत वर्णन इस तन्त्र में मिलता है। देखिये—

स्वप्न में मात्र १९ तत्त्व स्थित रहते हैं। उस समय आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्त्व नहीं रहते, अर्थात् स्वप्नावस्था अवस्था में प्राणी स्वप्न में सब कुछ करता, देखता, सुनता, खाता, पीता, उठता, बैठता, गाता, रोता आदि सब करता है, परन्तु वे सब कार्य पंच महाभूतों से सम्बद्ध न होने के कारण कार्य रूप में परिणत नहीं होता है। वह खा रहा है, परन्तु पेट में नहीं जा रहा, क्योंकि वहाँ पेट नहीं है। वह रो रहा है; परन्तु आंसू नहीं निकल रहे, वह दौड़ रहा है; परन्तु पैर नहीं चल रहे। इस प्रकार केवल उन्नीस तत्त्व ही स्वप्न काल में अवस्थित रहते हैं, क्योंकि तत्त्व स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के होते हैं। लिङ्ग शरीर में सूक्ष्म तत्त्व भोगात्मक होते हैं, अर्थात् स्वप्नावस्था में सभी सूक्ष्म तत्त्व भोग करते हैं। इसलिये स्वप्न में प्राणी सब कुछ करता है। ऐसा लगता है कि प्राणी खा रहा है, पी रहा है, देख रहा है, सुन रहा है, भोग कर रहा है, परन्तु सब कुछ करते हुए वह स्थूल शरीर से कुछ नहीं करता है।

सुषुप्ति अवस्था का वर्णन—सुषुप्ति अवस्था प्रलय की अवस्था है। इसका मार्मिक वर्णन इस तन्त्र में प्रस्तुत है। देखिये—

सुषुप्ति अवस्था प्रकृतिस्थ अवस्था है। उस समय प्राणी के समस्त तत्त्व प्रकृति (मूल तत्त्व) में स्थित हो जाते हैं, वह सत्त्व प्रधान अज्ञान है (सर्वस्य स्थूलसूक्ष्मोपाधेः कारणोपाधौ (प्रकृतौ) लीनत्वं सुषुप्ति) अथात् सभी स्थूल-सूक्ष्म तत्त्वों का कारणोपाधि प्रकृति तत्त्व में लीन हो जाना सुषुप्ति है तथा मृत्यु प्रलय को कहा जाता है, अर्थात् समस्त तत्त्वों का प्रकृति में लीन हो जाना मृत्यु है तथा प्रलय १.

नित्य, २. नैमित्तिक, ३. प्राकृत और ४. आत्यन्तिक चार प्रकार की होती हैं। नित्य प्रलय तो दिन-प्रतिदिन होती है, प्राणी नित्य प्रतिदिन मरते हैं, जन्म लेते हैं, अत: नित्य मरना यह नित्य प्रलय है। नैमित्तिक प्रलय एक ब्राह्मकल्प के बीत जाने पर होती है। विष्णु पुराण ६/३/४-११ के अनुसार बारह हजार दिव्य वर्षों का एक चतुर्युग होता है, जिसमें सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग चारों बीतते हैं। और एक हजार चतुर्युग बीत जाते हैं, यही एक कल्प है। इस प्रकार १२००० × १००० = १२००००० एक करोड़, २० लाख दिव्य वर्ष का एक कल्प हुआ तथा जब इस काल को मानव वर्षों में बदलेंगे, तब चूंकि ३६० मानव वर्षों का एक दिव्य वर्ष होता है, अत:—१२०००००० × ३६० = ४३२००००००० = चार अरब, बत्तीस करोड़ मानव वर्ष का ब्रह्मा का एक दिन हुआ। यही पृथ्वी की आयु है, इसे आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है। यही काल नैमित्तिक प्रलय का है। इसे नैमित्तिक इसलिये कहा जाता है कि पहले प्रचण्ड सूर्य सात भागों में बँट कर समस्त भूमण्डल को जला डालते हैं, तब जब सब जल कर भस्म हो जाता है, तब अतिवृष्टि होती है और सर्वत्र जल ही जल व्याप्त होता है, सब समुद्र एकार्णव के रूप में स्थित हो जाते हैं। उस समय भगवान् विष्णु एकार्णव में शयन करते हैं तथा जितने काल तक सृष्टि रही, अर्थात् ब्रह्मा का दिन रहा, उतने ही काल तक ब्रंह्मा की रात्रि रहती है। वह चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों की रात्रि होती है, जिस समय तक विष्णु पुन: सृष्टि के निमित्त एकार्णव में शयन करते हैं। अत: इस प्रलय में भगवान् विष्णु का महासमुद्र में शयन करना ही निमित्त है, इसलिये इसे नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है।

प्राकृत प्रलय, समस्त तत्त्वों का प्रकृति में लीन होने को कहा जाता है। इस प्रलय में अनावृष्टि आदि के संयोग से सब कुछ नष्ट हो जाता है। महत्तत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त सम्पूर्ण विकार क्षीण हो जाते हैं, तब जल पृथ्वी के गुण गंध को ग्रहण कर लेता है। जल के रस गुण को तेज ग्रहण कर लेता है, तब रसगुण के नाश होने पर जल नष्ट हो जाता है, तब जल अग्नि रूप हो जाता है। तब सारा जल सूख जाता है। सर्वत्र आग ही आग फैल जाती है। फिर अग्नि के प्रकाशक रूप को वायु अपने में लीन कर लेता है, तब प्रचण्ड वायु ही सर्वत्र रहती है, फिर वायु को आकाश अपने में लीन कर लेता है। उस समय एक शब्दमय आकाश ही सबको आच्छादित किये रहता है। आकाश के गुण शब्द को भूतादि ग्रस लेता है तथा भूतादियों में पञ्चभूत और इन्द्रियों का लय हो जाता है, तब अहंकारात्मक तामस रहता है, फिर इस भूतादि को बुद्धिरूप महत्तत्त्व ग्रस लेता है तथा अन्त में महत्तत्त्व प्रकृति में विलीन हो जाता है। यह प्रलय समस्त ब्रह्माण्ड की प्रलय है। इसमें कोई भी ग्रह नहीं रहेगा, सब कुछ समाप्त हो जाता है तथा उसका काल विष्णुपुराण दो परार्द्ध कहता है तथा एक परार्द्ध की

संख्या आज के एक शंख वर्ष होती है १००००००००००००००००० दिव्य वर्ष, अतः दो शंख दिव्य वर्षों तक का एक परार्द्ध हुआ तथा ७२० शंख मानव वर्षों का एक प्राकृत प्रलय का काल है। —(षडाम्नाय तन्त्र ३/१७-२८)

प्रकृति के अनेक रूप—इस तन्त्र के अनुसार प्रकृति अनेकों रूप वाली है, अर्थात् संसार के जितने भी चराचर पदार्थ हैं, वे सब प्रकृति के अनेक रूप हैं, क्योंकि यह प्रकृति अनेक तत्त्वों का मिश्रण है, इसलिये यह बहुत प्रकार की है। ब्रह्म वैसे निर्दोष है, परन्तु शक्ति से मिल जाने पर भी उसमें कोई दोष नहीं होता।

शक्ति सुन्दर कृति अर्थात् प्रकृति और विकृति है, अर्थात् यह सुन्दर कृति है तथा इससे अन्य तत्त्व उत्पन्न होते हैं। इसीलिये विकृति भी है तथा मन विकृति है, क्योंकि यह विकारों वाला है। पंचभूत सत्त्व के अंश से उत्पन्न हुए हैं। त्रिगुण (सत्त्व, रजस् और तमस्) मन में कल्पित हैं। —(षडाम्नाय तन्त्र ३/१२३, ३०१)

पुरुष (आत्मा) और प्रकृति का सम्बन्ध—इस तन्त्र मे कहा गया है कि चित् (आत्मा जो चेतन तत्त्व है) और प्रकृति अर्थात् सेन्द्रिय शरीर यह पूर्ण कला है तथा परमात्मा कलाओं वाला है। भाव यह है कि चैतन्य जीव और यह सेन्द्रिय शरीर ही पूर्ण कलाओं वाला है, अर्थात् यही सब करता है। अकेला न जीव कुछ कर सकता है न शरीर ही। तथा यह कला देने वाला वह परमात्मा सकल है। माया शक्ति का आश्रय लेकर ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हुए हैं। अर्थात् ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं तो माया शक्ति का आश्रय लेकर करते हैं! विष्णु यदि संसार का पालन करते हैं तो माया शक्ति का आश्रय लेकर करते हैं तथा महेश्वर सृष्टि का संहार करते हैं तो वे भी मायाशक्ति का आश्रय लेते हैं।

प्रकृति ही सेन्द्रिय शरीर का प्रधान कारण—इस तन्त्र के अनुसार यह शक्ति जिसे माया, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, काली, चण्डी आदि कहा गया है, वही सत् रज और तम तीनों गुण वाली है। वह सत्य भाव वाली अर्थात् जीव की सत्ता उसी के रहने पर है। वही असती अर्थात् बिना सत्ता वाली है। वही रजस् और तमस् गुण वाली है। यह शक्ति प्रकृति और विकृति दोनों प्रकार वाली है। अर्थात् प्रकृति प्रकारों वाली है और विकारों वाली है। प्रकृति के प्रकार और विकार महत्तत्त्व (बुद्धि और अहंकार) हैं। पर प्रकृति किसी का विकार नहीं है। सांख्य में कहा गया है कि प्रकृतिरविकृतिः प्रकृतविकृतयः सप्त अर्थात् प्रकृति किसी का विकार (कार्य) नहीं वह सबका कारण है तथा बुद्धि अहंकार पंचतन्मात्रायें एक दूसरे का कारण कार्य है। अतः प्रकृति के प्रकार और विकार सब हैं, इसलिये इसे प्रकृतिरविकृति कहा गया है। पंच तन्मात्राएँ और उनसे पंच महाभूत प्रकृति के ही विकार हैं, जो महत्तत्व से उत्पन्न हैं। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और पंच कर्मेन्द्रियाँ अहं तत्त्व की विकार हैं। इस प्रकार यह शक्ति प्रकृति विकृति वाली है और शक्ति ज्ञान और

सुख से युक्त है। अर्थात् जीव को ज्ञान और सुख इस शक्ति (प्रकृति) (सेन्द्रिय शरीर) के रहने पर ही प्राप्त होता है। —(षडाम्नाय तन्त्र ३/१२४, २६१, २६२)

षडाम्नाय तन्त्र में योगदर्शन—अष्टाङ्गयोग के विना कोई भी साधना सफल नहीं हो सकती। अत: इस तन्त्र ने अष्टाङ्गयोग के महत्त्व को स्वीकार किया है। देखिये—

अष्टांग योग प्राणयोग और पंचांग महान् फल देते हैं। परिचर्या चौंसठ प्रकार उपचारात्मक क्रियाएँ हैं। ज्ञान के योग में भूतशुद्धि होती है, जिसमें ब्रह्म ज्ञान का निरूपण है।

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त के व्यापारों को रोकना ही योग है। उन्होंने योग के आठ अंग बताये हैं। वे हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि। यम का अर्थ है पांच कर्मों से स्वयं को रोकना। वे पांच कर्म हैं—१. अहिंसा : अहिंसा का अर्थ है—हत्या न करना परन्तु इतना ही नहीं, अहिंसा का अर्थ है—शब्दों से, मन से और कर्मों से किसी को हानि न पहुंचाना, २. सत्य बोलना, ३. अस्तेय—चोरी न करना, ब्रह्मचर्य चेतना को ब्रह्म के ज्ञान में स्थिर करना, ५. अपरिग्रह—आवश्यकता से अधिक धन संचय न करना। नियम—व्यक्तिगत नैतिकता ये पांच हैं—१. शौच—शरीर और मन की शुद्धि, २. सन्तोष, ३. तप—कठिन श्रम करना, ४. स्वाध्ययाय—आत्मचिन्तन, ५. ईश्वर के प्रति पूर्ण समपर्ण। ३. आसन का अर्थ है—शारीरिक व्यायाम, ४. प्राणायाम—श्वास रोकने आदि क्रियायों द्वारा प्राण पर नियन्त्रण। ५. प्रत्याहार—इन्द्रियों को वश में रखना, ६. धारणा—एकाग्रचित्त होना, ७. ध्यान—लगातार ध्यान करना। समाधि—आत्मा से जुड़ना। प्राणयोग—प्राण का अर्थ योगानुसार उस वायु से है, जो हमको जीवित रखती है। यही वायु प्राण या जीवात्मा कही जाती है। इसका स्थान हृदय में है। इसे जानना चिरकाल तक जीना है। वायु के पांच प्रकार हैं—१. व्यान चर्वी या मांस बनाने वाली, २. समान—हड्डियों में रहकर सन्तुलन बनाने वाला, ३. अपान नीचे जाने वाली, ४. उदान—ऊपर जाने वाली (डकार के रूप में) ५. प्राण—रक्त में रहने वाली। —(षडाम्नाय तन्त्र ३/१६७-१६८)

षट्चक्र—इस तन्त्र के अनुसार कामकला भानुबाला (सूर्यपुत्री) है और चित्कला परमेश्वरी है। काली कुल (शक्ति) आदि है, कुलादि है तथा षट्चक्र के मध्य में व्यापित है।

पद्मपुराण स्वर्गखण्ड के अनुसार षट्चक्र का वर्णन इस प्रकार है कि गुदा में पृथ्वी के समान एक चक्र है, जो हरे वर्ण के चार पत्रों से सुखोभित है और लिंग में तो छ: पत्तों वाला चक्र है। वह तीनों लोकों की पंक्ति से युक्त है तथा तपे हुए सोने के समान है नाभि में, दशदलचक्र है, जो कुण्डलिनी से युक्त हैं, वहाँ नीली

स्याही के समान ब्रह्मस्थान मन्दिर है, जो मणिपूर नामक चक्र वाला है और स्वच्छ जल स्थान युक्त है। जहाँ उगता हुआ सूर्य है तथा हृदय में अनाहत चक्र है। कुम्भक नाम द्वादशदल कमल है जहाँ पर विष्णु का वायुमन्दिर वहाँ कण्ठ में विशुद्ध षोडशदल कमल स्थित है। जहाँ शाम्भवी नामक चक्र है। जो चन्द्रबिन्दु से विभूषित है। उसके षष्ठ ज्ञाज्ञा चक्र है, जो मन के स्थान के नाम से प्रसिद्ध है। यह आज्ञालय नामक चक्र में दो उत्तम दल (पत्र) सुख्शोभित हैं। सहस्रदल एक अलग है, जो परमात्मतत्त्व का प्रकाशक है, जो नित्य ज्ञानमय और सत्य है तथा हजारों सूर्यों के समान जिसकी कमनीय कान्ति है। अत: इन षट्चक्रों का भेदन कर ही आत्मतत्त्व परमात्मतत्त्व में लीन हो सकता साधक को इन षट्चक्रों को भेदना ही होगा। इनको तोड़े बिना कुछ भी नहीं हो सकता है। वैसे श्रीयन्त्र में सहस्रार चक्र माना गया है।

—(षडाम्नाय तन्त्र ३/३९१)

षट्चक्र

मूलाधार चक्र

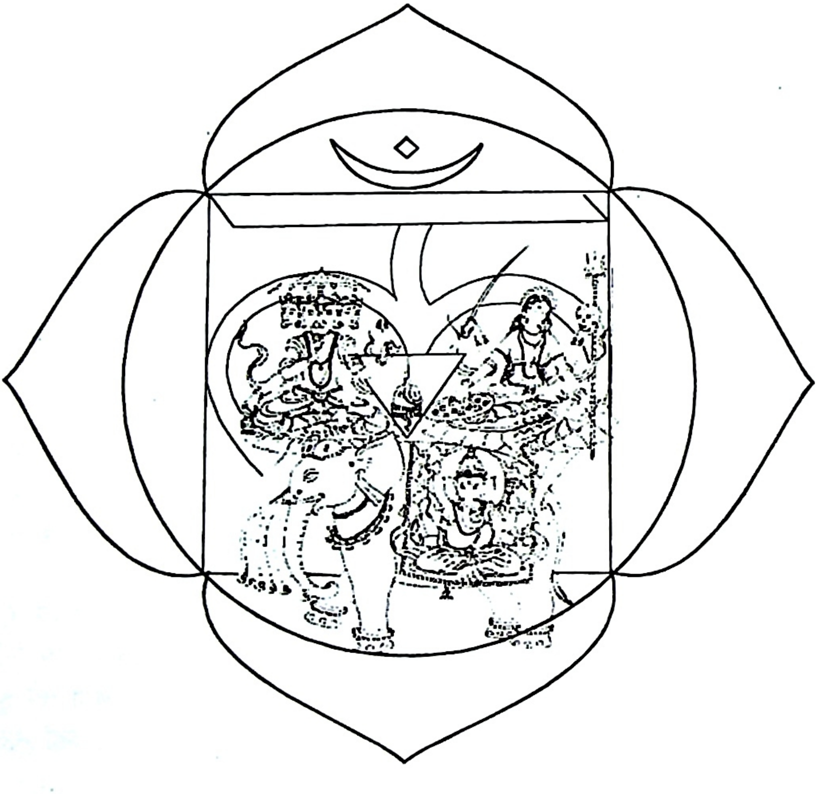

स्वाधिष्ठान चक्र

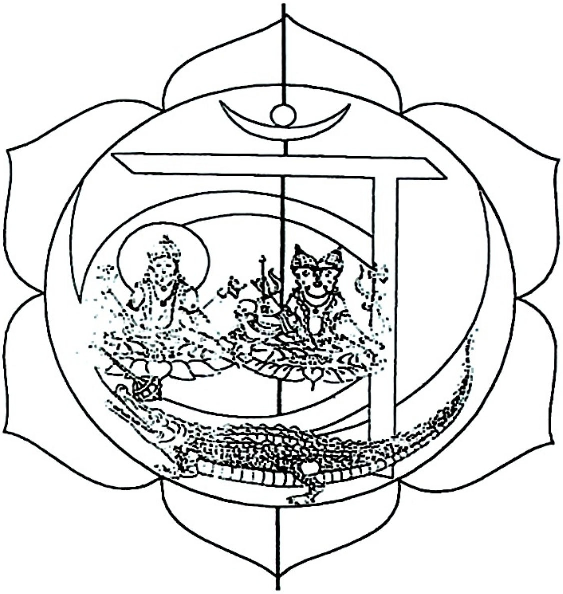

मणिपूरक चक्र

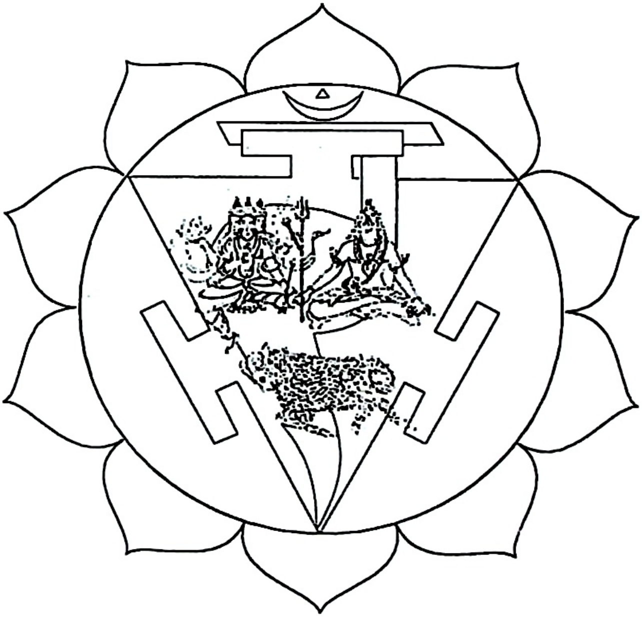

अनाहत चक्र

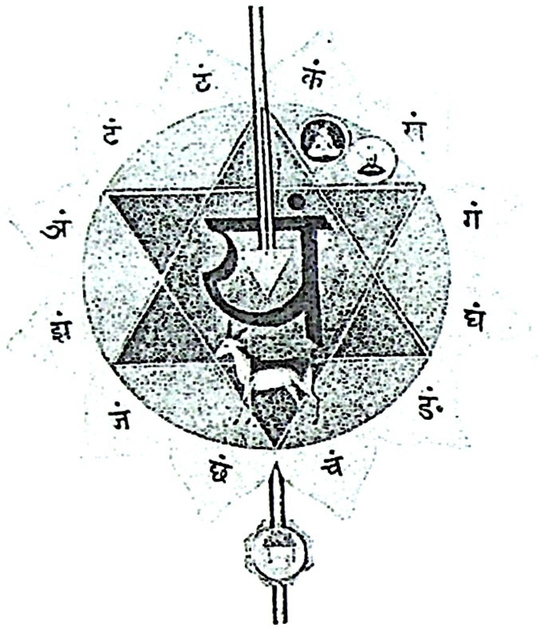
कं
खं
गं
घं
ङं
चं
छं
जं
झं
ञं
टं
ठं
यं

आज्ञा चक्र

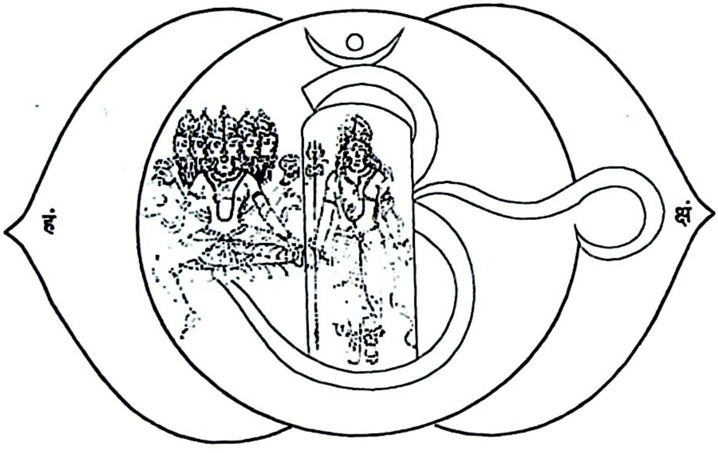

विशुद्ध चक्र

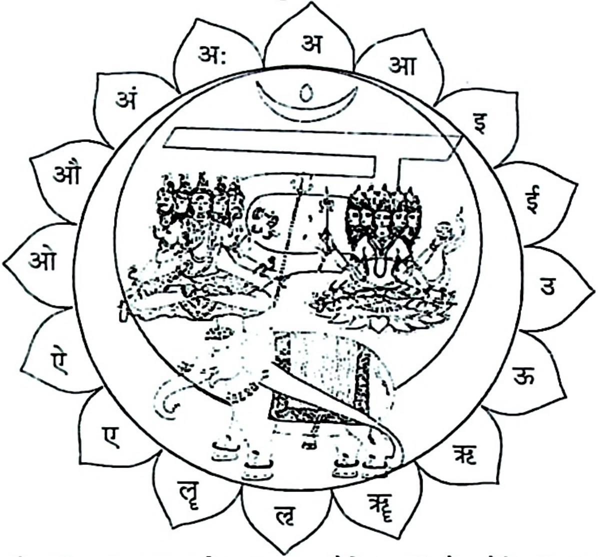

त्रिपुरेश्वरी—इस तन्त्र के अनुसार जैसे काली हैं, वैसे ही तारा हैं और वैसी ही त्रिपुरसुन्दरी हैं। ये स्थूल, सूक्ष्म और चिदाकार में महाज्योति का प्रकाश करने वाली हैं। —(षडाम्नाय तन्त्र ३/३९३)

प्रलय की वैज्ञानिकता—इस तन्त्र के अनुसार प्रलय के समय कालरूपिणी ब्रह्मकाली और प्रलय करने वाली ब्रह्मकाली समस्त कलाओं के साथ केवल चित् रूप में स्थित रहती है। चित् का अर्थ चैतन्य (जीव) है अर्थात् उस समय केवल चित् ही शेष रहता है और उस समय सहस्रार कोण में देव (भगवान् शिव) स्थित रहते हैं और उनकी शक्ति उनके हृदय कमल में विराजमान रहती है।

सहस्रार

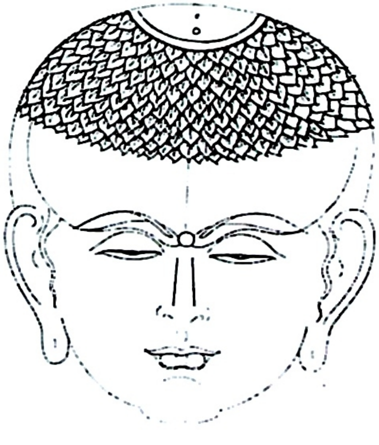

प्रलय काल में परमात्मा ब्रह्मा जो सृष्टि के रचयिता हैं, का सुन्दर बर्ण मूर्तिहीन हो जाता है। अर्थात् ब्रह्माण्ड का सब कुछ आकारविहीन हो जाता है। तब मन से कल्पना करने के बहाने से गुरुमार्ग से उसके स्वरूप का ज्ञान होता है। अर्थात् गुरु के बताये गये मार्ग से उस स्वरूप की कल्पना की जाती है। —(षडाम्नाय तन्त्र ४/७३, ७९)

षडाम्नाय तन्त्र में विज्ञान—वैसे तो यह स्पष्ट है कि इस तन्त्र ने जिस सांख्यदर्शन का अनुसरण किया है, वह सांख्य ही पूर्ण विज्ञान है; क्योंकि आज हम जिन प्रकृति के तीन गुणों की चर्चा करते हैं वे सत्त्व, रजस् और तमस् आज के विज्ञान के प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन और न्यूट्रॉन ही हैं। साथ ही इसमें एक ऐसे वैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन किया गया है, जिसमें कहा गया है कि सूर्य में सदैव विस्फोट होता रहता है, जो विज्ञान ने भी माना है। देखिये—

वहाँ अखण्डमण्डल (ऐसा मण्डल जो कभी न टूट सके) ऐसे भगवान् सूर्य हैं, जो कि खण्डवह्नि है, अर्थात् जिसमें टूट कर (विस्फोट हो हो कर आग जल रही है) उसी का अंश यह अग्नि है। जो सूर्य सात स्वर्गों, सात मर्त्य लोकों और सात पातालों में व्यापित हैं। —(षडाम्नाय तन्त्र ४/१७२)

इस तन्त्र की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसने सांख्य की प्रकृति को २४वां तत्त्व माना है, परन्तु सांख्य पुरुष के साथ २४ तत्त्वों द्वारा ही समस्त प्रपञ्च का संचालन मानता है। इसे न मानकर इस तन्त्र में ब्रह्म (ईश्वर) को छब्बीसवें तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसे वेदान्त तथा अधिकांश पुराणों ने स्वीकार किया है।

जहाँ साधना की बात है, तब इस तन्त्र को शाक्त सम्प्रदाय का ही मानना चाहिये; क्योंकि इस तन्त्र में भले ही वेद को सबसे उत्तम कहा है। वह भी ब्रह्मचर्ययुक्त वेद को ही सर्वोत्तम कहा है—'सवेभ्यश्चोत्तमो वेदो ब्रह्मचर्यसंयुतः। परन्तु शाक्त सम्प्रदाय के कौल को अधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि कौल में ही महासिद्धि होती है। कुलिनी कुल और कौल ही प्रत्यक्ष देव साधन है—

कौल साधना में महासिद्धि होती है तथा दिव्य रूप उत्तम शिव की प्राप्ति होती है। कुलिनी कुल और कौल—ये प्रत्यक्ष देव साधन हैं।

—(षडाम्नाय तन्त्र ४/९)

तथा यहाँ शय्या आदि से श्मशान तक के साधन को सिद्धिदायक माना गया है तथा मन्त्रयोग और मुद्रायोग के प्रयोग के साथ मन्त्रयोग को चेतनता का कारण माना गया है—

शय्या आदि से श्मशान के अन्त तक के साधन सिद्धिदायक हैं। वहाँ मन्त्रयोग मुद्रायोग आवश्यक है, क्योंकि मन्त्र चेतनता (जागरुकता) का कारण है। अर्थात् मन्त्र देव की जागृति होती है। —(षडाम्नाय तन्त्र ४/१५)

तथा वामाभाव को ही महाभाव और अभेदक माना गया है। अत: वामा ही वामा का साधन सिद्धि का लक्षण माना गया है—

वामाचार तीन प्रकार का होता है, प्रवृत्त होने पर सिद्धि करने वाला वामाभाव महाभाव और 'तत्त्वमसि' इस भेद वाला है। अत: वामा होकर वामा की साधना करनी चाहिये। वामाचार साधन सिद्धि का लक्षण है। अत: वामाचार साधन से सिद्धि अवश्य मिलती है। —(षडाम्नाय तन्त्र ४/३४)

इससे सिद्ध होता है किं यह तन्त्र वामाचार समर्थक है। अवधूत दो प्रकार के कहे गय हैं—एक वस्त्रहीन, दूसरा नीलवस्त्रधारी। नीलवस्त्रधारी गृहस्थ भी हो सकता है। यहाँ त्रिपुरेश्वरी को ६४ कलाओं से पूर्ण माना गया है तथा सहस्र दल कमल दो प्रकार के आकार का है, जिसके सफेद कमल में काल का निवास है, जो कालिका का गुण रूप है और नीचे वाले कमल में महाकाल है। षोडशदल कमल में कुल (शक्ति) और अकुल (शिव) दो माने गये हैं। दशदल कमल में महाबली कामदेव षडानन पंचानन तथा बीस दल के युक्त स्थित हैं। अष्टदल कमल में आठ नारियाँ हैं। सोलह कलाओं से युक्त पूर्ण बाला और आठ नाग विष्णुपुर में स्थित हैं तथा सफेद और लाल रंग के मणिपुर में मूल पद्म क्रम में साध्य हैं, वहाँ जल और स्थल पर विष्णु हैं और भानु मण्डल में व्याप्त हैं। जब वहाँ कालग्रास होता है, तो सबकुछ नष्ट हो जाता है, तब कामदेव भी बलहीन मीन की भांति हो जाता है। वहाँ पर उस सहस्रदल कमल में देव भगवान् शिव स्थित हैं, उनके हृदयकमल में चिद्रूपा कालरूपिणी ब्रह्म कालिका देवी स्थित हैं। उस सहस्रार कमल में ब्रह्मानन्द हैं।

वहाँ पर पहुँचने के लिये साधक को षट्चक्रों का भेदन करना है। जो गुरु द्वारा ही सम्भव है तथा ये षट्चक्र श्रीचक्र के अन्तर्गत ही आते हैं। वे चक्र हैं—१. मूलाधार चक्र, २. स्वाधिष्ठान चक्र, ३. मणिपूरक चक्र, ४. अनाहत चक्र, ५. विशुद्धि चक्र, ६. आज्ञाचक्र। इनमें क्रमश: ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव और आदिनाथ की स्थिति है। नवचक्र में कलायें हैं। षट्चक्र ध्यान प्रत्यक्ष है। सप्तम चक्र में सदा गुरु स्थित हैं। सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से ही वहाँ पहुँचा जा सकता है। इसके कुण्डलिनी जागरण आवश्यक है। कुल मिलाकर यह कहा जायेगा कि इस तन्त्र में बहुत ही वैज्ञानिक तथ्य भरे पड़े हैं, परन्तु साधना विधि का स्पष्ट वर्णन नहीं है।

साधना विधि के लिये अन्य शाक्त तन्त्र का ही सहारा लेना पड़ेगा। वैसे यह तन्त्र महात्रिपुरसुन्दरी के श्रीचक्र तक अधिक साम्य रखता है। अत: साधक महात्रिपुरसुन्दरी पूजा पद्धति का आश्रय ले सकता है, जिसमें सभी प्रकार से उस महाशक्ति तक पहुँचने

की पूजाविधि वर्णित है, जो अत्यन्त रहस्यमयी पुस्तक है, जिसका अनुवाद मेरे पिता श्री दलवीर सिंह चौहान ने किया है, जिसमें श्रीचक्र की त्रिकोणस्थ देवों सहित स्थिति दिखायी है, जो घर में रखकर अपार सुख समृद्धि को प्रदान करने वाला है तथा विधिवत् पूजा करने पर तो वह सब कुछ प्रदान कर सकता है।

इस षडाम्नाय तन्त्र में स्थित देवी की साधना के लिये 'भूतशुद्धि तन्त्र' का अध्ययन आवश्यक है, जिसका अनुवाद किया जा रहा है।

इस तन्त्र की सबसे बड़ी विशेषता है कि प्रकृति पुरुष और ब्रह्म का वैज्ञानिक अध्ययन है तथा इसमें सर्वत्र एकेश्वरवाद का ही प्रतिपादन है। सांख्य शास्त्र जो नास्तिक शास्त्र है, उसका पूर्ण रूप से अनुसरण नहीं है। सांख्य के पुरुष प्रकृति के पच्चीस तत्त्वों के साथ ब्रह्म तत्त्व का भी वर्णन है तथा ब्रह्म के बिना दोनों ही निष्क्रियता मानी है।

यह तन्त्र बहुत कठिन है। मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति द्वारा इसका सम्पादन और अनुवाद करना ज्ञान के महासागर में डुबकी लगाने के समान है; फिर भी जगन्माता, प्रकृतिरूपा महात्रिपुरसुन्दरी की कृपादृष्टि इस तन्त्र को पूर्ण करने में मूलकारण है। उसके बाद अनेकों ग्रन्थों के लेखक परम पूज्य पिता श्री प्रो. दलवीर सिंह चौहान का सहयोग माताश्री रामबेटी देवी की प्रेरणा, आभारार्ह है।

सर्वाधिक आभारी तो मैं उन परमपूज्य ब्रह्म स्वरूप श्री ब्रजमोहन दास गुप्त का हूँ, जिन्होंने पाण्डलिपि का सम्पादन और हिन्दी अनुवाद को प्रकाशन का सुअवसर प्रदान किया। मैं उनके इस कृतार्थ का ऋणी हूँ और रहूँगा। इसके साथ इस तन्त्र सृष्टि में पुरुष प्रकृति रूप श्री कमलेश गुप्त तथा श्री सचिन जी का भी आभारी हूँ, जिन्होंने दास रूप ब्रह्म को इस ग्रन्थ सृष्टि में सहयोग किया।

इसके साथ सबको आभार व्यक्त करने के साथ पाण्डुलिपि के अस्पष्ट एवं असुन्दर वर्णों को कम्प्युटर द्वारा स्पष्ट एवं सुन्दर रूप प्रदान करने वाले जी. एस. पी. कम्प्युटर के श्री संदीप जी को भी आभार व्यक्त करता हूँ।

इस ग्रन्थ की सम्पूर्णता में मेरी प्रिय पत्नी डॉ. निर्मला के प्रेमोद्वेलित प्रेरणा भी आभरणीय है; साथ ही मेरे धर्म पिता श्री महावीर सिंह, सासू माता श्री की उत्साहपूर्ण प्रेरणा तथा भाई श्री ओ३म प्रकाश सिंह, श्री डॉ. थान सिंह, श्री नीलम कुमार, श्री शिव कुमार, श्री भीम सिंह, श्री सत्पाल सिंह और श्री रविन्द्र सिंह की उत्साहपूर्ण प्रेरणा भी आभार योग्य है।

साथ ही मैं अपने स्वार्थनिरपेक्ष सुहृद्गण डॉ. सरोज कुमार जिलाधिकारी बांदा, संजय कुमार सिंह डायरेक्टर, एलीमैन्ट्री एजुकेशन बिहार, प्रो. चन्दन कुमार हिन्दी

विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, डॉ. सत्यपाल सिंह संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, डॉ. सुभाष कुमार किरोड़ीमल कॉलेज दिल्ली, संजय सिंह जौनपुर, सी. ए. नवीन जोशी, का भी मैं हृदय से आभारी हूँ, जो मुझे बाद्-विवाद में सहयोग करते रहे।

संसार में कितना भी उच्चकोटि का विद्वान् होते हुए भी त्रुटि होना स्वाभाविक है; परन्तु मैं तो एक सामान्य व्यक्ति हूँ। अत: विद्वानों से मेरा अनुरोध है कि इस पुस्तक लेखन में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो तो क्षमा करते हुए संशोधन हेतु सूचित करने की कृपा प्रदान करेंगे। इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि के कतिपय श्लोकों में व्याकरणात्मक त्रुटियां हैं। जिनका संशोधन नहीं किया गया है। संशोधन करने पर छन्दभंग का दोष उपस्थित होने के भय से यथावत् रख दिया गया है तथा कविता में शब्दत्रुटि क्षम्य होती है अत: पाठक इसके लिये क्षमा करेंगे। मैंने इस ग्रन्थ की टीका का नाम अपनी पत्नी के नाम पर 'निर्मला' टीका रखा है; क्योंकि जिस प्रकार प्रकृति के विना पुरुष कुछ नहीं कर सकता। उसी प्रकार पत्नी के विना पति अक्षम है। अत: मेरी यह टीका सदैव निर्मल रहे इस कामना के साथ मां त्रिपुरेश्वरी के चरणों में समर्पित करता हूँ।

रूपेश कुमार चौहान

* * *

विषयानुक्रमणिका

विषय पृष्ठाङ्क

प्रथमः पटलः १-३२
द्वितीयः पटलः ३३-४६
तृतीयः पटलः ४७-१३०
चतुर्थ पटलः १३१-१८०

* * *

षडाम्नायतन्त्रम्

अथ प्रथमः पटलः

अथ वक्ष्ये षडाम्नायं निगमसन्दर्भतन्त्रम्।
पञ्चाम्नायं समाख्यातं षडाम्नायं नमस्कृतम्॥१॥

सन्दर्भ—इस षडाम्नाय तन्त्र का उपदेश करने वाली भगवती पार्वती हैं तथा भगवान् शिव प्रश्न करने वाले हैं तथा इस तन्त्र में निगम (वेद) की परिभाषा प्रस्तुत की गई है।

निर्मला हिन्दी टीका—आदिगुरु भगवान् शिव जगन्माता पार्वती से पूछते हैं कि यह षडाम्नाय तन्त्र क्या है, तब पार्वती जी कहती हैं कि 'अब मैं निगम (वेदों से) सम्बन्ध रखने वाले पञ्चाम्नाय से समाख्यात षडाम्नाय नामक नमस्कृत तंत्र की व्याख्या करूंगी।।१।।

विशेष—'नमस्कृत' का अर्थ है—जिसको सभी नमन करते हैं।

पञ्चाननः पप्रच्छतु षडाम्नातन्त्रतत्त्वकम्।
स्थूलसूक्ष्मपराशक्तिः सर्वकारणकारणम्॥२॥

स्थूल और सूक्ष्म पराशक्ति वाले भगवान् शिव ने पार्वती जी से सब कारणों के कारण षडाम्नाय तंत्र के तत्त्व के विषय में पूछा।।२।।

परंब्रह्म परमात्मा शब्दब्रह्म निगमजम्।
निगमाद् आगमो जात आगमाद् यामलादिकः॥३॥

परं ब्रह्म परमात्मा शब्द ब्रह्म वेद से उत्पन्न हुआ है और वेद से आगम (धर्मशास्त्रादि) पैदा हुए हैं और आगम से यामलादिक तन्त्र पैदा हुए हैं।।३।।

क्रमे वेदे पुराणानि स्मृतिदर्शनविस्तराः।
वेदे कर्ता अभावश्च केचिद् वदन्ति चापरे॥४॥

इस क्रम में सबसे पहले वेद उत्पन्न हुए, वेद में पुराण हैं और फिर स्मृतियों और दर्शनों का विस्तार हुआ है। वेद के कर्ता का अभाव है अर्थात् वेद की रचना करने वाला कोई व्यक्ति नहीं अर्थात् वेद अपौरुषेय हैं। वे ईश्वर द्वारा रचे गये हैं। साक्षात् ईश्वर के सन्देश हैं।।४।।

ब्रह्म विश्वशास्त्रयोनिः त्वमेव परमेश्वरि।
सर्वशास्त्रषडाम्नायनिगमं पूर्वसूचितम्॥५॥
लोकोपकरणार्थाय कथयस्व जगन्मयि।

ब्रह्म विश्वरूप शास्त्र की योनि है, अर्थात् ब्रह्म से ही समस्त विश्व उत्पन्न हुआ है और शब्द से समस्त शास्त्रों की उत्पत्ति हुई है, इसलिये भगवान् शिव द्वारा पार्वती से यह कहा गया है कि हे परमेश्वरि! तुम ही उस परम ब्रह्म परमेश्वर की विश्वशास्त्ररूपी योनि हो अर्थात् सब शास्त्र तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। तथा सब शास्त्रों का सार रूप षडाम्नाय तन्त्र पूर्व में ही वेद में सूचित किया गया है, इसलिये जगन्मयि! उस षडाम्नाय तन्त्र को संसार का उपकार करने के लिये बताइये॥५॥

श्रीभगवत्युवाच–

शक्तिदर्शनसूत्रं च कालीसहितमुत्तमम्॥६॥
ब्रह्मसूत्रं स एव स्यात् चापरश्चापरः कृतः।
निरञ्जन आत्मसूत्रं नाथोक्तिर्वृत्तमुत्तमम्॥७॥
प्रेमसूत्रं महाभावः त्रिपुरातन्त्रराजकम्।
भाष्यपञ्चनिगमश्च सारतत्त्वं गतं तथा॥८॥

काली सहित उत्तम शक्तिदर्शन सूत्र है, वही ब्रह्मसूत्र होना चाहिये। इसके अतिरिक्त दूसरा सूत्र अञ्जनरहित आत्मसूत्र है, जो श्रीनाथ द्वारा कहा गया उत्तम वृत्त वाला है। तीसरा महाभाव वाला प्रेम सूत्र है, जो त्रिपुरातन्त्रराज कहलाता है। उसके बाद भाषापञ्चनिगम है, जो सारतत्त्व वाला है॥६–८॥

भोगयोगकल्पद्रुमा महाविद्याः प्रकाशिताः।
सर्वसारं महातन्त्रं षडाम्नायं त्वयोदितम्॥९॥

भगवती भगवान् शंकर से बोलीं कि आपने जो षडाम्नाय तन्त्र को बताया है, वह भोग और योग का कंल्पवृक्ष है, अर्थात् जैसे कल्पवृक्ष से समस्त इच्छाओं का पूर्ण होना माना जाता है, उसी तरह यह षडाम्नाय तन्त्र मानव के समस्त भोगों और योगों को प्रदान करने वाला है तथा सभी तन्त्रों का सार रूप यह महातन्त्र है॥९॥

महाकालः पञ्चवक्त्रमक्षोभ्यो भैरवः स्वयम्।
तदर्थो वर्त्म मोक्षाणामागमार्थे प्रकाशितम्॥१०॥

इस षडाम्नाय तन्त्र को स्वयं कभी न दुःखी होने वाले महाकाल भैरव ने पञ्चवक्त्र को आगम के अर्थ में मोक्षों के मार्ग के अर्थ को प्रकाशित किया है॥१०॥

शिवादिः सिद्धो भैरवः सुसिद्धा योगिनीगणाः।
दिव्यौघः सिद्धो मानवो ह्यम्बात्मा मातरः क्रमात्॥११॥

शिव आदि सिद्ध भैरव हैं, योगिनीगण सुसिद्ध हैं, दिव्यौध सिद्ध मानव है तथा अम्बा आत्मा क्रम से मातायें हैं।।११।।

कुलनाथो गुरुः सर्वः प्रायशस्तन्त्रभाषितः।
महाम्नायः षडाम्नायः पञ्चाम्नानन्दतन्त्रकः॥१२॥

कुलनाथ सबके गुरु हैं, वे ही प्रायः तन्त्रभाषित हैं। महाम्नाय, षडाम्नाय, पञ्चाम्नाय आनन्द देने वाले तन्त्र हैं।।१२।।

ऊर्ध्वाम्नायो बहुविधश्च कालिका नामेति महान्।
चन्द्राम्नाः पूर्वखण्डश्च सूर्याम्नाः खण्डपश्चिमः॥१३॥

ऊर्ध्वाम्नाय बहुत प्रकार का है, जिसका कालिका यह महान् नाम है। चन्द्राम्नाय पूर्वदिशा खण्ड है। सूर्याम्ना पश्चिम खण्ड है।।१३।।

तामसाम्ना द्विधा प्रोक्तो वामदक्षिणभेदतः।
पञ्चाम्ना कालवक्ता च षडाम्ना कालिका स्मृता॥१४॥

तामस नाम से वह दो प्रकार का कहा गया है। एक वामभेद है और दूसरा दक्षिण भेद वाला है। पंचाम्ना काल को बताने वाला है और षडाम्ना कालिका कहा गया है।।१४।।

उड्डीश-डामर-जाल-शाबरादिरसायनाः।
कल्पसूत्रं विविधञ्च सिद्धकापालिककृतम्॥१५॥

उड्डीश, डामर, जाल, शाबर आदि रसायन तन्त्र हैं और अनेक प्रकार के कल्पसूत्र हैं। जो सिद्ध कापालिक के बनाये हुए हैं।।१५।।

त्रिगुणो मिश्रितः प्रायो निर्गुणः सद्गुणान्वितः।
ब्रह्मसूत्रं विष्णुसूत्रं शिवसूत्रञ्च उत्तमम्॥१६॥

सद्गुण से युक्त निर्गुण प्रायः तीन गुणों से मिश्रित हैं–१. ब्रह्मसूत्र, २. विष्णुसूत्र और ३. उत्तम शिवसूत्र।।१६।।

ब्रह्मसूत्रं वेदमूलं ब्रह्मा वेदप्रकाशकः।
शास्त्रवर्त्म त्रिविधञ्च वेदागमविवेकजम्॥१७॥

ब्रह्मसूत्र वेदमूलक है, क्योंकि ब्रह्मा ही वेद का प्रकाशन करने वाले हैं तथा शास्त्र के मार्ग तीन हैं वेद, आगम (धर्मशास्त्र) और विवेक से उत्पन्न ज्ञान।।१७।।

निगमो विवेके दिव्यः पशूनां वेदवर्त्मकम्।
आगमपञ्च मिश्राचारं दिवारात्रिविभेदकम्॥१८॥

विवेक में निगम (वेद) दिव्य है। वेद पशुओं को ज्ञान का मार्ग दिखाने वाला है। आगम मिश्र आचार है। वह दिन और रात्रि का विभेदक है।।१८।।

अवधूतं विविधञ्च सचेलञ्च दिगम्बरम्।
दिगम्बरं दिव्यरूपं सचेलं मिश्रमिश्रितम्।।१९।।

अवधूत विभिन्न प्रकार के हैं सचेलं (वस्त्रयुक्त) तथा दिगम्बर (नग्न) अर्थात् दिशाओं को ही वस्त्र मानने वाले। दिगम्बर दिव्यरूप है और वस्त्रयुक्त अवधूत मिश्रमिश्रित है।।१९।।

विशेष—महान् दार्शनिक सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार अवधूत चार अक्षरों का समन्वय है। पहला है 'अ' जिसका अर्थ है न नष्ट होने वाला, दूसरा अक्षर 'व' जिसका अर्थ है—वरेण्य अर्थात् स्वीकार्य। तीसरा अक्षर है 'धू' जिसका अर्थ है शाब्दिक परामर्श से स्वतंत्रता (शब्द जाल से परे) और चौथा अक्षर है—'त'। जिसका अर्थ है—तात्त्विक सत्ता अर्थात् वह सर्वोच्च शक्ति जो हम सब में विद्यमान है।

इस परिभाषा में वरेण्य का अर्थ है—पवित्रता। ऐसी पवित्रता जो जल में मछली रहने पर भी जल को मलिन नहीं होने देती अर्थात् पूर्ण पवित्रता। अवधूत एक ऐसे चन्दन के वृक्ष के समान है, जिसमें सर्पों के लिपटे रहने पर भी कोई प्रभाव नहीं होता। यह कोई सामान्य शब्द नहीं यह भय, क्रोध, घृणा और स्पर्श से परे है, जो इन से परे है, वही अवधूत हो सकता है। अवधूत महान् मार्ग की खोज करने वाला है। भगवान् राम, जो विश्व के अघोरेश्वर कहे गये हैं। अघोरेरेश्वर मन की ऐसी स्थिति है, जो समस्त हानियों से परे है। इसमें फिर पुनर्जन्म नहीं होता। उनका कोई कारण न कार्य है। जब वे अपना शरीर छोड़ते हैं, तो उस परमतत्त्व में लीन हो जाते हैं। वे इस सौर मण्डल के सूर्य हैं, जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अपना कार्य करते हैं।

आश्रमं बहुविधञ्च अवधूताश्रमं महान्।
आदौ अष्टाङ्गयोगेन चित्तशुद्धिर्यदा भवेत्।।२०।।
पञ्चाङ्गं मध्यमवीरसाधने सिद्धतां व्रजेत्।
षडङ्गः पञ्चमे योगो विज्ञानं दिव्यसिद्धिदम्।।२१।।

आश्रम अनेकों प्रकार के हैं। उनमें अवधूताश्रम महान् आश्रम है। जब पहले अष्टांग योग से चित्त की शुद्धि हो जाये, तब पञ्चम वीर साधन में पञ्चाङ्ग सिद्धता को प्राप्त करे। षडंग पञ्चम योग है, जो विशेष ज्ञान वाला और दिव्य सिद्धि प्रदान करने वाला है।।२०-२१।।

विशेष—अष्टाङ्गयोग—१. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५ प्रत्याहर, धारणा, ध्यान, समाधि। यम—१. अहिंसा, मन, वाणी और कर्म से किसी को दुःखी न करना। २. सत्य बोलना, ३. अस्तेय—चोरी न करना, ४. ब्रह्मचर्य, ५. अपरिग्रह—इन्द्रियों को वश में रखना। नियम—१. शौच—शारीरिक, मानसिक पवित्रता— २. सन्तोष, ३. तप (कठिन श्रम), ४. स्वाध्याय और ५. ईश्वर का ध्यान ३. आसन—शारीरिक व्यायाम, २. प्राणायाम—मानसिक व्यायाम, ५. प्रत्याहार—इन्द्रियों पर काबू रखना,तब ध्यान और उसके बाद समाधि।

प्रथमे वर्णसुशिक्षा द्वितये वृत्तिचिन्तनम्।
शास्त्रार्थाज्जायते ज्ञानं क्रमशः क्रमशो यतः॥२२॥

प्रथम तन्त्र में वर्ण की सुरक्षा है, दूसरे में वृत्ति (वाक्य व्यवहार) का चिन्तन करना है, शास्त्रार्थ से क्रमशः ज्ञान होता है॥२२॥

निगमो ब्रह्मसूत्रञ्च सच्चिदानन्दवाचकम्।
आगमः पुरुषः प्राज्ञः परमात्मनिरूपणम्॥२३॥

निगम (वेद) ब्रह्मसूत्र है, जो सत् (प्रकृति), चित् (जीवात्मा) और परमात्मा को बताने वाला है। आगम पुरुष प्राज्ञ (आत्मा) का वाचक है और परमात्मा में निरूपण है॥२३॥

निष्कलं सकलं सूत्रं यामलेषु प्रकाशितम्।
निष्कला प्रकृतिः सूक्ष्मा शुद्धं ब्रह्म सनातनम्॥२४॥

निष्कल (कलाओं से रहित) और सकल (कलाओं से युक्त) सूत्र यामल तन्त्रों में बताया गया है। प्रकृति कलाविहीन एवं सूक्ष्म है तथा वह सनातन ब्रह्म शुद्ध है। उसमें कोई विकार नहीं है॥२४॥

कूटस्थो गुणसूक्ष्मोऽपि निर्गुणः परमात्मना।
सकलं परमं ब्रह्म पतिः भगवती सती॥२५॥

परमात्मा द्वारा वह परम ब्रह्म सूक्ष्म गुण वाला होते हुए भी निर्गुण और कूटस्थ है, अर्थात् आत्मा अथवा शरीर से लिप्त नहीं है, वह स्वतन्त्र है तथा वह परम ब्रह्म कलाओं वाला है तथा भगवती सतीपति हैं, अर्थात् रक्षा करने वाली हैं॥२५॥

एकमेवाद्वितीयञ्च एकात्मा चणकाकृतिः।
परा भक्तिर्ज्ञानगम्या विज्ञानात्मा प्रेमास्पदः॥२६॥

वह परंब्रह्म एक ही है, उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं अर्थात् वही

अद्वितीय है, वह एक आत्मा रूप है और चने की आकृति का है। यहाँ चणक का अर्थ कुशल भी है अर्थात् वह कुशल आकृति वाला है। वह पराभक्ति तथा ज्ञान से प्राप्त होने योग्य है। वह विशिष्ट ज्ञान वाला है अर्थात् सामान्य जीव से परे है, विशिष्ट ज्ञान वाला है तथा प्रेम का स्थान है।।२६।।

स्थूलः सूक्ष्मः स्वप्रकाशः तथा शास्त्रे प्रकाशितः।
यामलं सकलं सिद्धं द्विविधं काण्डमण्डितम्।।२७।।

वह बहुत विशाल है तथा अति सूक्ष्म है। वह स्वयं प्रकाशित है तथा शास्त्र में वह प्रकाशित है। यामल तन्त्र सकल सिद्ध है। अर्थात् उस परंब्रह्म को सिद्ध करने के लिये यामलतन्त्र ही सिद्ध तन्त्र है। वह यामल तन्त्र दो प्रकार का है तथा काण्डों से मण्डित है।।२७।।

उत्तरं निगमसूत्रं वृत्तिभाष्यसमन्वितम्।
आगमं पूर्वकाण्डञ्च कर्म ब्रह्माण्डव्यापिनम्।।२८।।

वृत्तियों और भाष्यों से युक्त निगम (वेदों) के सूत्र सबसे उत्तम (श्रेष्ठ) हैं। धर्मशास्त्र (स्मृतियां, पुराण, महाकरतादि षड्दर्शन आदि) आगम पूर्व काण्ड हैं और उनके कर्म ब्रह्माण्ड में व्यापित हैं।।२८।।

सत्त्वगुणो भवेत् पूजा यामलं निर्मलार्थदम्।
ब्रह्मयामलसम्भूतः ऋग्वेदो त्रिगुणात्मकः।।२९।।

सत्त्वगुण में पूजा होवे तो यामल तन्त्र निर्मल अर्थ को प्रदान करने वाला है। ब्रह्म यामल तन्त्र से सम्भूत है तथा ऋग्वेद त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रजस्, तमस् तीनों गुणों वाला) है।।२९।।

प्रज्ञानं ब्रह्मविज्ञानं कर्म धर्मप्रचोदितम्।
विष्णुयामलसम्भूतः सामवेदः सुविस्तरः।।३०।।

ब्रह्म का विशेष ज्ञान ही प्रकृष्ट ज्ञान है, धर्म से प्रेरित कर्म ही कर्म है। विष्णु के यामल तन्त्र से सम्यक् प्रकार से पैदा हुआ सामवेद अत्यन्त विस्तार वाला है।।३०।।

तत्त्वमसि महावाक्यं ज्ञानविज्ञानसंयुतः।
शक्तिज्ञानं सामगानं पितृदेवक्रियादिकम्।।३१।।

तत्त्वमसि अर्थात् 'वह तू है' अर्थात् यह आत्मा ही ब्रह्म है अर्थात् आत्मा का परमात्मा में मिलकर 'तत्त्वमसि' की स्थिति हो जाना ही (महावाक्य) है, अर्थात् तत्त्वमसि यह महावाक्य है। यह महावाक्य ज्ञान (आत्मा) और विज्ञान

(परमात्मा) से संयुक्त है अर्थात् आत्मा से परमात्मा को मिलाने वाला है। पितर देवता आदि की क्रियाओं वाला सामवेद का गान शक्ति ज्ञान है।।३१।।

शक्तियामलसम्भूतम् अयमात्मार्थवाचनम्।
वेदश्रेष्ठे ब्रह्मपुत्रे ज्येष्ठनाभे प्रकाशितः।।३२।।

शक्ति यामल तन्त्र से उत्पन्न यह आत्मा के अर्थ का वाचक है। यह श्रेष्ठ एवं पवित्र ग्रन्थ वेद में ब्रह्मपुत्र में और ज्येष्ठनाभ में प्रकाशित है।।३२।।

सत्याधिक्यं त्रिसर्वञ्च रुद्रयामलं निगमः।
आगमजो यजुर्वेदोऽहं ब्रह्मास्मि वाचकः।।३३।।

सत्य की अधिकता सत्त्व रजस् तमस् वाला रुद्रयामल तन्त्र निगम (वेदोक्त) है। आगम यजुर्वेदोक्त है तथा मैं ब्रह्मा इस रुद्रयामल तन्त्र का वाचक हूँ।।३३।।

भक्ते ज्ञानी कर्मी योगी भावभेदे तदर्थकः।
अहं तत्त्वं सर्वव्यापी चिदात्मा अन्तरात्मनः।।३४।।

भक्ति ज्ञानी कर्मी योगी ये भावभेद होते हैं और भक्ति की तीन शाखायें हैं ज्ञानी, कर्मी और योगी। इसमें अहम् (मैं) का भाव अर्थात् आत्मा का अस्तित्व सर्वव्यापी है। वह चैतन्य रूप आत्मा है तथा अन्तरात्मा की आवाज है।।३४।।

आत्मवत् पश्यते सर्वं हिंसावादविवर्जितम्।
अहं ब्रह्म खण्डज्ञानी ह्यात्मारामश्च योगिनम्।।३५।।

यह 'मैं' का भाव अर्थात् 'अहं' सबको अपने समान देखता है। यह आत्मा जो 'अहं' तत्त्व वाली है, वह हिंसा और वाद से रहित है। अहं तत्त्व ही ब्रह्म है। खण्डज्ञानी तथा आत्माराम है।।३५।।

त्रिकाण्डिको भवेद् वेदो ज्ञानभक्तिक्रियात्मकः।
आत्मज्ञानं ब्रह्मज्ञानं भक्तिः सकल ईश्वरे।।३६।।

वेदों के तीन काण्ड होते हैं। वे हैं—१. ज्ञानकाण्ड, २. भक्तिकाण्ड, ३. क्रियाकाण्ड। आत्मज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है तथा कलायुक्त ईश्वर में भक्ति है।।३६।।

कर्म धर्म द्विविधञ्च कामं सङ्कल्पवर्जितम्।
वेदान्तः शिवभागश्च हृदयेश्वरसाधना।।३७।।
विष्णुसूक्तो भक्तियोगो ज्ञानप्रेमक्रियात्मकः।।३८।।

कर्म और धर्म ये दो प्रकार हैं तथा काम संकल्प से वर्जित है। वेदान्त शिव का भाग है और वह हृदय से ईश्वर की साधना है। विष्णुसूक्त भक्तियोग है तथा वह ज्ञानात्मक, प्रेमात्मक और क्रियात्मक है।।३७-३८।।

वेदस्वामी ह्यन्तर्यामीरूपो विष्णुः सनातनः।
तद्भाष्यं संहिताः सर्वे पञ्चरात्रं पुराणकम्॥३९॥

विष्णु वेद के स्वामी हैं, सबसे सनातन (प्राचीन) हैं तथा अन्तर्यामी रूप हैं अर्थात् सबके हृदयों में रहने वाले हैं। सभी संहिता में उन विष्णुरूप वेद का भाष्य है और पुराण पंचरात्र हैं।।३९।।

शिवसूत्रं महाकल्पे महाभावेन पूरितम्।
पूर्वाम्नायः शब्दरूपं दक्षिणः श्रवणात्मकम्॥४०॥
ब्रह्म पश्चिम आम्नायः उत्तर उत्तरानम्।
ऊर्ध्वाम्नायस्तत्त्वरूपं षडाम्ना कुलसाधनम्॥४१॥
वेदवक्ता भवेद् ब्रह्मा कण्ठे शब्दे यथा हरिः।
ज्ञानरूपं भवेच्छम्भुः शक्तिः सर्वगुणाश्रयः॥४२॥

महाकल्प में शिवसूत्र महाभाव से पूरित है, पूर्वाम्नाय शब्दरूप है। उत्तर आनन वाला है, दक्षिणाम्नाय श्रवणात्मक है। ऊर्ध्वाम्नाय तत्त्वरूप है, षडाम्नाय कुल साधन है। जैसे कण्ठ और शब्द में हरि रहते हैं, वेद के वक्ता ब्रह्मा हैं, वैसे ही शम्भु ज्ञान रूप होने चाहिये तथा सब गुणों की आश्रय शक्ति होनी चाहिये।।४०-४२।।

ज्ञानमूलं यथा भक्तिर्भक्तिमूलं तथा क्रिया।
पराभक्तिः प्रेममूलं विज्ञानं परमं पदम्॥४३॥

जिस प्रकार ज्ञान का मूल भक्ति है। अर्थात् जब तक किसी विद्वान् की सेवा नहीं करोगे, ज्ञान नहीं हो सकता तथा भक्ति का मूल क्रिया है, अर्थात् बिना क्रिया के भक्ति नहीं हो सकती। परा भक्ति का मूल आधार प्रेम है और विशिष्ट ज्ञान ही सबसे महान् पद है।।४३।।

यथा त्रिकाण्डिको वेदस्तथा तन्त्रं त्रिकाण्डिकम्।
पुराणं भक्तिमूलञ्च विश्वासश्रद्धासंयुतम्॥४४॥

जिस प्रकार वेद ज्ञान, भक्ति और क्रिया इन तीन काण्डों वाला है। उसी प्रकार तन्त्र भी तीन काण्डों वाला है। पुराण भक्तिमूल है, क्योंकि वह विश्वास और श्रद्धा से युक्त है, अर्थात् पुराण विश्वास और श्रद्धा का मूल है। जब तक पुराण पर विश्वास और श्रद्धा नहीं होगी, तब तक वह मिथ्या प्रतीत होगा। अर्थात् पुराण में ऐसी ऐसी कथायें हैं, जिन्हें सत्यता की कसौटी पर कस कर नहीं स्वीकारा जा सकता है। उन पर तो विश्वास करना ही है तथा विश्वास करके उनके प्रति श्रद्धाभाव रखना है।।४४।।

पञ्चरात्रम् इतिहासः सर्वे पवित्रकारिणः।
उपवेद उपतन्त्रमुपपुराणं बहुधा॥४५॥

इतिहास पंचरात्र है, जिनमें उपवेद, उपतन्त्र, उपपुराण आते हैं, जो सब पवित्र करने वाले हैं। ये सभी इतिहास हैं।।४५।।

वेदार्थः स्मृतिरूपञ्च वर्णधर्मनिरूपितम्।
षडङ्गाङ्गप्रत्यङ्गेषु नास्ति भेदो मतान्तरम्॥४६॥

वेदों का अर्थ स्मृतिरूप है, अर्थात् स्मृतियाँ वेद के अर्थ का अनुगमन करती हैं तथा स्मृतियों में वर्णों के धर्मों का निरूपण किया गया है। वेदों के जो छः अंग हैं, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, उनमें तथा उनके भी जो प्रत्यंग हैं, उनके मतान्तरों में कोई भेद नहीं है।।४६।।

कल्पभेदे भट्टो व्यासः पुराणज्ञो मीमांसकः।
आगतो गतो रूपेण स्थितो बहुर्वनान्तरे॥४७॥

कल्प के भेद में व्यास भट्ट ही पुराण के ज्ञाता तथा रचयिता एवं उसकी मीमांसा करने वाले हैं। वे आगत और गत हैं तथा आगत और गत रूप से बहुत से वनों में स्थित हैं।।४७।।

स्वरूपञ्च विरूपञ्च षडाम्ना पञ्चमाननम्।
तत्पुरुषो वामदेवः सद्योजातस्तृतीयकः॥४८॥

स्वरूप और विरूप छः तन्त्रों से युक्त शिव जी हैं तथा वामदेव तत्पुरुष हैं, जो शीघ्र उत्पन्न हुए तृतीय देव हैं।।४८।।

अघोर ईशान ऊर्ध्वास्तामसौ पूर्वपश्चिमौ।
त्रिलोचनं भवेत् पूर्वं त्रिअक्षि पश्चिमाननम्॥४९॥

भगवान् शिव अघोर हैं और वे ही ईशान (परमेश्वर) हैं। वे ही ऊपर स्थित तथां तामस स्वरूप हैं तथा पूर्व और पश्चिम में स्थित हैं। वे पूर्व में तीन नेत्रों वाले हैं तथा वे ही पश्चिम मुख वाले भी त्रिनेत्री हैं।।४९।।

कामो मन्मथः कन्दर्पो मकरध्वजसञ्ज्ञकः।
मीनकेतुं स्मरेन्नित्यं षडाननं स्वराननम्॥५०॥

कामदेव मन को मथने वाला है, अर्थात् मन को व्यथित कर देने वाला है तथा वही कुत्सित दर्प वाला है, इसीलिये उसे मकरध्वज नाम दिया गया है, क्योंकि मकर (मगर) के समान उसका अभिमान है, दर्प है, इसी कारण उसकी ध्वजा को मकर की ध्वजा बताया गया है, तदनुसार उसका नाम मकरध्वज रखा गया है।

वास्तव में कामदेव ऐसा ही है, वह जो चाहता है, वह प्राणधारी से कराने में सफल हो ही जाता है। उन कामदेव को मीनकेतु भी कहा गया है, अर्थात् उनकी ध्वजा पर मत्स्य का चिह्न भी है, अतः उन मीनकेतु मकरध्वज षडानन स्वरानन भगवान् कामदेव का नित्य स्मरण करना चाहिये।।५०।।

षडाम्ना ब्रह्मा सायुज्य आधारः सर्वव्यापितः।
पञ्चाननः परमात्मा च योगी भोगी सदाशिवः।।५१।।

षडाम्ना तन्त्र द्वारा ब्रह्म के निकट पहुँचना सर्वव्यापित आधार है। पंचानन भगवान् शिव परमात्मा, योगी, भोगी और सदा सबका कल्याण करने वाले हैं।।५१।।

पञ्चाननः पञ्चरतिः चिद्घनशक्तिः कामिनी।
कामसाम एकाम्नायं द्विदलं पुरगामिनी।।५२।।

पंचानन भगवान् शिव पांच रतियों वाले हैं, अर्थात् भगवान् शिव पंचरति (पार्वती) से युक्त हैं। वे चैतन्य घन शक्ति हैं जो चित् घनशक्ति ही कामिनी है, अर्थात् समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। एकाम्नाय तन्त्र काम को शान्त करने वाला है और दो दल वाला पुर में गमन करने वाला है।।५२।।

द्विदले त्रिपुरानन्देऽभेदः शक्तिसंयुतः।
सदाशिवः खगाचारो दिवि खगः प्रचोदितः।।५३।।

द्विदल त्रिपुरानन्द में कोई भेद नहीं है, वह शक्ति से संयुत है। वहाँ पर सदाशिव खग (आकाश में गमन करने वाले) हैं, इसीलिये स्वर्ग में उन्हें खग कहा गया है।।५३।।

कुमारीस्थः सूक्ष्मकामो निष्कले प्रकृतिस्तथा।
सकलः परमानन्दो यौवनं प्रौढभावकम्।।५४।।

वे सदाशिव कुमारी में स्थित हैं तथा सूक्ष्म कामना वाले हैं। कलाओं से रहित एवं प्रकृतिस्थ हैं, अर्थात् अपने ही स्वभाव में स्थित रहने वाले हैं। वे निष्कल रहते हुए कलाओं वाले हैं तथा परमानन्दस्वरूप हैं तथा प्रौढ़ भाव वाले यौवन से युक्त हैं।।५४।।

कर्मभावोऽप्यभावश्च शुष्कज्ञानं नपुंसकम्।
ध्यानं ज्ञानं प्राणशक्तिर्हृदये प्राण ईश्वरः।।५५।।

वे सदाशिव सक्रिय क्रियाशील भी हैं तथा निष्क्रिय भी हैं। वे शुष्क भाव वाले हैं तथा नपुंसक हैं अर्थात् न स्त्रीलिंग हैं और न पुल्लिङ्ग हैं। ध्यान और ज्ञान स्वरूप हैं, प्राणशक्ति स्वरूप हैं और हृदय में प्राण रूप से ईश्वर हैं।।५५।।

मूलपुरं ब्रह्मपुरं कालीपुरं सुनिर्मलम्।
वैकुण्ठः कमलापुरं क्षीरोदे शयनं हरेः॥५६॥

उन षडाम्नाय के छः अंग हैं, १. मूलपुर, २. ब्रह्मपुर, ३. कालीपुर, ४. वैकुण्ठ, ५. कमलापुर तथा ६. क्षीरोद, जहाँ कि हरि (विष्णु) शयन करते हैं।।५६।।

नागिनीडाकिनीपुरं ब्रह्मपुरं द्विरूपकम्।
नागिनी व्याघ्रिणी सुप्ते चैतन्ये शिवमोहिनी॥५७॥

नागिनी डाकिनीपुर मूलपुर है तथा ब्रह्मपुर दो रूप वाला है। सोने पर नागिनी और व्याघ्रिणी होती है और चैतन्य रहने पर (जागते रहने पर) शिवमोहिनी रहती है।।५७।।

कामकला कलावर्त्म वह्निकलास्थो मुक्तिदा।
नादरूपा ककारञ्च कलावर्त्मप्रकाशिनी॥५८॥

कामकला कला का मार्ग है तथा वह्निकला में स्थित है। वह नादरूप है। ककार युक्त है और कला के मार्ग को प्रकाशित करने वाली है।।५८।।

गुरुपदे महानादे चित्कला सकलालया।
तत्सवितुर्वरणीयं भवसेतुविमुक्तिकम्॥५९॥

गुरु शब्द ही महानाद है तथा उस महानाद वाले गुरु शब्द में समस्त गृहों वाली चित्कला अर्थात् चेतनता रूपी कला स्थित है। तथा वही सविता (सूर्य) द्वारा वरणीय है तथा संसार रूपी सागर से पार करने वाली तथा मोक्ष प्रदान करने वाली है।।५९।।

इन्दुविन्दुचिदाकारं सहस्रारे पुरे स्थितम्।
द्विधाकारं सहस्रारं द्विधा त्रिरूपसंस्थितम्॥६०॥

उस सहस्र दल कमलपुर में चन्द्रबिन्दु चिदाकार रूप में स्थित है। वहाँ वह सहस्रार दो प्रकार के आकार वाला है तथा दो प्रकार का तीन रूपों में स्थित है।।६०।।

सकुलं नकुलं ब्रह्मा स्थूलसूक्ष्मचिदात्मकम्।
स्थूलोऽपि चिद्घनाकारं गुरुदेवे प्रतिष्ठितम्॥६१॥

तथा उस सहस्रार के दो रूप हैं, सकुल और नकुल तथा वही ब्रह्मा है, जो स्थूल, सूक्ष्म और चित् (चैतन्य) इन तीन रूप वाले हैं। वे स्थूल होते हुए भी चिद्घनाकार रूप से गुरुदेव में प्रतिष्ठित हैं।।६१।।

परमात्मा भवेत् सूक्ष्मः चैतन्यसतीसंयुतः।
चिताङ्गमिष्टं श्रेष्ठञ्च अमृतार्णवप्लावितम्॥६२॥

परमात्मा सूक्ष्म होता है तथा वह चैतन्य सत्ता से युक्त होता है, तथा वह चैतन्य अंग से युक्त होता है तथा वह श्रेष्ठ है और अमृत रूपी सागर से आप्लावित है।।६२।।

सोमधारा क्षरेद् यस्तु ब्रह्मरन्ध्राद् वरानने।
पीत्वामृतमयीं धारां स एव मध्यसाधकः।।६३।।

भगवान् शंकर पार्वती से कहते हैं कि हे सुन्दर मुख वाली पार्वती! ब्रह्मरन्ध्र से जो सोमरस की धारा गिर रही है, उस अमृतमयी धारा का पान करके स्थित रहता है, वही मध्य साधन है।।६३।।

शक्तिः सुरा शिवो मांसो मत्स्यः कपथगामिनः।
श्वासग्रासे मृत्युनाशे मुद्रा मुद्राप्रकाशनम्।।६४।।

वहाँ पर सुरा शक्ति है, मांस शिव है और मत्स्य सुख के मार्ग का गमन करने वाला है। अर्थात् सुख के मार्ग को प्राप्त कराने वाला है। श्वास ग्रास में और मृत्यु का नाश करे में मुद्रा का प्रकाश करने वाली है। यहाँ वाम साधना के पञ्च मकार में से चार का वर्णन किया गया है। जो हैं सुरा (मद्य), मांस, मत्स्य और चौथा मकार मुद्रा। अब पाँचवाँ मकार है–मैथुन।।६४।।

शिवसन्दर्शनार्थाय वासुकी व्याकुला सदा।
रकारो रमणी बाला आकारस्वररूपिणी।।६५।।

शिव के सम्यक् दर्शन के लिये वासुकी सदा व्याकुल रहती है। रकार रमण (मैथुन) करने वाली बाला है तथा वह आकार स्वरूप वाली है।।६५।।

मकारः श्रीमहाकालो गुरुर्ब्रह्मपुरे स्थितः।
रमणी रमणयोग आत्मारामः स उच्यते।।६६।।

मकार श्री महाकाल है, जो ब्रह्मपुर में स्थित है तथा वे ही गुरु हैं। रमणी रमणयोग है तथा वे ही आत्माराम कहे जाते हैं।।६६।।

महेशः सूत्रसङ्गानि तन्त्रमन्त्रप्रकाशकः।
कात्यायनो विष्णुसूत्रभक्तिसूत्रप्रबोधकः।।६७।।

महेश सूत्रसङ्ग हैं तथा महेश ही तन्त्र–मन्त्र का प्रकाश करने वाले हैं। अर्थात् माहेश्वर सूत्र अइउण आदि ही तन्त्र–मन्त्र का प्रकाश करने वाले हैं। जो अष्टाध्यायी में दिये हुए हैं। कात्यायन विष्णुसूत्र और भक्तिसूक्त का प्रकृष्ट बोध कराने वाले हैं।

पाणिनिर्वेदवेदान्तसूत्रप्रकाशकारकः ।
निश्शब्दस्तु विजानीयाद् निष्कलो निर्गुणात्मनः।।६८।।

पाणिनि वेद और वेदान्त के सूत्रों का प्रकाश करने वाले हैं। शब्दहीन को निष्कल और निर्गुणात्मा समझना चाहिये।।६८।।

हंसः सकलं ब्रह्म हि कारणं शब्ददेहिनाम्।
शिवशक्त्यात्मको हंसः विसर्गो बीजव्यापितः।।६९।।

हंस सकल ब्रह्म है और सभी देहधारी प्राणियों का कारण है। तथा हंस ही शिव और शक्ति स्वरूप है। वही विशेष सृष्टिरूप है, बीजव्यापित है अर्थात् बीज रूप से समस्त शरीर में फैला हुआ है।।६९।।

अनुलोमो भवेच्छिवः विलोमो जीव उच्यते।
निर्गुणो व्यञ्जनं हे सौः सगुणः स्वर उच्यते।।७०।।

अनुलोम शिव है और विलोम जीव कहा जाता अर्थात् चेतन तत्त्व का शुद्ध रूप है। शिव अर्थात् परमात्मा है तथा अशुद्ध रूप यह जीवात्मा है। निर्गुण व्यञ्जन 'ह' वर्ण में है और 'सौः' सगुण स्वर कहा जाता है।।७०।।

गुणसाम्याद् महत्तत्त्वं तस्मात्त्रिगुणो जायते।
ह्रस्वो दीर्घस्तथा प्लुतः सृष्टिस्थितिलयात्मकः।।७१।।

गुणों की समानता से महत्तत्त्व है अर्थात् महत्तत्त्व (बुद्धि) में तीनों गुणों सत्त्व, रजस् और तमस् की समानता है। इसलिये यह महत्तत्त्व तीन गुण वाला हो जाता है। तथा वे तीनों गुण हैं ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तथा सृष्टि स्थिति और प्रलय। इस प्रकार यह महत्तत्त्व ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तथा सृष्टि, स्थिति और प्रलयात्मक है।।७१।।

पञ्चवर्गः पञ्चभूतं सत्यांशे मनो जायते।
वृत्तिभेदे भवेद्भेदोऽहङ्कारादिस्त्रिरूपकः।।७२।।

यह पंचमहाभूत शरीर पांच वर्गों वाला है। वे वर्ग हैं–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। तथा सत्य के अंश में मन उत्पन्न होता है। अर्थात् इसके अस्तित्व में मन उत्पन्न होता है। इन सबके वृत्ति अर्थात् व्यवहार के भेद होने पर भेद हो जाता है। तथा अहंकार आदि सब तीन रूप वाले हैं, अर्थात् वे सत्त्व, रजस् और तमस् रूप वाले हैं।।७२।।

सगुणः शब्द ओङ्कारस्त्रिगुणो वेदबीजकः।
नादबिन्दुसमायोगे भ्रमरो मोक्षदायकः।।७३।।

उस परमब्रह्म परमात्मा का सगुण स्वरूप ओंकार है। अर्थात् 'ओ३म्' जो तीन गुण वाला है, वे तीन गुण हैं अ, उ, म्। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत और सृष्टि, स्थिति,

प्रलय तथा सत्त्व, रजस् तमस्। तथा यह ओंकार ही वेद का मूल कारण है। यही ओंकार शब्द नाद और बिन्दु के समायोग में भ्रमर मोक्ष प्रदान करने वाला है।।७३।।

मनच्छाया महामाया सङ्कल्पः सृष्टिबीजकः।
त्रिबिन्दुर्मकारः साक्षाद् अकारः सृष्टिकारकः।।७४।।

यह ओंकार ही मन की छाया है, यही महामाया है तथा सृष्टि का मूल कारण है। यह ओ३म् का मकार तीन बिन्दुओं वाला है। इसमें अकार साक्षात् है तथा यह अकार सृष्टि का करने वाला है। भाव यह है कि परमात्मा का मुख्य नाम 'ओ३म्' तथा यह ओ३म् अ, उ और म् इन तीन अक्षरों से बना है, जो तीनों अक्षर तीन अर्थ रखते हैं। इन तीन अर्थों में उस परमात्मा के तीन कार्य बतलाये गये हैं। इसमें अकार साक्षात् सृष्टिकारक है, अर्थात् वह परमात्मा सृष्टि का करने वाला है।।७४।।

उकारः स्थितिरूपश्च बुद्धिरूपो जनार्दनः।
मकारो बिन्दुसंहर्ता अहङ्कारो महेश्वरः।।७५।।

इस ओ३म् शब्द में दूसरा अक्षर उ है, जो 'उ' स्थितिरूप है, अर्थात् उ का अर्थ है स्थिति रखने वाला, अर्थात् वह परमात्मा इस सृष्टि को स्थित रखता है अर्थात् समस्त प्रपञ्च को स्थिर रखता है, अर्थात् जो सृष्टि हुई है, उसका पालन करता है तथा यह उकार ही बुद्धि रूप है और जनार्दन अर्थात् भगवान् विष्णु हैं। तथा इस प्रकार भी कह सकते हैं कि अकार सृष्टिरूप अर्थात् ब्रह्मा है तथा उकार स्थितिरूप अर्थात् विष्णु है तथा मकार बिन्दु (सकल प्रपंच) का संहार करने वाला है तथा वही अहंकार स्वरूप अर्थात् महेश्वर है।।७५।।

अकारो ब्रह्मणो रूपम् उकारो विष्णुरूपधृक्।
मकारश्च महारुद्रो भ्रुवोर्मध्ये प्रतिष्ठितः।।७६।।
एतद्बिन्दुः समाख्यातो नादसूक्ष्मलयात्मकः।
अकारो नयनस्थानम् उकारः कृष्णरूपधृक्।।७७।।

अब ओ३म् की देवों के रूप में कल्पना करते हैं।

अकार ब्रह्मा का रूप है, उकार विष्णु का रूप धारण करने वाला है और मकार महारुद्र (शिव) है, जो भौहों के मध्य में स्थित है। इस प्रकार इस बिन्दु की सम्यक् व्याख्या की गयी है। यह बिन्दु ही नाद, सूक्ष्म और लयात्मक है। इस ओंकार बिन्दु में अकार नयन स्थान है, उकार कृष्णरूप को धारण करने वाला है।।७७।।

विशेष–यह 'ओ३म्' शब्द ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप वाला है। इस ओ३म् शब्द में तीनों शक्तियाँ हैं। अर्थात् यों कहिये कि यह ओ३म् नाम वाला परमात्मा ही अपने सृष्टिकर्म के आधार पर ब्रह्मा, सृष्टि का पालन करने के आधार पर विष्णु तथा सृष्टि का संहार करने के कार्य के आधार पर महेश्वर कहा गया है, वह परमात्मा एक ही है, जिसका मुख्य नाम ओ३म् है तथा अन्य सभी नाम उसके कर्मानुसार हैं। उदाहरण के लिये जैसे किसी व्यक्ति का मुख्य नाम रामू है, परन्तु जब वह कृषि कार्य करता है, तो किसान कहलाता है, पढ़ने जाता है, तब विद्यार्थी कहलाता है, वही जब दुकान पर बैठा होता है, तब दुकानदार कहा जाता है। इसी प्रकार उस परमात्मा का मुख्य नाम ओ३म् है, जो उसके मुख्य कार्यों के नाम पर रखा गया है तथा इस नाम में उसके सृष्टि, स्थिति और प्रलय तीनों कार्य समाहित हैं। अतः ओ३म् का उच्चारण करते ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देव आ जाते हैं। वैसे ये तीनों देव कोई अलग-अलग नहीं हैं, तीनों ही उस परमात्मा के कार्यानुसार नाम हैं, वह परमात्मा एक ही है, उसको अलग तीन देवों के रूप में मानना बुद्धि का भ्रम है। कौलज्ञाननिर्णय के अनुसार ॐ में नवगुण दिखाये हैं, वे हैं–

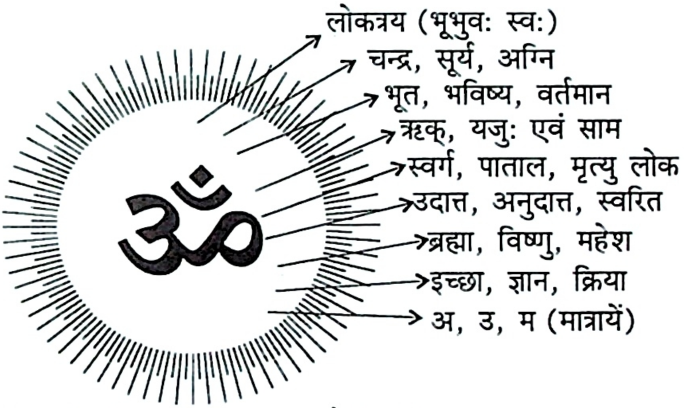
ॐ
लोकत्रय (भूभुवः स्वः)
चन्द्र, सूर्य, अग्नि
भूत, भविष्य, वर्तमान
ऋक्, यजुः एवं साम
स्वर्ग, पाताल, मृत्यु लोक
उदात्त, अनुदात्त, स्वरित
ब्रह्मा, विष्णु, महेश
इच्छा, ज्ञान, क्रिया
अ, उ, म (मात्रायें)

बिन्दु के विषय में कहा गया है कि बिन्दु, नाद एवं कला का सम्बन्ध शक्तितत्त्व से है। वहाँ बिन्दु का स्वरूप बताते हुए कहा है कि–

वह महालिङ्ग भगवान् शिव का ही अपना प्रतीकात्मक एवं ज्योतिर्मय स्वरूप है, उसकी अचिन्त्य दिव्य शक्ति की आख्या ही 'बिन्दु' है। बिन्दु = महालिङ्ग की शक्ति।

बिन्दु की शक्ति–बिन्दु ही विश्व की उत्पत्ति एवं उसके पालन (रक्षा) का मूल कारण (स्तम्भ) है। यह वह शक्ति है, जो कि समस्त शक्तियों के मिल जाने पर

भी उनके द्वारा विचलित नहीं की जा सकती। यह अक्षोभ्य शक्ति है–

'अक्षोभ्यः सर्वशक्तिनाम्'

अपनी ही शक्ति द्वारा इसमें प्रवेश कर पाना सम्भव है।

'बिन्दु का दूसरा अर्थ 'अमृत' है, जो कि शरीर से जरा, वार्धक्य एवं मृत्यु दूर करता है। यह वह शक्ति है, जिसकी किरणों के संस्पर्श से संसार की प्रत्येक वस्तु पवित्र हो जाती है।

बिन्दु कामकला से संश्लिष्ट है। अतः यह सदैव के लिये सारे भ्रंश, सारे शारीरिक परिवर्तन, ढलती आयु एवं शरीर की ह्रासोन्मुखता को ध्वस्त कर देता है।

यह बिन्दु कामकला से सन्नद्ध होकर अमर एवं अनश्वर है (नित्य वर्तमान) अमर जीवन प्रदान करता है।

'बिन्दु' सहजतत्त्व की पराकाष्ठा है। यह उतना ही निर्मल है जितना की हीरा। यह मोती के समान दीप्तिमान है। यह आकाश के भिन्न–भिन्न रंग के तारों की भाँति सुन्दर है। यह सृष्टि एवं संहार का मूल कारण है और कुल तथा अकुल विहीन है। बिन्दु वली पलित को नाश करने की दृष्टि से अमृत है।

बिन्दु परमशिव की सृजनात्मक प्रेरणा है। यह पराशक्ति से सम्बद्ध है।

बिन्दु की क्रियायें–बिन्दु से सर्वप्रथम 'नाद' की ध्वनि का आविर्भाव होता है। फिर 'नाद' से सृजन, व्यापार या सृष्टि क्रिया का समारम्भ होता है।

महाबिन्दु चैतन्य के क्षेत्र में प्रवेश करता है। परमशिव की किरणें का समूह विमर्श (शक्ति) के दर्पण में प्रतिबिम्ब होता है। शिव में अहंकार का उदय होता है।

पुण्यानन्द नाथ 'कामकलाविलास' में कहते हैं–'प्रकाशैकस्वभाव परशिवभट्टारक रूप सूर्य की रश्मियों के समूह का विमर्शरूपी निर्मल दर्पण में (स्वस्वरूपावलोकनरूप) प्रतिफलन होने से (तदुत्पन्न) प्रतिकाश द्वारा सुरम्य चित्तरूपी दीवार पर 'महाबिन्दु' प्रकाशित होता है।'

परमशिव रवि हैं। 'विमर्श' दर्पण है। 'महाबिन्दु' चित्त की दीवार पर प्रतिबिम्बित होता है। चित्त की दीवार 'महाबिन्दु' की रश्मियों से प्रकाशित होता है। 'महाबिन्दु' सदाशिव हैं। इसके ऊपर चित्कला या चिच्छक्ति स्वान्त्र्यमयी होकर क्रीडा किया करती है। यह क्रीडा 'परावाक्' का विलास है।

मकारश्च महारुद्रो महाप्रलयशायिनः।
शब्दसाम्यं भवेन्नादे प्रकृतिर्गुणसंयमी॥७८॥

तथा मकार महारुद्र रूप है तथा मकार (महारुद्र) महाप्रलय में शयन करने वाले हैं। नाद में शब्द साम्य होना चाहिये और प्रकृति में गुणों का संयम होना चाहिये।

भाव यह है कि नाद का अर्थ 'अ' है तथा सृष्टि होने के प्रतीक है, अतः नाद में शब्द की समानता रहे तथा प्रकृति के गुण में संयम होवे अर्थात् जब प्रकृति के तीनों गुणों में संयम रहेगा, तभी सृष्टि होगी। अन्यत्र भी कहा गया है कि जब प्रकृति में सत्त्व गुण का उद्रेक होता है, तब सृष्टि होती है तथा उस समय अन्य दोनों गुण अपने-अपने समानुपात में रहने चाहियें।।७८।।

कारणं देहिनां चित्तं लयस्थानं चराचरम्।
पञ्चाशद्वर्णाः पङ्क्तिश्च परा पश्यन्ती वैखरी।।७९।।

देहधारियों का कारण चित्त है तथा वही चर और अचर जगत् का लयस्थान है। पचास वर्ण हैं और परा, पश्यन्ती और वैखरी ये तीन पंक्तियाँ हैं। अर्थात् परा, पश्यन्ती और वैखरी ये पाँच वाणियाँ हैं।।७९।।

अनन्तः शब्दसम्भूतोऽनन्तो जीवजन्तवः।
पञ्चाशत् पञ्च पञ्चश्च गुणतत्त्वसमन्वितः।।८०।।

अनन्त शब्द से उत्पन्न है तथा जीव और जन्तु अनन्त हैं, अर्थात् असंख्य हैं, उनका कोई अन्त नहीं है। पचास वर्ण और पाँच-पाँच वर्ग हैं, जो गुण तत्त्व से समन्वित है।।८०।।

विशेष—पचास वर्णों में पांच वर्ग इस प्रकार हैं—कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ), चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ), टवर्ग (ट, ठ, ड, ठ, ण), तवर्ग (त, थ, द, ध, न), पवर्ग (प, फ, ब, भ, म)।

अनन्तो विश्वसंव्यापी ह्यनन्तो जीवकल्पना।
निगमवाचको ब्रह्म हंसश्चैतन्यरूपिणी।।८१।।

विश्वसंव्यापी अनन्त है तथा जीवों की कल्पना अनन्त है। निगम का वाचक ब्रह्म है। अर्थात् वेदों ने ब्रह्म को बताया है तथा चैतन्य रूप वाली हंस है।।८१।।

मन्त्ररूपा ब्रह्मयोनिः शास्त्रयोनिः सनातनी।
पातालभूतलस्वर्गत्रिसप्तस्वर्गपूजितः ।।८२।।

ब्रह्मयोनि मन्त्ररूप है। अर्थात् मन्त्र से ब्रह्म प्रसन्न होते हैं तथा शास्त्रयोनि सनातनी है। पाताल, भूतल, स्वर्ग ये तीन तथा सप्तस्वर्ग पूजित है।।८२।।

योनिमुद्रा महामन्त्रो महावाक्यार्थनिर्णयः।
ककारः कालिका साक्षाद् महायोनिस्वरूपिणी॥८३॥

महामन्त्र योनिमुद्रा है, जो महावाक्य के अर्थ का निर्णय करने वाला है। ककार साक्षात् कालिका है तथा कालिका महायोनि स्वरूपिणी है॥८३॥

ककारः परमं ब्रह्म ख आदिः शून्य आत्मनः।
स्वरशक्तिसमायोगे शब्दः सर्वप्रकाशिनी॥८४॥

ककार परम ब्रह्म है तथा 'ख' आदि है आत्मा का शून्य है। स्वर और शक्ति के समायोग में ककार शब्द (कालिका) सब प्रकाश करने वाली है॥८४॥

ककारः शून्यसंस्थायी हकारः पुरुषो महान्।
पुरुषो द्विविधाकारः सकलो निष्कलात्मकः॥८५॥

ककार शून्य संस्थायी है तथा हकार महान् पुरुष है तथा पुरुष (जीव) दो प्रकार का है। सकल (कलाओं से युक्त) अर्थात् साकार (शरीर से युक्त) तथा निष्कल (कलाविहीन अर्थात् निराकार) शरीर से रहित॥८५॥

निष्कलश्च निराकारोऽन्धकारो दिवि गतः।
चित्कला सकला रेखा महाशून्यप्रकाशिनी॥८६॥

निष्कल पुरुष निराकार है, जो अन्धकार रूप स्वर्ग में गया हुआ है। यहाँ पुरुष (जीव) को कहा गया है, अर्थात् जीव शरीर से रहित दशा में होता है, तब वह निराकार रूप से स्वर्ग में अन्धकार रूप में रहता है, अर्थात् दिखाई नहीं देता, अगोचर होता है। वही पुरुष जब चैतन्य की कला से युक्त होता है, तब वह सकला (कलायुक्त) कहा जाता है तथा पुरुष की वह सकला रेखा महाशून्य को प्रकाशित करने वाली होती है। अर्थात् उस अवस्था में वह पुरुष उस महाशून्य परम ब्रह्म से प्रकाशित होता है॥८६॥

नादरेखा त्रिकोणा हि बिन्दुर्वर्त्मनिरूपकः।
अनादिरादिर्नादो हि भानुरिन्दुप्रकाशकः॥८७॥

नादरेखा तीन कोण वाली होती है तथा वह नाद बिन्दु अर्थात् शिव के मार्ग का निरूपण करने वाला है। वह नाद अनादि है और आदि है तथा सूर्य और चन्द्रमा को प्रकाशित करने वाला है॥८७॥

षट्शून्ये परमा विद्या घनस्थूलप्रकाशिनी।
जगद्योनिः कामकला कला कलाप्रचारिणी॥८८॥

षट्शून्य में परम विद्या है, जो घन (ठोस) स्थूल को प्रकाशित करने

वाली है। कामकला संसार को उत्पन्न करने वाली है। यही कला समस्त कलाओं का प्रचार करने वाली है। इसमें सन्देह नहीं कि संसार की समस्त कलायें कामकला पर ही आधारित हैं।।८८।।

विश्वयोनिर्बीजकला दशकलास्वरूपिणी।
ककारस्त्रिकोणाकारो महायोनिश्चिदात्मकः।।८९।।

दशकला स्वरूप वाली यह कामकला विश्व की योनि है तथा समस्त कलाओं का बीज है। ककार त्रिकोणाकार है तथा यह महायोनि है और चिदात्मक है।।८९।।

शून्यः सूक्ष्मो निष्कलो हि सकलो रेखाभास्करः।
अङ्कुश इषुर्विषुश्च कामरूपो महेश्वरः।।९०।।

अर्थ से वह पर शिव कलाओं से रहित है तथा शून्य है तथा सकल भी है। अर्थात् कलाओं से युक्त भी है। यहाँ निष्कल और सकल का अर्थ होगा कि वह पर शिव निराकार और साकार दोनों हैं।।९०।।

अर्थतो निष्कलः शून्यः सकलो हि परः शिवः।
त्रिगुणात्मा भवेन्मात्रा मायागुणप्रकाशकः।।९१।।

अब यहाँ यह कहना कि वह साकार और निराकार दोनों है, कुछ अटपटा सा लगता है, क्योंकि वह यदि साकार होता तो दिखाई देता, परन्तु वह तो दिखाई नहीं देता है, तब यहाँ पर यही मानना होगा कि यह समस्त प्रपंच जड़–चेतन पदार्थ सूर्य–चन्द्रमा, ग्रह–नक्षत्र, पृथ्वी आदि दिखाई देते हैं, वे उसके ही रूप हैं तथा इन सबमें जो संचालन शक्ति है, वह उसका निराकार स्वरूप है, जो दिखाई नहीं देता। उसका जो सकल स्वरूप है, अर्थात् साकार रूप है, वह त्रिगुणात्मक है अर्थात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण स्वरूप है, जिसे प्रकृति कहा जाता है। जो माया के गुण का प्रकाशक है।।९१।।

विशेष–वेदान्त प्रकृति को माया कहता है।

चित्कला सकला व्याप्या त्रिगुणा गुणवर्जिता।
महाकालो द्विधाकारो निष्कलः सकलः परः।।९२।।

उस पर शिव की प्रकृति जिसे माया भी कहा जाता है, वह चैतन्य की कला से युक्त है तथा जब चैतन्य की कला से युक्त होती है, तब वह सकला कही जाती है। वह सर्वत्र व्याप्त रहने वाली, वह तीन गुणों सत्त्व, रज और तम वाली है तथा गुणों से रहित भी है तथा महाकाल पर शिव दो प्रकार के आकार वाले हैं। निष्कल और सकल अर्थात् निराकार और साकार।।९२।।

मायाकला जीवकला द्विधा माया प्रतिष्ठिता।
अरुणतरुणानाम आद्यन्ते समभागतः॥९३॥

यह उन परः शिव की माया अर्थात् ब्रह्म की प्रकृति दो प्रकार से प्रतिष्ठित है। वह अरुण और तरुण नाम से आदि और अन्त भाग में समान भाग से स्थित है॥९३॥

वह्निकलासमायोगे चतुःषष्टिकला कला।
सच्चिदानन्दो विभवः सकलः परमेश्वरः॥९४॥

अग्नि की दश कलाओं के समायोग होने पर चौंसठ कलायें कला होती हैं। सत् चित् और आनन्द स्वरूप वह वैभवयुक्त परमेश्वर ही समस्त कलाओं वाला है।

विशेष—अग्नि की दश कलाएँ हैं—१. धूम्रार्चिषि कला (धुआँ देने वाली कला), २. ऊष्मा (ऊष्मा देने वाली), ३. ज्वलिनी (जलने वाली), ४. ज्वालिनी (जलाने वाली), ५. विस्फुलिङ्गी (चिनगारी देने वाली), ६. सुश्री (सुन्दर लगने वाली), ७. सुरूपा (सुन्दर रूप वाली), ८. कपिला (कपिल वर्ण वाली) अर्थात् अग्नि कपिल कुछ पीले-लाल वर्ण की होती है, ९. हव्यवाहा कला (क्योंकि अग्नि आहूत किये गये हव्य की सुगन्ध को सर्वत्र फैलाती है, १०. कव्यवाहा (अग्नि श्राद्ध में किये गये कव्य को वहन करती है। इस प्रकार ये दश अग्नि की कलायें हैं।

शैवतन्त्र के अनुसार चौंसठ कलायें हैं—१. गीत, २. वाद्य, ३. नृत्य, ४. नाट्य, ५. आलेख्य, ६. विशेष कच्छेद्य, ७. तण्डुलकुसुमबलि विकार, ८. पुष्पास्तरण दशनवसनाङ्गराग, ९. मणिभूमिका कर्म, १०. मणिभूमिका कर्म्म, ११. शयनरचन, १२. उदकवाद्य, १३. उदकघात, १४. चित्रायोग, १५. माल्य ग्रथन विकल्प, १६. शेखरामीडयोजन, १७. नेपथ्ययोग, १८. कर्णपत्र भंग, १९. गन्धयुक्ति, २०. भूषणयोजन, २१. ऐन्द्रजाल, २२. कौचुमारयोग, २३. हस्तलाघव, २४. चित्रशाक पूयभक्ष्यविकारक्रिया, २५. पानकरसरागासव योजन, २६. सूचीवाप कर्म्म, २७. सूत्रक्रीडा, २८. प्रहेलिका, २९. प्रतिमाला, ३०. दुर्व्वचक योग, ३१. पुस्तकवाचन कला, ३२. नाटिकाख्यायिका दर्शन कला, ३३. काव्यसमस्या पूरणकला, ३४. पट्टिका वेत्रवाण विकल्प, ३५. तर्कुकर्म्मकला, ३६. तक्षणकला, ३७. वास्तुविद्या, ३८. रूप्यरत्नपरीक्षा, ३९. धातुवाद, ४०. मणिराग ज्ञान, ४१. आकर ज्ञान, ४२. वृक्षायुर्वेद योग, ४३. मेषकुक्कुटलावक युद्धविधि, ४४. शुकशारिका प्रलापन, ४५. उत्सादन, ४६. केशमार्जन कौशल, ४७. अक्षरमुष्टिका कथन, ४८. म्लेच्छितक विकल्प, ४९. देशभाषा ज्ञान, ५०. पुष्पशकटिका निमित्तज्ञान, ५१. यन्त्रमातृका, ५२. धारणमातृका, ५३. सम्पाद्यम्, ५४. मानसीकाव्य क्रिया, ५५. क्रियाविकल्पा,

५६. छलितक योगा, ५७. अभिधानकोष छन्दोज्ञान, ५८. वस्त्रगोपन, ५९. द्यूतविशेष, ६०. आकर्षण क्रीडा, ६१. बालक क्रीडनक कला, ६२. वैनायिकी विद्याओं का ज्ञान, ६३. वैषयिकी विद्याओं का ज्ञान, ६४. वैतालिकी विद्याओं का ज्ञान। कहीं कहीं सूचीवाण कर्म्म सूत्रक्रीड़ा इसके बाद वीणा डमरूवाद्य आया है तथा वैतालिकी के स्थान वैयासिकी विद्याओं का ज्ञान आया है।

इस प्रकार ये कुल ६४ कलायें हैं। ये ही ६४ विद्यायें हैं, जो आज दूसरे रूपों में विद्यमान हैं। ये वात्स्यायन कामसूत्र में देखी जा सकती हैं।

आसीत् शक्तिस्ततो नादस्ततो बिन्दुः प्रकाशितः।
निनादः शून्यमेकञ्च द्विशून्यो नादबोधकः॥९५॥

पूर्व श्लोक में कहा गया कि अग्नि की दश कलाओं के समायोग होने पर ६४ कलायें और हैं, जिन सब कलाओं से युक्त वह परमेश्वर है, अर्थात् उस परमपिता परमेश्वर में सभी कलायें हैं।

अब उस सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर के बाद शक्ति का स्थान है, उसके बाद नाद है तथा उसके बाद बिन्दु प्रकाशित होता है। निनाद एक शून्य है तथा दो शून्य नाद के बोधक हैं।।९५।।

अर्थतश्चित्कला नादो वर्णतः सकारात्मकः।
एकबिन्दुर्भवेच्चन्द्रः सृष्टिबीजचराचरः॥९६॥

अर्थ से चित्कला नाद है और वह वर्ण से सकारात्मक है। नाद एक ब्रह्मस्वरूप घोष विशेष को कहते हैं, जो सकारात्मक है, अर्थात् वह सफलतात्मक है, एक बिन्दु चन्द्रमा है, जो सृष्टि के चर-अचर का कारण है।।९६।।

द्विबिन्दू रजतो भानुसंस्थितः कारणं महान्।
त्रिबिन्दुः सर्वशून्यश्च रुद्ररूपं हुताशनः॥९७॥

दो बिन्दु वाला सूर्य है, जो रज से उत्पन्न है, जो सबका महान् कारण है तथा तीन बिन्दु वाला सर्वशून्य है, जो रुद्ररूप अग्नि है। अर्थात् यह अग्नि ही रुद्ररूप है।।९७।।

विस्फुलिङ्गः खण्डकोऽङ्गः पिण्डब्रह्माण्डव्यापितः।
शून्यरूपो महाकालः काकिकाकूटयोगतः॥९८॥

यह अग्नि चिन्गारियों वाला है, खण्डक अंग वाला है तथा इस ब्रह्माण्ड के पिण्ड में स्थित है तथा यह वैज्ञानिक तथ्य है कि समस्त ब्रह्माण्ड एक आग का गोला है, सभी ग्रहों के अन्तर्गत अग्नि है। ऊपर की अग्नि शान्त हो चुकी है, परन्तु

उसका पिण्ड आग का गोला है तथा महाकाल शून्यरूप है तथा कालिकाकूट के योग से बना है, अर्थात् महाकाल कालिका से संयुक्त है तथा वह शून्यरूप है।।९८।।

प्राणापानसमानश्च कन्दर्पदर्पबीजकः।
उज्ज्वलोऽनलः काममेधासाम्राज्यवाचकः।।९९।।
मीनकेतुर्महासेतुर्वाग्भवो भवमोचनम्।
वसुर्मधुसुधाधारः रतिः सरस्वती परा।।१००।।
मन्मथो मोहिनी बाला मण्डलसमावृतः।
सच्चिदानन्द आकारस्त्रिधाकारः सुचिन्तम्।।१०१।।
स्थूलसूक्ष्मचिदकारः ककारेषु प्रकाशितः।
शून्यरूप एकाकारः सूक्ष्मरूपप्रवाचकः।।१०२।।
हकारवाचकः पुंसः ककारः कामिनी परा।
कालिकानलरूपं हि जलरूपा सरस्वती।।१०३।।
धरणी ह्लादिनी बाला सर्वविद्या (कामकला) स्वरूपिणी।
आद्या साध्या कामराजो वसुगम्या सरस्वती।।१०४।।
कल्पश्च साधिनी बाला महाविद्या क्रमागतः।
चिदाकारो द्विधाकारः कुलाकुलसमुच्चितः।।१०५।।

प्राण, अपान और समान ये वायु हैं। कन्दर्प दर्प का कारण है। उज्ज्वल वायु है। काम मेधा साम्राज्य का वाचक है।

वह कामदेव मत्स्य की ध्वजा वाला है, वही महासेतु है। उसी पर यह समस्त संसार पार होकर जीवन जीता है। यही वाणी से उत्पन्न है और संसार से मुक्ति दिलाने वाला है। यह वसु मधु और अमृत का आधार है तथा रति परा सरस्वती रति है।

कामदेव और मोहिनी बाला रति मण्डल में समावृत है। वह ब्रह्म सत् चित् और आनन्द के आकार वाला है। इस प्रकार वह तीन प्रकार के आकार से संस्थित है।

वह ब्रह्म स्थूल, सूक्ष्म और चिदाकार रूप है तथा वह ककारों में प्रकाशित है। वहं शून्यरूप एक आकार वाला है तथा सूक्ष्म रूप का प्रवाचक है।

हकार पुरुष का वाचक है तथा ककार परा कामिनी का वाचक है, वह सरस्वती कालिका वायुरूप है तथा वह सरस्वती जल रूप है।

वह सरस्वती धरणी (धारण करने वाली) है। वह आह्लाद प्रदान करने वाली है तथा वह बाला कामकला स्वरूप वाली है। वह सरस्वती आद्या है, साध्या है, कामराज है, वसुगम्या है।

कल्प, साधिनी, बाला और फिर महाविद्या ये क्रमागत हैं। चिदाकार ब्रह्म दो प्रकार के आकार वाला है, जिसको कुल और अकुल सम्यक् प्रकार से कहा गया है।।९९-१०५।।

विशेष—मेधा का अर्थ है—बुद्धि। अर्थात् काम ही बुद्धि का उद्दीपक है— स्वाभाविक है, जिसमें जितना अधिक काम होता है, वह उतना अधिक विद्वान् होता है।

ककारः सर्वमूलं हि व्यक्ताव्यक्तं द्विधा मतम्।
तथा हकारो द्विविधस्त्रिविधो लयरूपकम्।।१०६।।

तन्त्र में ककार सबका मूल है तथा वह ककार व्यक्त और अव्यक्त दो प्रकार का कहा गया है। व्यक्त का अर्थ है दिखाई देने वाला, अतः (क) जब लिखा जाता है, तो वह स्पष्ट दिखाई देता है, परन्तु उसमें कौन-कौन-सी शक्तियाँ अन्तर्निहित हैं, यह अव्यक्त है। जैसा तन्त्रशास्त्र में कहा गया है कि वंगीय भाषा में उसका जो लेखन प्रकार है, तदनुसार उसकी वाम रेखा ब्रह्मा है और विष्णु दक्षिण रेखा है। नीचे वाली रेखा रुद्र है और मात्रा साक्षात् सरस्वती है। 'क' की जो कुण्डली है, वह अंकुश के आकार वाली है, उसके मध्य में शून्य सदाशिव हैं। अतः कदम्ब के समान गोलाकार ककार को विद्वानों ने ऐसा बताया है। यह वर्णोद्धारतन्त्र में कहा गया है। वैसे भी यह (क) व्यंजन का प्रथम वर्ण है।

उसी प्रकार हकार (ह) वर्ण भी दो प्रकार के आकार वाला है तथा लयरूप तीन प्रकार का भी है। अर्थात् यह हकार प्रलयरूपक है, क्योंकि यह अन्तिम व्यंजन है। तदनुसार लयरूपक है।

इस हकार के बारे में कामधेनु तन्त्र में भगवान् शिव ने पार्वती से कहा है कि हे पार्वती! यह हकार वर्ण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों वर्गों को प्रदान करने वाला है। यह दो कुण्डलियों से संयुक्त है, जो रक्त विद्युत् की लता के समान है। यह 'ह' वर्ण रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण तीनों गुणों से युक्त है तथा सदैव पंचदेवमय है। यह पंच प्राणात्मक (प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान) वर्ण है तथा सदैव चित् शक्ति (चेतनता) से युक्त रहता है तथा यह तीन विन्दु सहित है, अतः हे पार्वति! तुम इसे हृदय में धारण करो।।१०६।।

प्रलये बिन्दुरूपञ्च नादचक्रे प्रतिष्ठितम्।
कामकलासमायुक्तः सकारो नादरूपिणी।।१०७।।

प्रलयकाल में यह हकार विन्दुरूप (शून्य रूप) में स्थित रहता है तथा वह नादचक्र में प्रतिष्ठित है। तथा स कार कामकला से समायुक्त है तथा नाद रूप वाला है।।१०७।।

अपवर्णा विसर्गश्च रकारगतकामिनी।
विसर्गः स्वर्गरूपश्च वकार उकारात्मकः॥१०८॥

रकार में अपवर्ग है और विसर्ग छिपा हुआ है। तथा वह विसर्ग स्वर्ग रूप है, क्योंकि व्याकरण के अनुसार 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' सूत्र के अनुसार 'र' को (:) विसर्ग हो जाता है, अतः 'र्' में विसर्ग छिपा हुआ है तथा वह विसर्ग स्वर्गरूप है तथा 'व' कार उकारात्मक अर्थात् 'व्' तो 'उ' का ही रूप है, व्याकरण के अनुसार 'इग्यणः' नियम से 'य्' को 'इ' और 'व्' को 'उ', 'र्' को 'ऋ' तथा 'ल्' का 'ऌ' होना कहा गया है। अतः 'व्' वास्तव में उकारात्मक है।।१०८।।

हकारः शिवरूपं हि सकारः सतीरूपिणी।
सर्वो भुवनसंयोगे त्रिभुवनप्रचारकः॥१०९॥
पराप्रसादरूपश्च हकार आदिवर्णकः।
सकलभुवनयोगे त्रिपुरा त्रिपुरेश्वरी॥११०॥
चणकाकृतिः सर्वतो न भेदः परमात्मनि।
व्यक्ताव्यक्तं द्विविधञ्च ज्ञानविज्ञानगोचरे॥१११॥
स्वरूपविरूपं ज्ञानविज्ञानं द्विविधं मतम्।
गुरुगम्ये शास्त्रयोगे क्रियायोगे स्वरूपतः॥११२॥

हकार शिवरूप है तथा सकार सती रूप वाला है। इस संसार के संयोग में ये सब वर्ण तीनों भुवनों के प्रचारक हैं। पाणिनि व्याकरण के अनुसार हकार आदि वर्ण है, क्योंकि चौदह सूत्रों में पहला व्यञ्जन सूत्र है 'हयवरट्' तथा इसमें 'ह' प्रथम वर्ण है अतः यह हकार आदि वर्ण वाला है, अतः परा और प्रसाद रूप है तथा समस्त लोकों के योग में तीन पुर वाली त्रिपुरेश्वरी विद्यमान हैं। वे सर्वत्र चने की आकृति की है तथा उनमें और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। तथा वे त्रिपुरेश्वरी व्यक्त और अव्यक्त दोनों प्रकार की हैं तथा ज्ञान और विज्ञान गोचर हैं, अर्थात् उन प्रकृतिस्वरूपा त्रिपुरेश्वरी को ज्ञान और विज्ञान से ही जाना जा सकता है। वे अपने रूप वाली हैं अर्थात् सत्त्व, रजस् और तमस् गुणयुक्त रूप वाली हैं तथा बिना रूप वाली हैं। अर्थात् उनका कोई रूप (आकार) नहीं है। इस प्रकार वे रूप वाली तथा बिना रूप वाली दोनों प्रकार की हैं। तथा स्वरूप से वे गुरु द्वारा गम्य हैं, अर्थात् गुरु द्वारा उनके स्वरूप का दर्शन किया जा सकता है तथा उनको पाने की देखने की क्रिया द्वारा उनका दर्शन सम्भव है।।१०९-११२।।

(आदिकामस्वरूपञ्च अन्तकलास्वरूपिणी।
स्मरहरकलाकाली काली चैतन्यरूपिणी॥११३॥

वे त्रिपुरेश्वरी (प्रकृति) आदिकाम रूप हैं। अर्थात् सबसे पहले काम के रूप में वे ही थीं, उन्हीं ने सबमें काम को उत्पन्न किया, यह काम न होता तो कुछ भी न होता। तथा ये त्रिपुरेश्वरी ही अन्तकला स्वरूप वाली हैं, अर्थात् समस्त कलाओं का अन्त इन त्रिपुरेश्वरी में ही है। ये त्रिपुरेश्वरी कामदेव के प्राणों का हरण करने वाले भगवान् शिव कला वाली काली हैं तथा ये शिव की कला रूप काली चैतन्यरूपिणी हैं, अर्थात् ये ही जीवों को चेतनता प्रदान करती हैं।।११३।।

त्रिकृतं सच्चिदानन्दं द्वितीयकालयोगतः।
हंसमाया महामाया भानुनामेन पुटितः।।११४।।

द्वितीय काल योग से सत् चित् और आनन्द यह त्रिकृत है तथा यह सत् चित् और आनन्द तन्त्र में क्रमशः हंसमाया, महामाया और भानु नाम से संपुटित है।।११४।।

ढद्वयचन्द्रयोगेन ज्ञानचन्द्रः प्रकाशितः।)
विरूपं विषयज्ञानं ध्यानमोहसमावृतम्।।११५।।

दो ढ के चन्द्रयोग से ज्ञान का चन्द्रमा प्रकाशित होता है, तब बिना रूप वाले विषय का ज्ञान होता है, जो ध्यान और मोह से समावृत हैं।

विशेष–ढकार को कामधेनुतन्त्र में बताया गया है कि ढकार परम आराध्य है, जो स्वयं परा कुण्डली है यह वर्ण पंच देवात्मक है तथा सदैव पंच प्राणमय (प्राण, अपान, उदान, समान और व्यानमय) है तथा सदैव सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों गुणों से युक्त रहता है और आत्मा आदि तत्त्व से संयुक्त है। एवं लाल बिजली के समान आकार वाले ढ को सदैव प्रणाम करना चाहिये। तथा नाना तन्त्रसार में उसके २६ नाम भी दिये हैं। यह ढकार बिना रूप वाला है, इसके विषय का ज्ञान ध्यान और मोह से समावृत है।।११५।।

अभ्रमविषयः कश्चित् शुद्धसत्यसमाश्रितः।
शुद्धसत्ये भवेद् विद्या सर्वविद्याप्रकाशिनी।।११६।।

बिना भ्रम का विषय कोई शुद्ध सत्य पर समाश्रित होता है, अर्थात् जो शुद्ध सत्य पर आश्रित है, वही बिना भ्रम का विषय होता है। तथा शुद्ध सत्य के होने पर विद्या होती है, जो कि सभी ज्ञानों का प्रकाश करने वाली होती है।।११६।।

चन्द्रदर्शस्वरवर्णा युगलशब्दवाचकः।
पराप्रासादो विख्यातः प्रासादक्रमयोगतः।।११७।।
हंसः सोऽहमिति ज्ञात्वा सोऽहं प्रासादवाचकः।
वेदबीजं झिलिकादिस्तथैव परिजायते।।११८।।

त्रिगुणात्मा त्रिमात्रा च पञ्चमात्रा च मुक्तिदः।
तारस्तारा समाख्याता सर्वान्ते कालिका स्थिता।।११९।।

स्वर और वर्ण चन्द्रदर्श के समान है, अर्थात् स्वर और वर्ण मिल कर ही कोई शब्द बनाते हैं। स्वर और व्यंजन से ही शब्द बनता है। यह शब्द परा प्रासाद करने वाला अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाला तथा यह परा प्रासाद (परमानन्द) आनन्द के क्रम से प्राप्त होता है।

दो वर्णों से बना हंस शब्द सोऽहं का प्रतीक है, जो यह ध्वनित करता है कि यह जो जीवात्मा है, वह ही परमात्मा है। अतः मन्त्र में जो 'हंसः' ध्वनि है, उसमें आत्मतत्त्व का परमात्मतत्त्व में विलीन होना ध्वनित होता है तथा हंस को 'सोऽहम्' ऐसा जानें तो वह हंस परमानन्द को बताने वाला है। झिलिका आदि जो वाद्यविशेष हैं—वे वेदबीज हैं। ये वाद्य विशेष इस प्रकार हैं—घण्टाशब्दस्तथा भेरी मृदङ्गौ झिल्लिरेव च।

पंचानां शस्यते वाद्यं देवताराधनेषु च। ऐसा गूढार्थ दीपिका में कहा गया है, अर्थात् झिल्लिकादि में पाँच विशेष वाद्य हैं—१. घण्टा, २. शब्द, ३. भेरी, ४. मृदङ्ग, ५. झिल्लि तथा ये वाद्य देवताओं की आराधना में बजाये जाते हैं तथा ये ही वेद वर्णित हैं।।११७- ११९।।

कामः साम इच्छा कामः कामः सङ्कल्पवाचकः।
कामराजो महामन्त्रः सर्वतन्त्रेषु गोपितः।।१२०।।
शब्दबीजं सृष्टिबीजं ककारो ब्रह्मरूपकम्।
एकबिन्दुर्द्विबिन्दुश्च त्रिबिन्दुः ककारे स्थितः।।१२१।।
ककाराज्जायते हंसः क्रमे मायागुणान्वितः।
हंकारो निष्कलः शून्यो हंकारः सकलः शिवः।।१२२।।

त्रिगुणात्मा और त्रिमात्रा तथा पंचमात्रा मुक्ति प्रदान करने वाली होती है, अर्थात् जिन शब्दों में तीन मात्रा और पंच मात्रायें होती हैं, वे वर्ण मुक्ति प्रदान करने वाले होते हैं। तार को तारा कहा गया है, अर्थात् तार प्रणव (ओ३म्) को ही तारा (तारने वाली) शिवभार्या पार्वती कहा गया है तथा सबके अन्त मं कालिका स्थित हैं।

काम ही साम है, काम ही इच्छा है तथा काम ही संकल्पवाचक है, क्योंकि काम से मनुष्य अनेकों संकल्प करता है। इसलिये कामराज ही महामन्त्र है, जो सब तन्त्रों में छिपा हुआ है।

ककार (कवर्ण) ही शब्द का मूल कारण है, क्योंकि यह व्यंजन का प्रथम वर्ण है, अतः यह ककार ही सृष्टि का कारण है तथा ब्रह्म का रूप है, क्योंकि ककार में एक विन्दु, दो विन्दु और तीन विन्दु स्थित हैं।

ककार से हंस उत्पन्न होता है, जो क्रम माया के गुणों से युक्त है। इस हंस शब्द में हंकार निष्कल है, शून्य है और यह हंकार ही सभी कलाओं वाला शिव है।।१२०-१२२।।

हंकारस्त्रिगुणो भर्त्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
सकारस्त्रिविधा शक्तिः चिन्माया गुणरूपिणी।।१२३।।

इस हंस शब्द के हंकार में तीन गुण हैं, सत्त्व, रज और तम, इन्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी कह सकते हैं तथा सकार तीन प्रकार की शक्ति वाला है तथा वह शक्ति चैतन्य की माया रूप वाली है तथा वह भी त्रिगुणात्मिका है, अर्थात् सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों गुण वाली है। इस प्रकार वह प्रकृति ही कही जायेगी। कुल मिला कर यह कहना होगा कि हंस के हंस में ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सर्जिका, पलिका और संहारिका तीनों शक्तियाँ सम्मिलित हैं।।१२३।।

सकारः सच्चिदानन्दः कालिका परमाक्षरी।
कुलकुण्डलिनी काली तारिणी रासभा नवी।।१२४।।

सकार सच्चिदानन्द है, वह शक्तिस्वरूप है और वह परमाक्षरी कालिका है तथा कुलकुण्डलिनी काली तारिणी और रासभा नवी है।।१२४।।

सुन्दरी परमा विद्या सर्वविद्यास्वरूपिणी।
शतकोटिमहाविद्या उपविद्या च तादृशी।।१२५।।

काली सुन्दरी परमा विद्या है तथा समस्त विद्या स्वरूप वाली है। सौ करोड़ विद्याएँ हैं तथा उसी प्रकार सौ करोड़ उपविद्याएँ भी हैं।।१२५।।

तत्रैव भैरवादिश्च मन्त्रश्च (वै) प्रचोदितः।
निगमो भावपूर्णश्च तदर्थ आगमः स्मृतः।।१२६।।

वहीं पर भैरवादि हैं और मन्त्र हैं, जो निश्चय ही प्रेरित हैं। निगम (वेद साहित्य) भाव पूर्ण है अर्थात् वेदों में भावात्मक सिद्धान्त है तथा आगम शास्त्रादि अर्थात् तन्त्रशास्त्र, उनके अर्थ बताने वाले स्मरण किये गये हैं।।१२६।।

अमलो यामलः प्रायो निगमागमसम्मतः।
चतुर्विधं यामलञ्च तदन्यद् उपयामलम्।।१२७।।

यामल तन्त्र प्रायः अमल (दोष रहित) हैं तथा वह निगम और आगम

सम्मत है। चार प्रकार का यामल तन्त्र है, उसके अतिरिक्त अन्य सब उपयामल हैं।।१२७।।

विशेष—चार यामल तंत्र हैं—१. वेदाचारतंत्र, २. ब्रह्मयामलतंत्र, ३. विष्णुयामलतंत्र, ४. रुद्रयामल तंत्र।

त्रिषष्टिचतुरास्तन्त्राः (१९२) क्रान्तिभागे प्रचारिताः।
वासुदेवं मतं ग्राह्यं तन्मतं त्रिविधं स्मृतम्।।१२८।।

एक सौ बानवे (१९२) तन्त्र यामलतन्त्र के क्रान्तिभाग में प्रचारित हैं, उनमें वासुदेव का मत ग्राह्य है तथा उनका मत तीन प्रकार का स्मरण किया है।।१२८।।

प्रथमे वेदाचारो हि पश्वाचारेण भाषितः।
ब्रह्मणा पूजिताचारो ब्रह्मचारिक्रियान्वितः।।१२९।।

यामल तन्त्र के प्रथम तन्त्र में वेदों का आचार वर्णित है, जो पशु के आचार से भाषित है। दूसरा तन्त्र ब्रह्म यामल है, जो ब्रह्म द्वारा पूजित आचार है तथा वह ब्रह्मचारी की क्रियाओं से युक्त है।।१२९।।

विष्णुपूज्यः पराभक्तिशुद्धाचारसमन्वितः।
वामाचारः प्रवर्त्तो हि विभावरीयलक्षणम्।।१३०।।

तीसरा तन्त्र विष्णुयामल तन्त्र है, जो विष्णुपूज्य है तथा वह पराभक्ति और शुद्ध आचार से समन्वित है। उसमें वामाचार प्रवृत्त है तथा वह विभावरी (रात्रि) के लक्षण वाला है अर्थात् उसकी क्रिया रात्रि में ही की जानी चाहिये, क्योंकि वामाचार रात्रि में ही सम्भव है।।१३०।।

शिवग्राह्यो दिव्यः पूज्यस्त्रिमतं विष्णुसम्मतम्।
चिदात्मा निगमः प्रोक्तो विद्यात्मा आगमः स्मृतः।।१३१।।

रुद्रयामल तन्त्र शिवपूज्य है, अर्थात् वह शिव की आराधना वाला है तथा त्रिमत और विष्णुसम्मत है। अब निगम (वेद) के बारे में बताते हैं कि निगम (वेद) चिदात्मा कहा गया है, अर्थात् वेद में केवल चैतन्य तत्त्व का वर्णन है तथा आगम (तन्त्रशास्त्र) विद्या की आत्मा वाला स्मरण किया गया है।।१३१।।

अन्तरात्मा यामलश्च बाह्यात्मा वेद उच्यते।
अङ्गप्रत्यङ्गशास्त्राणि तनुरोहादिकास्त्रिधा।।१३२।।

यामल तन्त्र अन्तरात्मा वाला कहा गया है, अर्थात् यामल तन्त्र में अन्तरात्मा का वर्णन है तथा बाह्यात्मा वेद कहा जाता है, अर्थात् वेद में बाह्य तत्त्वों का वर्णन

है तथा अन्य शास्त्र उस वेद के अंग-प्रत्यंग कहे गये हैं। वे उसी तरह हैं कि जिस प्रकार किसी व्यक्ति के शरीर में बाल आदि होते हैं, उसी प्रकार ये तीन प्रकार के कहे गये हैं।।१३२।।

आत्मत्राता भवेद् धन्यो अधमा आत्मघातिनः।
मानवः कर्मभूयिष्ठोऽन्ये च भोगदेहिनः।।१३३।।

अपनी आत्मा की रक्षा करने वाला धन्य होता है। अपनी आत्मा का घात करने वाला अर्थात् आत्मघाती महानीच होता है। तथा शुभ कर्म से आत्मा की रक्षा होती है तथा अशुभ कर्म करने से अपनी आत्मा की हत्या होती है। अतः शुभ कर्म करने वाला आत्मत्राता होता है तथा अशुभ कर्म करने वाला आत्मघाती होता है। ब्रह्माण्ड में यह मानव कर्मभूयिष्ठ है, अतः इस संसार में मनुष्य ही कर्म करने वाला प्राणी है, अन्य जितने भी प्राणी हैं, वे सभी भोगी शरीर वाले हैं।।१३३।।

पशुपक्षी भवेद् धन्यः पूर्वजन्मक्रियामतः।
संसर्गः प्रथमद्वारमात्मनः त्राणकारणम्।।१३४।।

पशु-पक्षी धन्य हों, यदि वे पूर्वजन्म की क्रिया से युक्त हैं। संसर्ग आत्मा की रक्षा का प्रथम द्वार है तथा आत्मरक्षा संसर्ग (सत्संग) से ही होती है।।१३४।।

श्रद्धानर्थो निवृत्तिश्च क्रमेण परिजायते।
धर्मद्वारं द्वितीयञ्च कृतञ्च परमार्थकम्।।१३५।।

श्रद्धा अनर्थ और निवृत्ति क्रम से उत्पन्न होती है। परमार्थ कार्य धर्म का द्वार होता है तथा वह द्वितीय द्वार है।।१३५।।

स्ववर्णवर्णितधर्मः कृतधर्मः स उच्यते।
यस्मिन् मन्त्रे यदाचारः परमार्थः स एव हि।।१३६।।

अपने अपने वर्ण का जो धर्म है, वह कृतधर्म कहा जाता है। जिस मन्त्र (विचार) में जो आचार है, अर्थात् जो अच्छा आचरण है, वही परमार्थ है।।१३६।।

विशेष—कृतधर्म का प्राचीन अर्थ वर्णधर्म है; परन्तु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जो जिसका कर्म है, वही उसका धर्म है। जैसेकि एक न्यायाधीश का न्याय कर्म है, अतः वहीं उसका धर्म है। एक प्रोफेसर का मर्म पढ़ाना है, वही उसका धर्म है। अतः जो जिनका धर्म है, वे उसे ईमानदारी से पूरा करें, यही धर्म है।

कृतधर्मे चित्तशुद्धिर्विश्वासौ गुरुदैवतौ।
क्रमे वैराग्यसमता सद्गुरुमन्त्रचिन्तनम्।।१३७।।

अपने-अपने वर्ण का जो धर्म कृतधर्म कहा गया है, उस कृत धर्म में चित्त

की शुद्धि और विश्वास गुरु और देवता हैं, अर्थात् चित्त की शुद्धि गुरु है, तो विश्वास देवता है तथा जब चित्त की शुद्धि और विश्वास हो तो वैराग्य समता प्राप्त होती है, तब सद्गुरु के मन्त्र का चिन्तन होता है।।१३७।।

तृतीयस्त्रिविधद्वारो भक्तिज्ञानक्रियान्वितः।
आत्मसमर्पणं श्रेष्ठम् इष्टसाक्षात् प्रयोजनम्।।१३८।।

तन्त्र का तृतीय द्वार तीन प्रकार का है, जो भक्ति, ज्ञान और क्रिया से युक्त है। इष्टदेव के समक्ष आत्मसमर्पण सबसे श्रेष्ठ है और इष्ट का साक्षात् करना तन्त्र का प्रयोजन है।।१३८।।

व्यवहार पक्ष में इष्टदेव मनुष्य का धर्म है, उसके प्रति आत्मसमर्पण करना सर्वश्रेष्ठ है।

चतुर्थं मुक्तिद्वारञ्च निर्विकल्पं सुदुर्लभम्।
प्रथमद्वारं गुप्तञ्च एकादशसमन्वितम्।।१३९।।

चौथा द्वार मुक्ति द्वार है, जो निर्विकल्प है, अर्थात् वहाँ पर कोई भी विकल्प शेष नहीं रहता, केवल सोऽहं वृत्ति हो जाती है। आत्मतत्त्व इष्ट में विलीन हो जाता है, फिर वहाँ बीच में कोई नहीं रहता। आत्मा की रक्षा नामक प्रथम द्वार गुप्त है और वह एकादश समन्वित है, अर्थात् उसके ग्यारह भाग हैं।।१३९।।

प्रेमभावमहालाभद्वादशेन प्रवेशनम्।
ब्रह्मदीक्षा श्रेष्ठशिक्षा अभिषेकप्रवर्तना।।१४०।।
क्रमदीक्षा महाशिक्षा साधनपूर्णसेचनम्।
महामेधा कुलसुधा सिद्धिसाम्राज्यदायिका।।१४१।।

प्रेमभाव पूर्ण महालाभ नामक द्वादश द्वार से प्रथम द्वार में प्रवेश होता है तथा इस आत्मरक्षा नामक प्रथम द्वार ब्रह्मदीक्षा अर्थात् ब्रह्म को समझने की दीक्षा तथा श्रेष्ठ शिक्षा होनी चाहिये। तथा अभिषेक प्रवर्तना आवश्यक है तथा इस प्रथम द्वार में प्रवेश के लिये क्रमदीक्षा, महाशिक्षा तथा साधनपूर्ण सेचन आवश्यक है। महामेधा कुलसुधा सिद्धि साम्राज्य प्रदान करने वाली है।।१४०-१४१।।

कुलक्षेत्रे कुलतीर्थे शिक्षा कुलाभिषेचनम्।
क्रमाभ्यासं विना शास्त्रं क्रमाभ्यासं विना क्रियाम्।।१४२।।
क्रमाभ्यासं विना भक्तिं ज्ञानप्रेमफलादिकम्।
न लभते त्रिसत्यं हि बीजवृक्षं विना फलम्।।१४३।।
दाने पणे लभेत् केचित् कच्चिद् वृक्षोऽपि निष्फलम्।
पूर्वजन्मार्जिता विद्या अग्रे धावति निश्चितम्।।१४४।।

कुलक्षेत्र में और कुलतीर्थ में कुल के अभिषेचन की शिक्षा होनी चाहिये कि जब समाधिकाल में आत्म तत्त्व पद्मस्थित शिव में लीन होगा, उस समय क्या करता है, इसकी शिक्षा होना अनिवार्य है। तथा फिर इस सबका क्रम भी आवश्यक है, क्योंकि क्रम के अभ्यास के बिना शास्त्र का ज्ञान नहीं होता तथा न क्रमाभ्यास के बिना क्रिया ही प्राप्त होती है तथा क्रमाभ्यास के बिना न भक्ति सम्भव है और न ज्ञान ही हो सकता है। क्रमाभ्यास के बिना न किसी के प्रति प्रेम जागृत हो सकता है, क्योंकि अचानक किसी से प्रेम सर्वथा असम्भव है, क्रमशः अभ्यास कर धीरे-धीरे आगे बढ़ने से ही प्रेम जाग्रत होता है तथा क्रमशः अभ्यास के बिना फल की प्राप्ति भी नहीं होती। इस प्रकार ये क्रमाभ्यास के बिना ये तीनों बीज, वृक्ष और फल कदापि प्राप्त नहीं हो सकते। यह तो सामान्य बात है कि बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है तथा वृक्ष पर फल आता है। अतः क्रमाभ्यास ही सबका मूल कारण है। यहाँ यही ज्ञेय है कि केवल अभ्यास ही आवश्यक नहीं, उसके मूल में क्रम भी होना नितान्त अपेक्षित है, अतः क्रमशः अभ्यास प्रत्येक साफल्य के लिये अनिवार्य है। यदि कोई व्यक्ति दान में अथवा पण (व्यवहार) में धन-दौलत आदि से खरीद कर कुछ फल पा भी लेते हैं तो वह फल उनका स्थिर नहीं होता, अर्थात् उस प्राप्ति रूपी वृक्ष पर फल नहीं आता, वह वृक्ष फलता नहीं है, जैसे कि कोई-कोई वृक्ष फलहीन होता है, उसी तरह उस दान और खरीद वाले की स्थिति है। अतः प्रत्येक कार्य की सफलता के लिये क्रमशः अभ्यास की अनिवार्यता है तथा यहाँ इस श्लोक में तो उठने वाले इस प्रश्न का भी समाधान है कि यदि जीवन भर क्रमाभ्यास करने पर फल नहीं मिला तो फिर ऐसे क्रमाभ्यास से क्या लाभ तथा कहीं कहीं ऐसा होता भी है कि क्रमाभ्यास के बिना भी फल प्राप्त नहीं हो पाता, तब कहते हैं कि पूर्वजन्म में अर्जित विद्या आगे निश्चित ही दौड़ती है। तब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि पूर्व और परजन्म किसने देखा है, होता भी है, या नहीं। तब मेरी दृष्टि में इसका उत्तर है कि पुत्र ही पिता का पुनर्जन्म होता है। तब यदि क्रमाभ्यास करते-करते पिता को सफलता नहीं मिली तो उसके पुत्र को अवश्य मिलती है, उसके उदाहरण अनेकों हैं, जैसे मेरे गाँव में आयुर्वेद की दवा पीसने वालों के पुत्र आज आयुर्वेदिक फर्में चला कर करोड़ों के स्वामी बने हैं। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि क्रमशः अभ्यास अवश्य साफल्य की कुंजी है।।१४२-१४४।।

भविष्यजन्म पूर्वस्थितजन्म न संशयः।
अवश्यं क्रिया पूर्णे हि फलप्राप्तिप्रयोजकम्।।१४५।।

भक्तिज्ञानक्रियायोगे न फलवञ्चनं भवेत्।
स्थितो भूत-भविष्यद्वेत्ता सद्गुरुर्निश्चितम्॥१४६॥
अधिकारो गुरुदत्तो असतस्तद्विपर्ययः॥१४७॥

॥इति सर्वोत्तमे रहस्यषडाम्नायतन्त्रे निगमसन्दर्भे प्रथमः पटलः॥

❖ ❖ ❖

आगे वाले श्लोक में तो और भी अधिक स्पष्ट कर देते हैं कि आगे भी जन्म होना तथा पहले जन्म होना निश्चित है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अर्थात् यहाँ लेखक पूर्व और परजन्म की निश्चितता मान रहा है तथा तदनुसार वह कहता है कि क्रमाभ्यास द्वारा क्रिया के पूर्ण होने पर अवश्य ही फल की प्राप्ति होती है। भले ही वह आगे होने वाले जन्म में ही हो। भक्ति, ज्ञान और क्रिया के योग में कभी फल वंचन नहीं होता, अर्थात् भक्ति, ज्ञान और क्रिया द्वारा अवश्य ही फल की प्राप्ति होती है, वह इस जन्म में हो अथवा आगे वाले जन्म में हो। इस विषयक फल प्राप्ति में कभी धोखा नहीं होता है और भूत, भविष्य के जानने वाले सद्गुरु (सच्चे गुरु) भगवान् सदाशिव निश्चित ही स्थित हैं, अतः उन गुरु द्वारा दिया गया अधिकार सदैव 'असतः' न होने के विपरीत है। अर्थात् अवश्यम्भावी है।।१४५-१४७।।

।।इस प्रकार सर्वोत्तम रहस्य षडाम्नाय तन्त्र में निगम सन्दर्भ में
प्रथम पटल समाप्त हुआ।।

अथ द्वितीयः पटलः

श्री भगवान् शिव उवाच–

मन्त्रबीजं देवतानां देवता सच्चिदात्मकः।
शास्त्रगम्यस्तदन्तस्थो मन्त्रनित्यः कथं भवेत्॥१॥

भगवान् शंकर ने पार्वती जी से पूछा कि देवताओं का मन्त्रबीज क्या है? और सत् चित् आत्मक देवता कौन है? तथा कौन शास्त्र द्वारा ज्ञेय है तथा उसके अन्त में कौन स्थित है? तथा मन्त्रनित्य कैसे होता है?।।१।।

सच्छब्दवाचको ब्रह्म तथैव गुरुरीश्वरी।
त्रितापहारकः को वा अनर्थो ह्यशुभप्रदः॥२॥

तथा सत् शब्द वाचक ब्रह्म कौन है, उसी प्रकार गुरु कौन हैं और ईश्वरी कौन है। अथवा आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक, दैहिक, दैविक और भौतिक तापों (दुःखों) का हरण करने वाला कौन है? अथवा अनर्थ और अशुभ फल प्रदान करने वाला कौन है, अर्थात् क्या कार्य है।।२।।

को भेदो गुरौ देवे तु तथा मन्त्रे परमात्मनि।
यतस्त्वं संशयच्छेत्ता वद सम्प्रति मां प्रति॥३॥

आगे भगवान् शिव पूंछते हैं कि हे पार्वति! गुरु और देव में कौन–सा भेद है तथा मन्त्र और परमात्मा में क्या भेद है? क्योंकि आप संशय को नष्ट करने वाली हैं, अब इन उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर मुझे बताइये।।३।।

श्री भगवत्युवाच–

सम्पद्धि गुरुपादाब्जं चिन्तामणिर्मनीषिणाम्।
मननं विश्वविज्ञानं त्रासदुःखसमाकुलम्॥४॥

श्री भगवती पार्वती बोलीं कि गुरु के चरणकमल ही सबसे बड़ी सम्पत्ति हैं। वे मनीषी (विचारशील पुरुषों) के लिये चिन्तामणि हैं। मनन करना अर्थात् गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करना विश्वविज्ञान है। तथा भय समस्त दुःख का कारण है।।४।।

मन्त्रयन्त्रषडाम्नाय इष्टदो गुरुतत्त्वतः।
मन्त्रवाचकः शास्त्रं हि न मन्त्रः शास्त्रसम्भवः॥५॥

मन्त्र, यन्त्र वाला षडाम्नाय तन्त्र गुरुतत्त्व से अभीष्ट फल को प्रदान करने वाला है। शास्त्र मन्त्र का वाचक है, अर्थात् मन्त्र को बताने वाला शास्त्र है, मन्त्र शास्त्र से उत्पन्न नहीं हुआ है।।५।।

ब्रह्मबीजं मन्त्रवृक्षो ब्रह्म सकलो निष्कलः।
ब्रह्मयोनिर्विश्वयोनिर्जगद्योनिस्तृतीयकः ॥६॥
हंसयोनिः शास्त्रयोनिः पञ्चयोनिस्त्वं हि भव।

ब्रह्म बीज है और मन्त्र वृक्ष है। जिस प्रकार बीज से वृक्ष पैदा होता है, उसी प्रकार ब्रह्म से मन्त्र पैदा हुआ तथा वह ब्रह्म सभी कलाओं वाला है, अर्थात् उस ब्रह्म में सभी कलायें निहित हैं। वह सकल है, परन्तु सकल होते हुए भी वह निष्कल है, अर्थात् वह निराकार है। उसका कोई आकार नहीं, परन्तु निराकार उस ब्रह्म में समस्त कलायें निहित हैं, अर्थात् समस्त कलायें उसकी कृपा से ही प्राप्त हो सकती हैं। ब्रह्मयोनि, विश्वयोनि तथा तीसरी जगत् योनि है, फिर हंसयोनि और शास्त्रयोनि, इस प्रकार ये पाँच योनियाँ हैं।।६।।

अनादिसृष्टिर्नित्यश्च बीजवृक्षः परस्परः॥७॥
जीवात्मनः सूक्ष्मनित्यः शब्दबीजमयोनिजः।
प्रकाशो वृक्षरूपश्च गुप्तो बीजे नपुंसकः॥८॥

बीज और वृक्ष परस्पर अनादि सृष्टि और नित्य है, अर्थात् वृक्ष का कारण बीज अनादि है। उसकी सृष्टि होती रहती है तथा वह सृष्टि भी नित्य होती है। अर्थात् इस सकल प्रपंच का कारण अनादि है तथा उसकी सृष्टि होती है तथा वह नित्य होती रहती है। जीवात्मा सूक्ष्म और नित्य है, शब्द बीज है तथा इस जीवात्मा का कोई उत्पत्ति स्थान नहीं, अर्थात् वह किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है। उस जीवात्मा बीज का वृक्षरूप में प्रकाश है। वह बीज वृक्ष में नपुंसक रूप में छिपा हुआ है।।७-८।।

वृक्षोऽपि जायते बीजं वृक्षो द्विविधरूपकम्।
नित्यो वृक्षः कालीकालो गुरुश्चिद्घनविग्रहः॥९॥
नित्यः शिवो नित्यो जीवो मायागुणसमन्वितः।
सत्ये विद्यागतः शिवो रजस्तमे चराचरः॥१०॥

वृक्ष भी बीज के रूप में पैदा होता है अर्थात् वृक्ष से ही बीज बनता है तथा वृक्ष के दो प्रकार होते हैं। वृक्ष नित्य है, शिव नित्य है, जीव नित्य है, परन्तु जीव माया के गुणों से समन्वित है। माया का अर्थ है प्रकृति, अतः जीव जिसे पुरुष कहा गया है, वह प्रकृति के सत्त्व, रज और तम गुणों से युक्त है। सत्त्वगुण में विद्यागत शिव का वास है तथा रज और तम में चराचर प्रपंच है।।९-१०।।

जीवोऽपि शुद्धसत्त्वेन नित्यशिवत्वमाप्नुयात्।
वृक्षमूलं यथा बीजं बीजमूलं हि पादपः॥११॥

मन्त्रमूलं कल्पवृक्षः श्रीगुरुः परमेश्वरः।
मन्त्रबीजे भवेद् वृक्षश्चतुर्वर्गफलप्रदः॥
(देवता पुरुषार्थदा) द्विपाठः॥१२॥

जीव भी शुद्ध सत्त्व के माध्यम से नित्य शिवत्व को प्राप्त करे। वृक्ष के मूल में जिस प्रकार बीज होता है, अर्थात् जिस प्रकार वृक्ष का कारण बीज है, उसी प्रकार बीज का मूल वृक्ष है। क्योंकि बीज भी तो वृक्ष से ही पैदा हुआ है। इसी प्रकार का कल्पवृक्ष का मूल मन्त्र है। अर्थात् मन्त्र रूपी बीज से समस्त कामनाओं को देने वाले कल्पवृक्ष की उत्पत्ति होती है। अतः मन्त्ररूपी वृक्ष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों वर्गों के फल को प्रदान करने वाला है॥११-१२॥

विद्यादः सद्गुरुर्देवो यशोऽर्थी यशःप्रापकः।
अर्थार्थी ज्ञानहीनेन ज्ञानवृत्त्यपहारकः॥१३॥

विद्या देने वाला सच्चा गुरु होता है, वही देवता है, यशोऽर्थी है। यश को प्राप्त करने वाला है। अर्थार्थी है तथा ज्ञान से हीन होने, ज्ञान की वृत्ति का अपहारक है॥१३॥

दीक्षागुरुर्महाकालः कालिका परमेश्वरी।
माता पिता शिक्षागुरुस्तदङ्गं बहुधा स्मृताः॥१४॥

दीक्षा गुरु महाकाल (शिव) है, अर्थात् जो तन्त्र का अभ्यास कराने वाला गुरु है, वह महाकाल (शिव) है तथा परमेश्वरी कालिका है। माता-पिता शिक्षा गुरु हैं। इस प्रकार गुरु के अनेकों अंग स्मरण किये गये हैं॥१४॥

गुरौ मन्त्रे तथा देवे एकात्मा दृढनिश्चयः।
ऐक्यज्ञाने भवेत्सिद्धो न द्वितीयः कदाचन॥१५॥

गुरु के प्रति, मन्त्र के प्रति तथा देव के प्रति एक आत्मा का दृढ़ निश्चय करना चाहिये। अर्थात् गुरु (शिव) परंब्रह्म में, मन्त्र में और देव की आराधना में एक आत्मभाव होना चाहिये। यहाँ यह भी कहा जाता है कि साधना काल में गुरु मन्त्र और इष्टदेव के प्रति एकात्म भाव रखना चाहिये। इन तीनों में एकता का भाव रखने पर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अर्थात् सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता॥१५॥

विमर्श—कुलार्णन तंत्र में गुरु के लक्षण इस बताये हैं—

शुद्धवेषधारी, मनोहर, सर्वलक्षण, सम्पन्न, सर्वाङ्गपूर्ण सभी आगमों के तत्त्वार्थ के ज्ञाता, सभी मन्त्रों के विधान के ज्ञाता, लोक को सम्मोहित करने वाले,

देवस्वरूप, प्रियदर्शन, सुमुख, सुलभ, स्वच्छ, भ्रम, संशयनाशक, इङ्गित और आकार के प्राज्ञ, ऊहापोह के विशेषज्ञ, अन्तर्मुखी होते हुये भी बहिर्दृष्टि रखने वाले सर्वज्ञ, देशकाल के ज्ञाता, आज्ञासिद्ध, त्रिकालज्ञ, निग्रह–अनुग्रह में समर्थ, बेधड़क, बोधक, शान्त, सभी जीवों पर दया करने वाले, जितेन्द्रिय, षड् वर्गों को जय करने में समर्थ, व्यक्ति को गुरु बनाना चाहिये।

अग्रगण्य, गम्भीर, पात्र–अपात्र के विशेषज्ञ, शिव एवं विष्णु के समान, साधु, पशुदर्शन के दोष बताने वाले, निर्मल, नित्यसन्तुष्ट, स्वतन्त्र, मन्त्रशक्तिमान्, भक्तवत्सल, धीर, कृपालु, प्रसन्नमुख, भक्तप्रिय, सब शास्त्रों के ज्ञाता, शुभ, शिष्ट, अपने इष्टदेव और गुरुओं, ज्येष्ठों, वनिताओं के पूजन में उत्सुक रहने वाले व्यक्ति को गुरु बनाना चाहिये।

नित्य नैमित्तिक, काम्य कर्मों में तत्पर रहने वाले, राग, द्वेष, भय, क्लेश, दम्भ, अहंकार से रहित, अपनी विद्या के अनुष्ठान में लगे हुये, तपोधर्म का प्रकाश करने वाले, यथाप्राप्त से सन्तुष्ट, गुण, दोष के विवेचक, स्त्री–धनादि में अनासक्त, दुःसङ्ग, व्यसनादि से रहित, सर्वाहंभाव से युक्त, निर्द्वन्द्व, व्रतपरायण, अलोलुप, अहिंसक, विद्वान्, धन विद्यादि द्वारा मन्त्र–यन्त्र तन्त्रादि को न बेचने वाले, निःसङ्ग, निर्विकल्प, अर्थ निर्णायक, अति धार्मिक, निन्दास्तुति में समभाव रखने वाले, निरपेक्ष, नियम निर्देश करने वाले इत्यादि–हे प्रिये! इस प्रकार के लक्षण से युक्त श्रीगुरु कहे गये हैं।

दीक्षागुरुर्ममन्त्रदाता मन्त्रश्च परमगुरुः।
परापरगुरुर्विद्या कुलकुण्डलिनी परा॥१६॥

किसी भी साधना के अभ्यास को कराने वाला (दीक्षागुरु) मन्त्र को देने वाला होता है। अर्थात् गुरु ही मन्त्र देता है तथा मन्त्र परम गुरु है। तथा गुरु की विद्या परा अपर है। तथा कुलकुण्डलिनी परा है।।१६।।

विशेष–कुलकुण्डलिनी को जानने से पूर्व मूलाधार को जानना होगा। मूलानामाधारः = मूलाधारः। इस शरीर में गुह्य (मलद्वार) और लिङ्ग के मध्य में दो अंगुल चौड़ाई में जो स्थान है, वह शरीर की समस्त नाड़ियों का स्थान है। यहाँ व्, श्, ष्, स् अक्षर सहित स्वर्ण वर्ण का चार पत्रों वाला कमल है, उसके मध्य में इच्छा ज्ञान क्रिया रूपी त्रिकोण है, उसके मध्य में करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाला स्वयम्भू लिङ्ग है। यहाँ पर पृथ्वी है। ऐसा तन्त्रसार में कहा गया है। इस पृथ्वी तत्त्व मूलाधार में कुण्डली का आकार बनाकर त्रिवली के आकार से स्वयम्भू लिङ्ग को

घेर कर जो स्थित है, वह कुलकुण्डलिनी है। अतः मूलाधार पद्म में स्थित शिवशक्ति विशेष ही कुलकुण्डलिनी है।

सकलो निष्कलो ब्रह्म इष्टानिष्टः प्रचोदितः।
वह्निवच्चित् परं ब्रह्म गुरुश्चिद्वह्निर्नान्यथा॥१७॥

ब्रह्म कलाओं वाला है, अर्थात् उस ब्रह्म में ६४ कलाएँ विद्यमान हैं। उसके बाद भी वह निष्कल है। अर्थात् उसमें सभी कलायें हैं, परन्तु वह निराकार है। वह ब्रह्म ही इष्ट और अनिष्ट को प्रेरित करता है, अर्थात् प्राणियों को इष्ट और अनिष्ट फल को प्रदान करने वाला वह ब्रह्म ही है। यह परं ब्रह्म अग्नि के समान चित् शक्ति से सम्पन्न है तथा गुरु साक्षात् चित् शक्ति सम्पन्न अग्नि है॥१७॥

काष्ठमध्ये यथा वह्निः शिष्यमध्ये तथेश्वरी।
स्नेहवर्तिर्दीपधारा भस्माच्छादितोऽनलः॥१८॥
संस्थितोऽपि तमोभूतो विना संयोगकारणम्।
गुरुः प्रकाशते दीपं वह्निप्रकाशपूर्वकम्॥१९॥

जिस प्रकार काष्ठ (लकड़ी) के मध्य अग्नि होती है, उसी प्रकार शिष्य के मध्य ईश्वरी (भगवती) निवास करती है। तेल से भीगी हुई बत्ती से दीपक की धार बहती है, अर्थात् दीपक जलता है तथा भस्म (राख) से आच्छादित होते हुए भी अग्नि बिना मिले हुए ही अन्धकार को दूर कर प्रकाश करता है, उसी प्रकार गुरु भी शिष्य के हृदय में ज्ञान का प्रकाश करता है॥१८-१९॥

स्वप्रकाशः परं ब्रह्म तथा सद्गुरुरीश्वरी।
सकलः सकलखण्डः पिण्डब्रह्माण्डसंहितः॥२०॥

वह परं ब्रह्म स्वप्रकाश स्वरूप है, उसी प्रकार सद्गुरु (शिव) एवं ईश्वरी (भगवती) भी स्वयं प्रकाशित है। तथा यह समस्त ब्रह्माण्ड पिण्ड समस्त कलाओं वाला और सब खण्डों वाला स्वयं प्रकाशित है॥२०॥

अतोऽस्यामग्निपुञ्जः स्यात् तत्त्वतो ब्राह्मणो गुरुः।
शुद्धचित्तो भवेच्छिष्यो यदा विश्वासभक्तिमान्॥२१॥

अतः इस सकल ब्रह्माण्ड पिण्ड में तत्त्व रूप ब्राह्मण गुरु अग्नि का पुञ्ज है। तथा जब शिष्य विश्वास और भक्ति वाला होता है, तब वह शुद्ध चित्त होता है॥२१॥

नीरसं तरुवत्तूर्णम् अवनी पावनी भवेत्।
अग्निपुञ्जःप्रवेशेन भूरिसरससंस्थिते॥२२॥

क्रमे नीरसं सम्प्राप्य अनलस्तु प्रदीप्यते।
प्रारब्धजनितो देहः सरसो रसवर्जितः॥२३॥

नीरस (जलविहीन) वृक्ष के तिनकों में पृथ्वी पवित्र होती है। अग्निपुंज के प्रवेश से पुनः जलयुक्त काष्ठ में क्रम से काष्ठ के जल को सुखा कर अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार पूर्व जन्म से उत्पन्न शरीर जो सरस है, वह रसरहित हो जाता है।।२२–२३।।

जीवन्मुक्तो भवेद् वह्निर्विदेहे भस्म भूयते।
सगुणः संस्थिते काष्ठे निर्गुणो वह्निमण्डले॥२४॥
बहुभाग्ये महाभागे प्राप्यते मण्डलान्तरम्।
वाडवानलखण्डश्च विस्फुलिङ्गो ह्यनन्तकः॥२५॥

जब अग्नि जलती रहती है, तब तक वह अग्नि होती है, अर्थात् अग्नि कही जाती है। अग्नि के न रहने पर वह भस्म है। अतः जब तक अग्नि काष्ठ में है, तब तक वह सगुण है तथा जब काष्ठ से अलग हो जाती है, तब वह वह्नि मण्डल काष्ठ में निर्गुण रूप में स्थित है। उसके बाद बहुत प्रकार के भागों में विभक्त होकर महाभाग में दूसरे–दूसरे मण्डलों में प्राप्त हो जाती है और यहाँ तक कि जल में भी वह वडवानल के रूप में समुद्र में स्थित रहती है तथा प्रकट भी होती है तथा विशेष चिनगारियों के रूप में विद्युत् बन कर अनन्त काल तक प्रकट होती रहती है।।२४–२५।।

दशकलात्मना पूर्णा द्वादशाकाशमण्डले।
कलापूर्णः कला चांसः अण्वंशश्चराचरे॥२६॥

उसके बाद यह अग्नि अपनी दश कलाओं द्वारा पूर्ण हो जाती है और द्वादश आकाश मण्डल में कहीं कलापूर्ण रूप से तथा कहीं अंश रूप से सूक्ष्म अणु के रूप में चर और अचर अर्थात् गतिशील तथा जड़ पदार्थों में व्याप्त रहती है।।२६।।

ब्रह्मविद् ब्राह्मणः पूर्णो वह्निमण्डलदेशिकः।
आशुक्रमे चरेद् भस्म सरसो नीरसस्तरुः॥२७॥

ब्रह्म को जानने वाला पूर्ण ब्राह्मण होता है। वह ही वह्निमण्डल देशिक अर्थात् याज्ञिक होता है, यज्ञ कराने का अधिकारी होता है। शीघ्रता के क्रम में सरस तरु भी भस्म होकर नीरस हो जाता है।।२७।।

किञ्चित्तत्त्वज्ञोऽर्थार्थी ह्यज्ञो वित्तापहारकः।
दीक्षाकाले महाकालप्रवेशो विद्युताकृतिः॥२८॥

कुछ तत्त्व को जानने वाला अर्थात् कम तत्त्व को जानने वाला अज्ञानी होता है और अर्थ (धन) को चाहने वाला अर्थ का अपहारक अर्थात् धन चुराने वाला होता है। दीक्षा के समय में विद्युत् की आकृति रूप में महाकाल (शिव) का प्रवेश होता है।।२८।।

न दहने भवेत् क्षमोऽनात्मज्ञो जीवाकृतिः।
प्रज्ञावान् लभते ज्ञानं वज्राग्निर्दाहनं यथा।।२९।।

आत्मा का ज्ञान न रखने वाला जीव की आकृति वाला दहन में समर्थ नहीं होता। जो प्रज्ञावान् अर्थात् बुद्धि वाला होता है, वही ज्ञान प्राप्त करता है, जैसे कि बिजली की आग क्षण में सब कुछ जला देती है।।२९।।

उपदेशक्रमो नित्यः शिष्यप्राप्ते सफलता।
विस्फुलिङ्गे भवेत् पुञ्जस्तूलराशौ यथानलः।।३०।।

नित्य उपदेश का क्रम शिष्य को प्राप्त होने पर शिष्य को सफलता प्रदान करता है, जैसे कि आग की एक चिनगारी घास-फूस के ढेर को क्षण भर में जला देती है।।३०।।

सकलं परमं ब्रह्म बृहदनलमण्डलम्।
निष्कलं सूक्ष्मतत्त्वञ्च काष्ठमध्ये यथानलः।।
(अस्तिमात्रं परात्मनः)।।३१।।

ये समस्त आकाश में ही क्या ब्रह्माण्ड में फैला हुआ अग्नि मण्डल ही समस्त परम ब्रह्म है। जैसे कि काष्ठ के मध्य में अग्नि निष्कल (कलाओं से रहित) अर्थात् दिखाई न देता हुआ निष्क्रिय रूप में तथा सूक्ष्म तत्त्व रूप में स्थित है। उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड में ब्रह्म निष्कल तथा सूक्ष्म तत्त्व के रूप में स्थित है।।३१।।

सर्वव्यापि पूर्णमेकं स्थूलसूक्ष्मचिदात्मकम्।
आत्मा सूक्ष्मो बृहद् ब्रह्म चिद्घनः परमेश्वरी।।३२।।

वह ब्रह्म सर्वव्यापक है, पूर्ण है, एक है तथा स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार का है तथा चिदात्मक है अर्थात् चैतन्य स्वरूप है। यह आत्मा जिसे जीव कहा गया है, वह सूक्ष्म है तथा ब्रह्म वृहद् है, अर्थात् आत्मा उस बृहद् ब्रह्म का एक सूक्ष्म अंश है। तथा दोनों ही चैतन्य रूप हैं। यहाँ ब्रह्म को स्थूल और सूक्ष्म दोनों इसलिये कहा गया है कि यह जो दृश्यमान स्थूल (ठोस पदार्थों) के रूप में संसार है, वह सब भी ब्रह्म ही है। तथा उसमें जो गतिशील तत्त्व है, जो दिखाई नहीं देता, वह भी ब्रह्म का सूक्ष्म रूप है। अतः आत्मा सूक्ष्म है, ब्रह्म बृहद् है तथा परमेश्वरी (प्रकृति) चैतन्यरूप तथा ठोस है।।३२।।

सूक्ष्मप्रकाशकः स्थूलः सच्चिदानन्दविग्रहः।
पदे यन्त्रं तनुर्भानुर्ब्रह्म दिवा निशाकरः॥३३॥

सत् चित् और आनन्द स्वरूप ब्रह्म का शरीर सूक्ष्म प्रकाशक एवं स्थूल है। उनके पद में यन्त्र है, उनका शरीर सूर्य है, जो दिन और रात्रि करने वाला है॥३३॥

चिदात्मकः परं योगश्चैतन्यः .कुण्डली मुदा।
वृक्षं प्रकाशते बीजं बीजं वृक्षः प्रकाशते॥३४॥

योग परं चैतन्यात्मक है, अर्थात् योग से अत्यन्त चेतनता (जागरुकता) प्राप्त होती है तथा कुण्डली चैतन्य स्वरूप है, अर्थात् जब कुण्डली जागृत हो जाती है, तब पूर्ण जागरुकता आ जाती है और वह कुण्डली अपार आनन्द प्रदान करती है, क्योंकि बीज वृक्ष को प्रकाशित करता है और वृक्ष बीज को प्रकाशित करता है।

विशेष–अब यहाँ कुण्डली के बारे में जानना आवश्यक है। तन्त्रसार में कहा गया है कि मूलाधार निवासिनी कुण्डली का ध्यान करना चाहिये, अतः कुण्डली का निवास मूलाधार में है तथा मूलाधार लिङ्ग और गुदा के बीच का स्थान है। वह कुण्डली ही महादेवी है, जो वह करोड़ों बिजलियों की चमक से युक्त स्वयम्भू के लिङ्ग पर बैठी हुई हैं। वहाँ पर उन महादेवी को उठा कर साधक दृढ़ आसन लगाकर प्राण मन्त्र से सिद्ध करे तथा सम्मोहन तन्त्र और हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि कुण्डलिनी जहाँ है, उसे त्रिकोण समझना चाहिये। वही मनोहर शक्तिपीठ है, उसकी गुहा में कामवायु जीवरूप में अत्यन्त चञ्चल है। वहाँ पर नीचे को मुख किये हुए लिङ्ग स्वयम्भू द्वारा चलाया जा रहा है। वहीं नीवारशूक के समान पतली कमर वाली परदेवता कुण्डली स्थित है। जो देवी शङ्ख के समान श्वेत वर्ण वाली आधी त्रिवली से युक्त अपने मुख से ब्रह्म के मुख को ढँक कर स्थित है तथा उसी के द्वारा प्रभु संवेष्टित हैं। तथा वहीं पर द्वारपाल के रूप में डाकिनी स्थित है। जो साधक यहाँ रमण करता है, वह दिव्य है, देवता है, मनुष्य नहीं है। हठयोगदीपिका॥३४॥

तथैव गुरुदेवश्च मन्त्रराजो न चान्यथा।
स्थूलः सूक्ष्मस्तथा द्योतिर्न स्वतन्त्रः कदाचन॥३५॥

अब पूर्व प्रसंग के साथ कहते हैं कि जिस प्रकार वृक्ष से बीज तथा बीज से वृक्ष प्रकाशित होता है, उसी प्रकार गुरुदेव से मन्त्रराज प्रकाशित होता है। मन्त्रराज से गुरुदेव प्रकाशित होते हैं। अन्य प्रकार से नहीं। स्थूल, सूक्ष्म तथा द्योति कभी स्वतन्त्र नहीं है॥३५॥

प्रेमविज्ञाने सद्ज्ञाने परा भक्तिः प्रलभ्यते।
ज्ञानी ध्यानी तथा योगी मोक्षार्थी भक्तसाधुना॥३६॥

भक्तिपूर्वक साधना करने वाले ज्ञानी, ध्यानी तथा योगी प्रेम विज्ञान में असद् ज्ञान में पराभक्ति को प्राप्त करते हैं।।३६।।

भिन्नभावो ह्यभावश्च अभिज्ञः पूर्णभावना।
फललाभो भावभेदे पञ्चमः पुरुषार्थदः॥३७॥

निम्न भाव अभाव अभिज्ञ पूर्वाभावना और फललाभ भावभेद में पञ्चम पुरुषार्थ को देने वाला है।।३७।।

गुरौ ब्रह्मे तथा मन्त्रे अभेदः सच्चिदात्मनः।
आदिनाथो महाकालः परं ब्रह्म परात्मनः॥३८॥

गुरु के प्रति, ब्रह्म के प्रति तथा मन्त्र के प्रति सच्चिदात्मा का अभेद है, अर्थात् गुरु, ब्रह्म और मन्त्र सत् चित् और आत्मा के समान हैं। महाकाल (सदाशिव) आदिनाथ हैं। वे ही परात्मा अर्थात् आत्मा से परे सनातन परं ब्रह्म है।।३८।।

स्वरूपं कालः काली च अरूपं सर्वव्यापितम्।
बिन्दुर्नादः सूक्ष्ममात्रं पुष्पवन्तप्रकाशितः॥३९॥

उनका स्वरूप काल और काली के रूप में है, अर्थात् काल और काली के रूप में उनका अपना रूप है तथा अरूप सर्वत्र व्याप्त है। अर्थात् निराकार रूप से वे सर्वत्र व्याप्त हैं। बिन्दु और नाद सूक्ष्म मात्र रूप है, जो पुष्पवन्त रूप में प्रकाशित हैं।।३९।।

गुरुपद्मे स्थितश्चन्द्रो रक्तपद्मे दिवाकरः।
दशदले स्थितो वह्निः पिण्डब्रह्माण्डसंयुतः॥४०॥

गुरु पद्म में चन्द्रमा स्थित है और रक्तपद्म में सूर्य स्थित है। दशदल कमल में वह्नि (अग्नि) स्थित है, जो समस्त ब्रह्माण्ड पिण्ड में समाहित है।।४०।।

नीलपद्मे महानीला पाटलः पीतपद्मके।
अष्टदले धूम्रवर्णे षोडशारे विचित्रकः॥४१॥

नील कमल में महानीला स्थित है तथा पीत कमल में पाटल है। आठ दल वाले धूम्रवर्ण कमल और षोडश दल कमल में विचित्रक स्थित हैं।।४१।।

द्विदलस्थो महाकालः कालीनादः कुलान्तरे।
सहस्त्रारे द्विधाकारे माधुर्यं उज्ज्वलासने॥४२॥

द्विदल कमल में महाकाल (सदाशिव) स्थित हैं। कुलान्तर में काली का

नाद है। वहाँ दो प्रकार के आकार वाले सहस्र दल कमल में उज्ज्वल आसन पर माधुर्य विराजमान है, वहाँ मधुरता ही मधुरता है।।४२।।

महावीर्यो महैश्वर्योऽपसव्यो रूपमन्तरे।
शान्तो दान्तः कुलीनश्च कुलशक्तिसमन्वितः।।४३।।
गुरुरूपे सहस्रारे दयाकरुणया युतः।
मन्त्रदाता यन्त्ररूपं चक्रं यन्त्रं यथा हरेः।।४४।।

उस उज्ज्वल आसन पर महापराक्रमी महा ऐश्वर्य, शरीर को दक्षिण में किये हुए शान्त, चित्त, इन्द्रियों पर दमन किये हुए कुलीन और दैवीय शक्ति से समन्वित गुरु रूप में सहस्र दल कमल पर दया और करुणा से युक्त मन्त्रदाता यन्त्ररूप यन्त्रचक्र है, जो हरि का है।।४३-४४।।

अभेदो यन्त्रदेवेषु तथा मन्त्रे वरेश्वरे।
सद्गुरुः सच्चिदानन्दो विग्रहो विग्रहान्तरे।।४५।।

वहाँ हरि के चक्र यन्त्र और देव में कोई भेद नहीं है तथा वरेश्वर मन्त्र में भी कोई भेद नहीं है। सच्चिदानन्द परं ब्रह्म ही सद्गुरु हैं, वे ही शरीरों के मध्य शरीर हैं।।४५।।

स्थूलसूक्ष्ममहाद्योतिस्त्रिविधं रूपं निर्भरे।
वाचकः स्थूलरूपं हि वाचा सूक्ष्मबीजात्मकः।।४६।।

वे स्थूल, सूक्ष्म और महाद्योति तीन रूप में निर्भर है। वाचक के रूप में उनका स्थूल रूप है और वाणी उनका सूक्ष्म बीजात्मक रूप है।।४६।।

चिदात्मको महाद्योतिर्गुरुर्वक्त्रे प्रकाशितः।
निष्कलः सकलब्रह्म गुरुप्रकाशकारः।।४७।।

उन गुरु के मुख में चिदात्मक (चैतन्यात्मक) महाद्योति प्रकाशित हो रही है। वहाँ निष्कल और सकल ब्रह्म का गुरु प्रकाश करने वाला है, अर्थात् गुरु के मुख से निष्कल और सकल ब्रह्म प्रकाशित हो रहा है।।४७।।

पुष्पगन्धं लभेद् नासा दूरस्थं वायुयोगतः।
चिदग्निर्देहमध्ये च काष्ठमध्ये यथानलः।।४८।।

वहाँ दूरस्थ पुष्पगंध नासिका से प्राप्त हो रही है। चिदग्नि ये शरीर के मध्य स्थित है, जैसे कि काष्ठ मध्य अग्नि स्थित है।।४८।।

गुरुयोगे लभेद् ज्ञानं ज्ञानात्मा परमेश्वरः।
स्त्रोतजलगततृणं स्त्रोतवेगे गतागतम्।।४९।।

ज्ञानात्मा परमेश्वर का ज्ञान गुरु के योग से होता है, जैसे पानी में गिरा हुआ तिनका पानी के वेग से गमनागमन करता है।।४९।।

मायायोगे यथा जीवो यातायातः पुनः पुनः।
सुरायुः सद्गुरुः कच्चित् चित्कुलः कुलमन्त्रदः।।५०।।

माया के योग में जिस प्रकार जीव पुनः-पुनः आता है। अर्थात् मरता है, जन्म लेता है। अतः सद्गुरु (सदाशिव) देवों की आयु को देने वाले हैं। वे चित्कुल हैं अर्थात् परमानन्द प्रकाश प्रदान करने वाले तथा कुल[1] मन्त्र अर्थात् परमानन्द प्रकाश के मन्त्र को देने वाले हैं।।५०।।

१. कुल—मूलाधार कमल में स्थित शिवशक्ति विशेष तथा पूर्णानन्दकृत् षट्चक्र प्रकाश।

सूर्यः प्रकाश्यते सूर्यं न चान्यः प्रकाशवान् भवेत्।
स्वप्रकाशः सूर्यः सत्ये न चक्षुषि न पश्यति।।५१।।

सूर्य के प्रकाश के समान कोई अन्य सूर्य को प्रकाशित करने वाला नहीं है, अतः सत्य रूप में सूर्य स्वयं प्रकाश वाला है। आँख में सूर्य और न देखने में सूर्य है। अर्थात् आँख नहीं देखती है, सूर्य में ही प्रकाश है, आँखों में नहीं। सूर्य न हो तो आँख कुछ भी नहीं देख सकती। अतः आँखों में प्रकाश नहीं, सूर्य में प्रकाश है।।५१।।

स्वभावप्रकाशः सूर्यो अखण्डमण्डलं रविः।
खण्डनयनं भाण्डे च शरावजलवद् भवेत्।।५२।।

सूर्य स्वभाव से ही प्रकाशित है। वह समस्त आकाशमण्डल को प्रकाशित करता है। वर्तन में खण्डनयन जलपात्र के समान होता है, अर्थात् जैसे जल का पात्र जल तक सीमित रहता है, उसी प्रकार नेत्र अपने तक ही सीमित रहता है।।५२।।

संयोगे शुभयोगे च गुरुकृपाप्रसादतः।
लभते परमं ज्ञानं विज्ञानं प्रेममिलितम्।।५३।।

गुरु की कृपा के प्रसाद से संयोग होने पर और शुभ योग होने पर विशेष ज्ञान और प्रेम से मिला हुआ परम ज्ञान प्राप्त होता है।।५३।।

श्रीगुरुर्ज्ञानदाता च फलदाता परमेश्वरी।
उभयश्चिद्घनाकारः करुणासागरो गुरुः।।५४।।

श्री गुरु (सदाशिव) ज्ञान प्रदान करने वाले हैं और फल को प्रदान करने वाली परमेश्वरी (पार्वती) हैं, जिन्हें प्रकृति भी कहा जा सकता है। ये दोनों चिद्घनाकार

हैं, अर्थात् ये दोनों अत्यन्त चेतनता के आकार वाले हैं तथा गुरु (सदाशिव) करुणा के सागर हैं।।५४।।

दारुणा दारुणा मिश्रः त्रिसिन्धुर्जगदीश्वरी।
कामाचारो व्यभिचारोऽल्पायासं न सिद्धिदः।।५५।।
त्याज्यो वर्ज्योऽसत्कार्यः श्रद्धाभक्तिपरायणः।

जगदीश्वरी (त्रिपुरा) दारुण से दारुण हैं, वे तीन सिन्धुरूपा हैं। सिद्धि के मार्ग में कामाचार, व्यभिचार तथा कम प्रयास सिद्धि प्रदान करने वाला नहीं होता है। अतः श्रद्धा-भक्ति परायण साधक को कामाचार, व्यभिचार और अल्प प्रयास छोड़ देना चाहिये।।५५.५।।

सद्गुरुं लभते कच्चिद् बहुभाग्यप्रसादतः।।५६।।
स्वधर्मरक्षणे ग्राह्यो नियमो गुरुवाक्यतः।
समासनाङ्गः पञ्चाङ्गोऽनङ्गमङ्गवान् भवेत्।।५७।।
तनुजो मन्त्रदः श्रेष्ठो भुक्तिमुक्तिशुभप्रदः।
तनुज इष्टो मिष्टश्च वात्सल्यभावितः सदा।।५८।।

कोई भी व्यक्ति सद्गुरु को बड़े भाग्य के प्रसाद से प्राप्त करता है। अपने धर्म की रक्षा में गुरु के वाक्य से नियम ग्रहण करना चाहिये। सूक्ष्म अंगों वाला, पांच अंगों वाला अनङ्ग (कामदेव) अङ्गवान् होता है। कामदेव मन्त्रदाता श्रेष्ठ है तथा कामदेव ही भुक्ति, मुक्ति और शुभ प्रदान करने वाला है। कामदेव इष्ट है, मिष्ट है और सदा वात्सल्य भाव से युक्त है।।५६-५८।।

वात्सल्यो द्विविधो भावो माधुर्यैश्वर्यमिश्रितः।
शुद्धमातामयो भाव ऐश्वर्यः परमेश्वरी।।५९।।

वात्सल्य भाव दो प्रकार का है, वह माधुर्य और ऐश्वर्य से मिश्रित है। वह शुद्ध मातामय भाव है और ऐश्वर्ययुक्त है।।५९।।

तत्पतिः पितारूपेण प्रकाशः परमेश्वरः।
एतद्भावसंहितेन भावान्तरो विशिष्यते।।६०।।

उसका पति पिता के रूप में परमेश्वर है, जो प्रकाश स्वरूप है। इस प्रकार के भाव से संहित दूसरा भाव विशिष्ट होता है।।६०।।

केवले मधुरे सख्ये श्रेष्ठभावो भविष्यति।
सर्वकर्ता सर्वहर्ता सर्वज्ञः श्रीमहेश्वरः।।६१।।

केवल मधुर सख्य भाव भी श्रेष्ठ भाव होगा। महेश्वर सब कार्य करने वाले, सबके दुःखों को हरने वाले, सब कुछ जानने वाले हैं।।६१।।

दैवयोगमहाभोगवियोगादि तदिच्छतः।
वामापक्षो भवेत्सख्य ऐक्यः केन सुसिद्धये॥६२॥

दैवयोग, महाभोग और वियोग आदि उसी की इच्छा से होते हैं, भाग्य महान् से महान् भोगविलास और किसी इष्ट का विनाश अथवा अलगाव, ये सब उसी महेश्वर की इच्छा से होता है। वामा (स्त्री) के पक्ष में सख्य भाव होना चाहिये। अच्छी सिद्धि के लिये आत्मा की एकता आवश्यक है।।६२।।

मधुरं द्विविधं रूपं रससरससंयुतम्।
भक्तिप्रेमे दैवो लक्ष्यो ह्यलक्ष्यो ज्ञानमिश्रिते॥६३॥

मधुर रूप दो प्रकार का है, जो कि प्रेमरस के रस से संयुक्त होता है। भक्तिमिश्रित प्रेम में दैव लक्ष्य होता है तथा ज्ञानमिश्रित अलक्ष्य होता है।।६३।।

निर्वाणपथमाहृत्य ध्यानज्ञानविवर्जितः।
परा भक्तिः प्रेमभावः पञ्चमपुरुषर्थदः॥६४॥

निर्वाणपथ को ग्रहण करके (अर्थात् मोक्ष के मार्ग में जाकर) ध्यान और ज्ञान वर्जित पराभक्ति प्रेमभाव पञ्चम पुरुषार्थ को प्रदान करने वाला होता है। पुरुषार्थ तो चार ही होते हैं, जिसमें अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष है, अतः ध्यान से वर्जित पराभक्ति वाला प्रेमभाव तो उससे भी परे पञ्चम पुरुषार्थ को प्रदान करने वाला हुआ।।६४।।

परिपक्वो यदा ऐक्यस्तत्त्वमसि सुसिद्धिदः।
एकाकी न रमेत् कच्चिद् द्वित्त्वदैवसुयोगतः॥६५॥

जब ऐक्य भाव परिपक्व हो जाता है, तब तत् त्वम् असि 'वह तू है' ऐसा भाव पैदा हो जाता है, जो परिपक्व भाव है, जिसमें आत्मा परमात्मा की एकता होती है। तथा यह भाव अच्छी सिद्धि प्रदान करने वाला है। कोई एकाकी रमण नहीं करता है, अर्थात् अकेला व्यक्ति कभी आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता, द्वित्व दैव के सुयोग से ही रमण सम्भव है।।६५।।

ब्रह्मसायुज्यो धन्यो हि तथा सायुज्य आत्मनः।
महेशः समता ज्ञानं नास्तीति नास्तिकमतम्॥६६॥

ब्रह्म का साथ होना धन्य है तथा वह ब्रह्म से आत्मा का सायुज्य होना ही धन्य है। महेशः समानता का ज्ञान है तथा यह नास्तिक मत नहीं है।।६६।।

अतो दैवं समासाद्य प्रवर्त्यः सिद्धसाधकः।
भावाभावो महाभावो महासिद्धिप्रदायकः॥६७॥

इसलिये (दैवं) भाग्य अथवा ईश्वर को सम्यक् प्रकार से प्राप्त करके सिद्ध साधक को अपने साधन में लग जाना चाहिये। उस समय भाव, अभाव और महाभाव महासिद्धि प्रदायक होते हैं।।६७।।

एतद्भावो गुरुगम्यो न गुरुर्लभ्यते क्वचित्।
गुरुश्च द्विविधः प्रोक्तः शिक्षादीक्षाप्रभेदतः।।६८।।

यह भाव गुरु द्वारा ही सम्भव है, गुरु द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। गुरु के बिना कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता तथा गुरु दो प्रकार का कहा गया है। शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु। इस प्रकार गुरु दो प्रकार के हुए, एक पढ़ाने वाला गुरु, दूसरा दीक्षा देने वाला अर्थात् एक किसी भी विद्या को पढ़ाने वाला, दूसरा उसका प्रयोग कर बताने वाला।।६८।।

दीक्षाकाले महाकाले कालिका परमेश्वरी।
शिक्षागुरुस्तदङ्गञ्च क्रमे उपाङ्गो ह्यंशकः।।६९।।

दीक्षा के समय तथा महाकाल में कालिका परमेश्वरी शिक्षा गुरु होती है और उसका अंग हो जाती है तथा फिर वह उसका उपांग और एक अंश हो जाती है।।६९।।

गुरुपद इष्टयन्त्रं ब्रह्मयोनिः सदा भवेत्।
तत्पदं लभते भाग्ये कुलीनो दिव्यमेव च।।७०।।

गुरुपद अभीष्ट यन्त्र है, वह सदैव ब्रह्म की योनि है, अर्थात् गुरु के पद से ही ब्रह्म उत्पन्न होते हैं। उस कुलीन परमानन्द दिव्य पद को भाग्य से ही प्राप्त किया जा सकता है।।७०।।

द्विपदो दक्षवामतो दक्षो ह्यक्षो दिवाकरः।
वामश्चन्द्रः पराभक्तोऽमृतपाने सदा मृडः।।७१।।

इति रहस्यषडाम्नायनिगमसन्दर्भतन्त्रे द्वितीयः पटलः

⁂

भक्ति के दो पद हैं, एक दक्ष, दूसरा वाम। दक्ष पद दिवाकर है और वाम पद चन्द्र है तथा वाम पद पराभक्त है तथा अमृतपान करने में सदैव भगवान् शिव है।।७१।।

।।इस प्रकार सर्वोत्तम रहस्य षडाम्नाय तन्त्र में निगम सन्दर्भ में
द्वितीय पटल समाप्त हुआ।।

अथ तृतीयः पटलः

श्री भगवान् शिव उवाच–

निष्कलसकलभेदं निष्कलं सकलं कथम्।
चिदङ्गं जङ्गमाङ्गञ्च को भेदो मायिने हरे॥१॥
प्रयोजनं परं तत्त्वं सम्बन्धः को जीवेश्वरे।
निर्विकारः कथं देवि! प्रेमा भये न जायते॥२॥
स्वरूपं किं रूपं सत्यं कथय भ्रान्तिशान्तये।

श्री भगवान् शिव ने पार्वती से पूछा कि हे देवि! निष्कल और सकल जो तुमने दो भेद बताये हैं, वह निष्कल और सकल ये भेद कैसे हैं? तथा इस मायामय हरि के चिदङ्ग और जङ्गमाङ्ग दो भेद क्या हैं?

प्रयोजन परं तत्त्व है, उसका जीव और ईश्वर से क्या सम्बन्ध है, निर्विकार प्रेम कैसा है, वह भय में नहीं होता है। स्वरूप क्या रूप है। हमारी भ्रान्ति को शान्त करने के लिये सत्य को स्पष्ट करो॥१–२.५॥

श्रीभगवत्युवाच–

तत्त्वज्ञानं परं तत्त्वं चैतन्यं ज्ञानमुच्यते॥३॥
ज्ञानाज्ञानं तटस्थञ्च चैतन्यं शक्तियोगतः।
स्वरूपं लक्षणं प्रोक्तं सा शक्तिस्त्रिविधा स्मृता॥४॥

श्री भगवती ने कहा–तत्त्वज्ञान ही परं तत्त्व है तथा चेतनता ज्ञान कहा जाता है, अर्थात् किसी भी विषय के प्रति जागरुकता या जागृति ही ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान और अज्ञान दोनों तटस्थ हैं तथा चैतन्य शक्ति के योग से प्राप्त होता है, अर्थात् चेतनता शक्ति के योग से प्राप्त होती है।

जिसका स्वरूप और लक्षण कहा गया, वह शक्ति तीन प्रकार की मानी गयी है, चित् शक्ति, माया शक्ति और गुण शक्ति॥३–४॥

चिच्छक्तिः परमाराध्या मायाशक्त्यपि पूजिता।
गुणशक्तिः सृष्टिरूपा पूज्यापूज्या द्विधा मता॥५॥

चित् शक्ति परम आराध्य है, वह बहुत आराधना करने योग्य है। माया शक्ति भी पूजित है, वह भी पूजने योग्य है। तथा गुण शक्ति सृष्टिरूपा है, वह संसार की सृष्टि करती है, वह पूजक और पूज्य दोनों ही प्रकार की है॥५॥

सत्त्वगुणे भवेद् विद्या विद्या रजतमान्विता।
यथा बीजं वस्तुमात्रं मधुमिश्रेण मिष्टता॥६॥

गुणशक्ति में तीन गुण होते हैं, सत्त्व, रजस् और तमस्। सत्त्व गुण में विद्या होती है अर्थात् सत्त्वगुण से विद्या प्राप्त होती है तथा वह विद्या रजोगुण और तमोगुण दोनों से युक्त होती है, जैसे कि बीज वस्तु मात्र होता है, मधु के मिश्रण से उसमें मिष्टता आती है तथा अनेकों प्रकार के मिश्रणों से सभी वस्तुएँ अलग स्वाद वाली होती हैं। वे सत्त्वगुण वाली वस्तु रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से भिन्न-भिन्न रूपों तथा रसों में बदलती हैं।।६।।

विशेष—वीरशैवदर्शन में 'शक्ति' पर शिव का एक अटूट रूप है, जैसे चन्द्रमा से चांदनी को अलग नहीं किया जा सकता है, वैसे ही शक्ति को पर शिव से अलग नहीं किया जा सकता। सृष्टि की रचना में यह शिव की सहायता करती है। अतः इसे सब लोकों की प्रकृति तथा परशिव की सहधर्मचारिणी कहा गया है। इस तंत्र में उसके तीन रूप बताये हैं; परन्तु कहीं-कहीं इसके छः रूप बताये गये हैं। वे हैं—चिच्छक्ति, पराशक्ति, आदिशक्ति, इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति। परन्तु यहाँ षडाम्नाय तंत्र के तीन स्वरूप अधिक वैज्ञानिक हैं; क्योंकि चित्शक्ति चेतन शक्ति है, जो जीवों को चेतनता प्रदान करती है। मायाशक्ति उसे उसकी मोहनशक्ति बढ़ाकर जीवन जीने के योगय बनाती है तथा गुणशक्ति तो प्राणियों को सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी बनाती है।

तिक्तः सैन्धवमिश्रेण रसा नानाविधाः स्मृताः।
चिद्वस्तु बीजमात्रं हि परमात्माख्यरूपकम्।।७।।

तिक्त और सैन्धव (नमक) के मिश्रण से रस अनेकों प्रकार के कहे गये हैं। अतः चित् वस्तु अर्थात् चैतन्य तत्त्व (चिद् ब्रह्म) बीजमात्र है, अर्थात् कारण है तथा परमात्मा नाम से पुकारा जाता है।।७।।

पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिस्त्रिविधा बहुधा मता।
चिद्घनो ह्यच्युतानन्दः सकला परमेश्वरी।।८।।

पिण्ड रूप जो कुण्डलिनी शक्ति है, वह तीन प्रकार की अनेकों बार बतलायी गयी है। वह चिद्घन रूपा, अच्युतानन्द रूपा और सकला परमेश्वरी कही गयी है।।८।।

यथा शून्यमभावश्च रेखाशून्यप्रवाचकः।
तथा च शून्यं शून्यं हि अङ्गमुक्ते फलोदयः।।९।।

जैसे कि शून्य का अर्थ अभाव है, परन्तु रेखा में शून्य का भाव बहुत कुछ स्पष्ट करता है। किसी एक रेखा (अंक) पर शून्य अपना दशगुना भाव प्रकट कर

देता है। वैसे शून्य शून्य है, परन्तु वह अंग मुक्ति के फल को प्रदान करने वाला है॥९॥

निष्कलं शून्यमात्रं हि सकलं सकलं भवेत्।
एकमात्रं सकलं हि स्त्रीपुरुषे प्रकाशितम्॥१०॥

निष्कल शून्यमात्र है और कलाओं से युक्त को सकल कहा जाता है, अर्थात् निष्कल का अर्थ निराकार और सकल का अर्थ साकार है। सकल एकमात्र उसकी शक्ति एकल है, वह जीव का व्यष्टि रूप है, जो स्त्री और पुरुष में प्रकाशित है। भाव यही होना चाहिये कि आत्मा (जीव) के दो रूप हैं, एक निराकार दूसरा साकार। निराकार आत्मा ब्रह्म रूप है, उसका साकार रूप स्त्री-पुरुष है॥१०॥

एका काली महाकालो न द्वितीयः कथञ्चन।
पूर्णोत्तमः पूर्णतरः सर्वेश्वरो महेश्वरः॥११॥

काली और महाकाल एक है और दूसरा किसी भी प्रकार कोई नहीं है। वह महाकाल महेश्वर पूर्ण और उत्तम है, वह पूर्णतर है और सर्वेश्वर है॥११॥

महामाया गुणयोगे पूर्णविष्णुशिवादयः।
सत्त्वगुणे भवेद्देवाः रजस्तमे चराचरम्॥१२॥

महामाया जो उस महाकाल की माया है, जिसे प्रकृति कहा जाता है, उसमें गुणों का योग है। सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण का योग होने पर महामाया है तथा उस महामाया के योग में विष्णु, शिव आदि देवता पूर्ण हुए हैं। तब सत्त्वगुण होने पर देवता होते हैं तथा रजोगुण और तमोगुणों के अस्तित्व में यह समस्त चराचर जगत् है॥१२॥

चिन्मात्रं सकलाधारो बृहद्ब्रह्म सनातनम्।
सर्वव्यापी अखण्डश्च खण्डशक्तिसमागमः॥१३॥

सनातन बृहद् ब्रह्म समस्त प्रपंच का आधार है तथा वह चिन्मात्र है अर्थात् वह चैतन्य स्वरूप है। प्राणियों में जो चेतनता है, वह उसी के कारण है। वह बृहद् ब्रह्म सर्वव्यापी है, वह अखण्ड है तथा खण्डशक्ति समागम युक्त अर्थात् उसकी जो खण्ड की हुई शक्ति है, वह फिर उसी का अंश है, उसी से आयी है और उसका उसी में समागम होना है। ईश्वर अंश जीव अविनाशी का यही भाव है॥१३॥

निष्कलं परमं ब्रह्म अस्ति नास्ति गतो महान्।
अस्ति काष्ठगतो वह्निर्नास्ति किञ्चिद् अनङ्गितम्॥१४॥

निष्कल अर्थात् निराकार ब्रह्म परम ब्रह्म है, जो है अथवा नहीं, यह नहीं

कहा जा सकता, अर्थात् वह अकथनीय है। परन्तु वह गत अर्थात् सभी में गमन करता है और महान् है, जैसे कि काष्ठ में अग्नि गमन करता है, अर्थात् समाया हुआ है, जो काष्ठगत अग्नि किसी प्रकार अनङ्गित नहीं कहा जाता, अर्थात् वह उसमें अङ्गित है।।१४।।

आधेयः अस्ति चैतन्यः पिण्डस्थः परमात्मनः।
सच्चिदानन्दो विभवः सकलः परमेश्वरः।।१५।।

प्राणी शरीर में स्थित परमात्मा का चैतन्य इस पिण्ड का आधेय है। सच्चिदानन्द स्वरूप वह सबको उत्पन्न करने वाला परमेश्वर सभी कलाओं (विद्याओं) वाला है।।१५।।

विभवः प्रभवः शक्तिः सकला चित्कला परा।
गर्वमदः क्षीरोदशायी कारणशायी ईश्वरः।।१६।।

विभव (ऐश्वर्य), प्रभव (सबको पैदा करने वाली शक्ति) है। वह जब कला सहित होती है, तब चित्कला होती है। अर्थात् चेतनता से युक्त होती है। क्षीर सागर में शयन करने वाले ईश्वर गर्वमद से युक्त हैं तथा वे कारण रूप से शयन करने वाले हैं।।१६।।

मायाकलायुताः सर्वे महामायी महेश्वरः।
माया जाता गुणशक्तिः प्रतिबिम्बो मनोमयः।।१७।।

महामाया वाले महेश्वर माया की कलाओं से युक्त हैं। माया (प्रकृति) गुणशक्ति वाली होती है तथा उसका प्रतिबिम्ब मनोमय है। अर्थात् उस गुणशक्ति वाली माया का प्रतिबिम्ब मन पर पड़ता है, जिसके प्रभाव में मन तरह-तरह की कल्पनायें करता है।।१७।।

विमर्श—प्रकृति जो त्रिगुणात्मिका है, उसका प्रतिबिम्ब प्राणी के मन पर पड़ना वैज्ञानिक है। अतः प्रकृति महामाया प्राणी के मन पर अपने गुणों का प्रभाव डालती है। किसी के मन पर सह सतोगुण का प्रभाव डालती है, तब प्राणी सत्त्वस्वभाव वाला धीर, वीर, गम्भीर स्वभाव वाला होता है, जब वह अपने रजोगुण का प्रभाव डालती है, तब प्राणी भोगी, रागयुक्त स्वभाव का बनता है तथा जब किसी के मन पर तमोगुण का प्रभाव डालती है, तब व्यक्ति क्रोधी, लोभी और भ्रष्ट स्वभाव का बनता है।

स्वर्गादिगम्यः सप्तश्च ज्ञानभूमीविचारय।
वेत्ति तत्त्वस्वरूपेण सकलो निष्कलः परः।।१८।।

ये सात तत्त्व शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, बुद्धि और अहंकार स्वर्ग आदि में गम्य हैं, अर्थात् स्वर्ग आदि में गमन करते हैं। एवं पर ज्ञानभूमि है और विचारशील है। वह निष्कल और सकल परमेश्वर तत्त्व स्वरूप सब कुछ जानता है॥१८॥

धर्मे श्रेया ज्ञानकर्म (में) इन्द्रियबाह्या आन्तराः।
आधिभौती आधिदैवी तथा चाध्यात्मिका यतः॥१९॥

बाह्य और अन्तः इन्द्रियाँ धर्म और ज्ञान कर्म में श्रेय रखती हैं, अर्थात् बाह्य इन्द्रियाँ हैं। हाथ, पैर, मुख, मूत्रेन्द्रिय और गुदा जो धर्म कर्म करती हैं, अर्थात् कर्मेन्द्रियाँ तथा श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये अन्तः इन्द्रियाँ जो ज्ञानकर्म में प्रवृत्त हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के विषयों का ज्ञान कराती हैं॥१९॥

विषयभूतो वर्णश्च देवतागण एव च।
मनो बुद्धिरहङ्काराश्चित्तेन्द्रियान्तराः॥२०॥

विषयभूत और वर्ण तथा देवतागण इन सब इन्द्रियों के अलग-अलग हैं। मन, बुद्धि और अहंकार ये चित्तेन्द्रियाँ अन्तरा इन्द्रियाँ हैं। अर्थात् ये तीनों इन्द्रियाँ अन्तर्गत रहने वाली हैं, जो दिखाई नहीं देतीं॥२०॥

विषयदर्शनादीनां तेजः सूर्यादिदेवताः।
पञ्चभूतानां सत्यांशे मनाद्यन्तरेन्द्रियः॥२१॥

दर्शन आदि जो विषय हैं, उनका तेज सूर्य आदि देवता हैं, अर्थात् सूर्य के कारण देखना सम्भव है। सूर्य, चन्द्रमा आदि देवता न हों तो देखना ही असम्भव है। पंच महाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के अस्तित्व के अंश में मन, अहंकार और बुद्धि ये अन्तरिन्द्रियां ही कारण हैं। भाव यह है कि इस पंचमहाभूत निर्मित शरीर के अस्तित्व में मन, बुद्धि और अहंकार का ही महत्त्व है। इनके कारण ही इनकी पहचान है। इनके बिना ये सब जड़वत् हैं॥२१॥

समष्टिभूता रजांशे प्राणपञ्चसमुद्भवाः।
तमांशे केवला मोहरूपा परापराः॥२२॥

प्रकृति के तीनों गुणों में से रजोगुण के समष्टिभूत होने पर पाँच प्राण उत्पन्न होते हैं, अर्थात् जब इन पंच महाभूतों में तीनों गुणों के अस्तित्व में रजोगुण का उद्रेक होता है, तब यह पाँच प्राण पैदा होते हैं। ये पाँच प्राण प्राणी के शरीर रहते हैं।

इनके नाम हैं प्राण[१], अपान, समान, उदान और व्यान। इनमें प्राण का हृदय में वास है, अपान गुदा में रहता है, समान नाभि में स्थित है, उदान कण्ठदेश में स्थित है, जो डकार के रूप में बाहर आता है और व्यान समस्त शरीर में गमन करता है तथा तमोगुण के उद्रेक में केवल मोहरूपा पर और अपर जड़ तत्त्व की स्थिति है।।२२।।

प्रत्येकभूतसत्त्वांशे विषयश्रवणादिकः।
प्रत्येक भूतरजांशे कर्मेन्द्रियादि पञ्च च।।२३।।

प्रत्येक भूत में सत्त्वगुण का अंश होने पर सुनना आदि विषय उत्पन्न होते हैं, अर्थात् जब आकाश भूत में सत्त्व का उद्रेक होता है, तब कान द्वारा सुनने की शक्ति, वायु भूत में होने पर त्वक् में स्पर्श शक्ति, अग्नि में सत्त्व प्राबल्य से आँख में देखने की शक्ति, जल में सत्त्व के उद्रेक से जिह्वा में रसनशक्ति तथा पृथ्वी में सत्त्व के उद्रेक से नासिका में घ्राण शक्ति का प्रादुर्भाव होता है तथा प्रत्येक भूत में रजोगुण के उद्रेक से कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति हुई। जैसे कि हाथों में कार्य करने की, पैरों में चलने की, मुख में खाने की, मूत्रेन्द्रिय में मूत्र त्याग तथा गुदा में मल त्याग की शक्ति पैदा हुई।।२३।।

तमांशे स्वभावकामक्रोधादि पञ्च पञ्च च।
चतुर्विधा अण्डजादिर्जीवजन्तुचराचराः।।२४।।
पञ्चीकृतो महाभूतः पञ्चकोशसमन्वितः।
कारणमानन्दमयं लिङ्गं व्याप्य तृतीयकम्।।२५।।

इन्हीं पंच महाभूतों में जब तमोगुण का उद्रेक हुआ, तब स्वभावतः काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार इन पाँच का प्रादुर्भाव हुआ। चार प्रकार के इस पृथ्वी पर जीव-जन्तु चराचर प्राणी हैं, वे हैं–१. अण्डज–अण्डे से उत्पन्न होने वाले पक्षी, सर्प, मगरमच्छ, मछली आदि। २. जरायुज–जार से पैदा होने वाले मनुष्य, पशु आदि जलज। ३. स्वेदज (पसीने से पैदा होने वाले डींगर आदि उद्भिज–मीन फोड़कर निकलने वाले वृक्ष, अन्न, वनस्पतियाँ आदि।

ये पाँच महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पंचीकृत[२] हैं

---

[१] १. प्राणोऽपानः समानच्चोदानव्यानौ च वायवः। अमरकोश, १/१/६७
हृदि प्राणः, गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः। उदानः कण्ठदेशे च व्यानः सर्वशरीरणः।।

[२] २.. पंचीकृत प्रक्रिया–सांख्य के अनुसार इस प्रकार है। सभी महाभूत अपने गुण के आधे में हैं तथा आधे में अन्य गुण हैं, जैसे कि आकाश में १/२ शब्द गुण है और १/८ स्पर्श, १/८ रूप, १/८ रस और १/८ गंध है। वायु में १/२ स्पर्श, १/८ शब्द, १/८ रूप, १/८ रस और १/८ गंध। अग्नि में १/२ रूप, १/८ शब्द, १/८ स्पर्श, १/८ रस और १/८ गंध। जल में १/२ रस, १/८ शब्द, १/८ स्पर्श, १/८ रूप और १/८ गंध और पृथ्वी में १/२ गंध, १/८ शब्द, १/८ स्पर्श, १/८ रूप, १/८ रस। इस प्रकार यह पंचीकरण प्रक्रिया है।

तथा पञ्च कोष से समन्वित हैं, वे हैं–१. अन्नमय कोष, २. प्राणमय कोष, ३. मनोमय कोष, ४. विज्ञानमय कोष, ५. आनन्दमय कोष। सबका कारण आन्दमय कोष लिङ्ग प्राणमय कोष में व्याप्त है। इसे ही आत्मा कहा जाता है, क्योंकि यह अहंकारात्मक और अविद्यात्मक कोष है।।२५।।

मनप्राणादिविज्ञानम् अन्नजलादिसम्भवम्।
जाग्रते पञ्चविंशत्या सत्त्वं तेन प्रकाशितम्।।२६।।

मनोमय कोष प्राणमय कोष और विज्ञानमय कोष ये तीनों ही अन्न और जल आदि से उत्पन्नहुए हैं, क्योंकि अन्नमय कोष वनस्पतियों से प्राणों की उत्पत्ति हुई है, क्योंकि वनस्पति में भी प्राण है, फिर मनोमय का विकास हुआ, जिसमें पशु–पक्षी आदि हैं। जिनमें मन तो होता है, परन्तु बुद्धि का विकास नहीं है। उसके बाद बुद्धि रखने वाले मनुष्य हैं, जिसे विज्ञानमय कोष कहा जाता है। उसके बाद आनन्दमय कोष का विकास, जिनमें देवगण आते हैं। वैसे मेरे विचार से मनुष्यों में ही जो विशेष बुद्धिमान् व्यक्ति हैं, वे ही देव हैं तथा वे ही आनन्दमय कोष के प्राणी हैं। जीव में जागृत अवस्था में पच्चीस तत्त्व होते हैं। वे हैं–एक पुरुष जिसे आत्मा कहा जाता है तथा चौबीस प्रकृति के तत्त्व हैं। वे हैं–१. प्रकृति, २. महत्तत्त्व, ३. अहंकार, ४. शब्द, ५. स्पर्श, ६. रूप, ७. रस, ८. गंध, ९. आकाश, १०. वायु, ११. अग्नि, १२. जल, १३. पृथ्वी, १४. मन, १५. श्रोत्र, १६. त्वक्, १७. चक्षु, १८. जिह्वा, १९. घ्राण, २०. हस्त, २१. पाद, २२. मुख, २३. लिङ्ग, २४. गुदा।

इस प्रकार ये पुरुष और प्रकृति के मिलाकर २५ तत्त्व हुए। ये जीव की जागृत अवस्था अर्थात् जीवित प्राणी के तत्त्व हैं।।२६।।

स्वप्ने ऊनशिंतिश्च सुषुप्ते कारणे स्थिता।
स्थूला सूक्ष्मा द्विधा स्थूले लिङ्गे सूक्ष्मभोगात्मका।।२७।।

स्वप्न में मात्र १९ तत्त्व स्थित रहते हैं। उस समय आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्त्व नहीं रहते, अर्थात् सुषुप्ति अवस्था में प्राणी स्वप्न में सब कुछ करता, देखता, सुनता, खाता, पीता, उठता, बैठता, गाता, रोता आदि सब करता है, परन्तु वे सब कार्य पंच महाभूतों से सम्बद्ध न होने के कारण कार्य रूप में परिणत नहीं होता है। वह खा रहा है, परन्तु पेट में नहीं जा रहा, क्योंकि वहाँ पेट नहीं है। इस प्रकार केवल उन्नीस तत्त्व ही स्वप्न काल में अवस्थित रहते हैं, क्योंकि तत्त्व स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के होते हैं। लिङ्ग शरीर में सूक्ष्म तत्त्व भोगात्मक होते हैं, अर्थात् स्वप्नावस्था में सभी सूक्ष्म तत्त्व भोग करते हैं। इसलिये स्वप्न में प्राणी सब

कुछ करता है। ऐसा लगता है कि प्राणी खा रहा है, पी रहा है, देख रहा है, सुन रहा है, भोग कर रहा है, परन्तु सब कुछ करते हुए वह स्थूल शरीर से कुछ नहीं करता है।।२७।।

सुषुप्तिः प्रकृतिस्था च मृत्युः प्रलय उच्यते।
नित्यं दैनन्दिनं चैव नैमित्तिकादिर्भाष्यते॥२८॥

सुषुप्ति अवस्था प्रकृतिस्थ अवस्था है। उस समय प्राणी के समस्त तत्त्व प्रकृति (मूल तत्त्व) में स्थित हो जाते हैं, वह सत्त्व प्रधान अज्ञान है (सर्वस्य स्थूलसूक्ष्मोपाधेः कारणोपाधौ (प्रकृतौ) लीनत्वं सुषुप्ति) अथात् सभी स्थूल-सूक्ष्म तत्त्वों का कारणोपाधि प्रकृति तत्त्व में लीन हो जाना सुषुप्ति है तथा मृत्यु प्रलय को कहा जाता है, अर्थात् समस्त तत्त्वों का प्रकृति में लीन हो जाना मृत्यु है तथा प्रलय १. नित्य, २. नैमित्तिक, ३. प्राकृत और ४. आत्यन्तिक चार प्रकार की होती है। नित्य प्रलय तो दिन-प्रतिदिन होती है, प्राणी नित्य प्रतिदिन मरते हैं, जन्म लेते हैं, अतः नित्य मरना यह नित्य प्रलय है। नैमित्तिक प्रलय एक ब्राह्मकल्प के बीत जाने पर होती है। विष्णु पुराण ६/३/४-११ के अनुसार बारह हजार दिव्य वर्षों का एक चतुर्युग होता है, जिसमें सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग चारों बीतते हैं। और एक हजार चतुर्युग बीत जाते हैं, यही एक कल्प है। इस प्रकार १२००० × १००० = १२०००००० एक करोड़, २० लाख दिव्य वर्ष का एक कल्प हुआ तथा जब इस काल को मानव वर्षों में बदलेंगे, तब चूंकि ३६० मानव वर्षों का एक दिव्य वर्ष होता है, अतः-१२०००००० × ३६० = ४३२००००००० = चार अरब, बत्तीस करोड़ मानव वर्ष का ब्रह्मा का एक दिन हुआ। यही पृथ्वी की आयु है, इसे आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है। यही काल नैमित्तिक प्रलय का है। इसे नैमित्तिक इसलिये कहा जाता है कि पहले प्रचण्ड सूर्य सात भागों में बँट कर समस्त भूमण्डल को जला डालते हैं, तब जब सब जल कर भस्म हो जाता है, तब अतिवृष्टि होती है और सर्वत्र जल ही जल व्याप्त होता है, सब समुद्र एकार्णव के रूप में स्थित हो जाते हैं। उस समय भगवान् विष्णु एकार्णव में शयन करते हैं तथा जितने काल तक सृष्टि रही, अर्थात् ब्रह्मा का दिन रहा, उतने ही काल तक ब्रह्मा की रात्रि रहती है। वह चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों की रात्रि होती है, जिस समय तक विष्णु पुनः सृष्टि के निमित्त एकार्णव में शयन करते हैं। अतः इस प्रलय में भगवान् विष्णु का महासमुद्र में शयन करना ही निमित्त है, इसलिये इसे नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है।

प्राकृत प्रलय, समस्त तत्त्वों का प्रकृति में लीन होने को कहा जाता है। इस प्रलय में अनावृष्टि आदि के संयोग से सब कुछ नष्ट हो जाता है। महत्तत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त सम्पूर्ण विकार क्षीण हो जाते हैं, तब जल पृथ्वी के गुण गंध को ग्रहण कर लेता है। जल के रस गुण को तेज ग्रहण कर लेता है, तब रसगुण के नाश होने पर जल नष्ट हो जाता है, तब जल अग्नि रूप हो जाता है। तब सारा जल सूख जाता है। सर्वत्र आग ही आग फैल जाती है। फिर अग्नि के प्रकाशक रूप को वायु अपने में लीन कर लेता है, तब प्रचण्ड वायु ही सर्वत्र रहती है, फिर वायु को आकाश अपने में लीन कर लेता है। उस समय एक शब्दमय आकाश ही सबको आच्छादित किये रहता है। आकाश के गुण शब्द को भूतादि ग्रस लेता है तथा भूतादियों में पञ्चभूत और इन्द्रियों का लय हो जाता है, तब अहंकारात्मक तामस रहता है, फिर इस भूतादि को बुद्धिरूप महत्तत्त्व ग्रस लेता है तथा अन्त में महत्तत्त्व प्रकृति में विलीन हो जाता है। यह प्रलय समस्त ब्रह्माण्ड की प्रलय है। इसमें कोई भी ग्रह नहीं रहेगा, सब कुछ समाप्त हो जाता है तथा उसका काल विष्णुपुराण दो परार्द्ध कहता है तथा एक परार्द्ध की संख्या आज के एक शंख वर्ष होती है १००००००००००००००००० दिव्य वर्ष, अतः दो शंख दिव्य वर्षों तक का एक परार्द्ध हुआ तथा ७२० शंख मानव वर्षों का एक प्राकृत प्रलय का काल है।।२८।।

प्राज्ञो ह्यत्यल्पजीवादिः सर्वज्ञा विराडान्तरे।
महाप्रलयो नास्त्येव प्रलयः पारिभाषिकः॥२९॥
तुरीयावस्थस्वरूपञ्च वासनाबन्धं मुञ्चति।
ब्रह्मप्रलय इत्युक्तो निर्वाणं लय उच्यते॥३०॥

अल्प जीवन जीने वाले प्राणी प्राज्ञ कहे जाते हैं, तब जब वे इस जीव के रूप में होते हैं, तब प्राज्ञ कहे जाते हैं। तब जब उस विराट् स्वरूप परमात्मा में विलीन होते हैं, तब वे ही सर्वज्ञ हो जाते हैं। महाप्रलय तो नहीं ही है, प्रलय तो पारिभाषिक है। प्रलय तो जीव का ब्रह्म में लीन हो जाना ही है तथा प्राज्ञ से सर्वज्ञ हो जाता है, अतः महाप्रलय नहीं होती। प्रलय तो पारिभाषिक है। आत्मा का परमात्मा में मिलकर परमात्मा के ही आकार का हो जाना ही तुरीय अवस्था है, जिसे मोक्ष कहा जाता है। धर्म, अर्थ, काम और चौथे मोक्ष के कारण इसे तुरीय कहा जाता है। अतः तुरीय अवस्था ही स्वरूप है, वही आत्मा का वास्तविक स्वरूप है। परम ब्रह्म रूप ही आत्मा का सच्चा स्वरूप है। उस तुरीय अवस्था में आत्मा वासनाओं के बन्धन से मुक्त हो जाती है। इसे ही ब्रह्म प्रलय (अर्थात् आत्मा

का ब्रह्म में हीन होना) कहा जाता है तथा निर्वाण (मोक्ष) ही लय कहा जाता है।।२९-३०।।

कदाचिल्लभते कश्चिदनुभावसमन्वितः।
अनुभवो द्विविधश्च विषयपरमार्थकः।।३१।।

कोई कोई आत्मा कभी इस प्रकार के अनुभव से युक्त होकर इस निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। अनुभव भी दो प्रकार का है। एक विषय से सम्बन्धित, दूसरा अनुभव परमार्थ (परम लक्ष्य मोक्ष) से सम्बन्धित।।३१।।

आनन्दो ब्रह्मणो रूपमानन्दो हि प्रयोजनम्।
अत्यन्तनिवृत्तिसुखो द्विधाकारे सुसंस्थितः।।३२।।
जीवन्मुक्तो देहमुक्तो विदेहो देहवर्जितः।
जीवन्मुक्तो द्विविधश्च विषयज्ञानमिश्रितः।।३३।।

आनन्द ब्रह्म का रूप है। उस ब्रह्म में आत्मा के लीन होने के बाद परमानन्द की प्राप्ति होती है तथा वह परमानन्द ही मानव जीवन का प्रयोजन है। वही लक्ष्य है। समस्त कर्मों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाने पर जिस परम सुख की प्राप्ति होती है, वह दो प्रकार से स्थित है। जीवन्मुक्त और देहमुक्त।

जीवन्मुक्त उसे कहा जाता है, जो जीवित रहते हुए आत्मज्ञान द्वारा माया के बन्धन से मुक्त रहता है तथा देह मुक्त तो शरीर छोड़कर माया से वर्जित होता है। जीवन्मुक्त के बारे में श्रुति का कथन है कि–

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यते सर्व्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

अर्थात् उस परंब्रह्म में लीन होने पर मनुष्य की हृदय ग्रन्थि टूट जाती है। सब प्रकार के संशय कट-छँट जाते हैं और सारे कर्म नष्ट हो जाते हैं। यही है– जीवन्मुक्त की स्थिति। तथा जीवन्मुक्त दो प्रकार का है–पहला विषय से मिश्रित और दूसरा–ज्ञान से मिश्रित।३२-३३।।

चिद्घनविषयध्यानविषयः परमार्थकः।
ज्ञाता ज्ञेयो गुण्यो मान्यो ज्ञानानन्दो ह्यनुल्बणः।।३४।।

जीवन्मुक्त व्यक्ति चिद्घन स्वरूप अर्थात् चैतन्य ब्रह्मस्वरूप विषय से सम्बन्धित होता है। वह सदैव उसी में ध्यानमग्न रहता है तथा सदैव परमार्थ करता है। वह सब तत्त्वों का जानने वाला है तथा सब द्वारा जानने योग्य हो जाता है। वह गुण्य गुणों वाला और सभी लोगों द्वारा माननीय होता है। वह ज्ञान में आनन्द लेने

वाला होता है तथा फिर वह कभी भी गर्भ के दुर्गन्धयुक्त जार में उल्टे मुँह नहीं लटकता।।३४।।

अच्युतः अच्युतानन्दः अच्युतो ध्यानदर्शनः।
ध्यानोऽपि त्रिविधाकारो ज्ञानोऽपि त्रिविधः स्मृतः।।३५।।
क्रमेणोक्तो यथा मुक्तो विषयो द्विविधः स्मृतः।
विद्याविद्या द्विविधा च विषयः सर्वव्यापितः।।३६।।

विष्णु नित्य आनन्दस्वरूप हैं। विष्णु ही ध्यान का दर्शन हैं। ध्यान भी तीन आकार का होता है।

ध्यान तीन प्रकार के हैं—स्थूल ध्यान जिसमें स्थूल वस्तुओं के प्रति ध्यान किया जाता है। मूर्त्ति में किया गया ध्यान स्थूल ध्यान ही कहा जाना चाहिये। दूसरा है ज्योतिर्ध्यान जिसमें एक दिव्य प्रकाश का ध्यान किया जाता है। उस ध्यान में एक विशेष प्रकार का प्रकाश रहता है। तीसरा ध्यान है—सूक्ष्मध्यान यह ध्यान बहुत कठिन होता है इसमें सूक्ष्म तत्त्वों का ध्यान किया जाता है।

तीन प्रकार का स्मरण किया गया है। वह ज्ञान सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेद से तीन प्रकार का होता है। सात्त्विक ज्ञान जैसे सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते। अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्। अर्थात् सभी प्राणियों में जिसके द्वारा एक भाव से देखा जाता है, तथा जो विभक्तों में भी अविभक्त है, वह ज्ञान सात्त्विक ज्ञान है। तथा—

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथक् विधान।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।।

जिस ज्ञान द्वारा जो सभी प्राणियों में अनेकों प्रकार के भावों को अलग-अलग जाना जाता है, उस ज्ञान को राजस ज्ञान कहा जाता है।

तामस ज्ञान जैसे—

यत्तु क्त्स्ववेदकस्मिन् कार्ये सक्तमहेतुकम्।
अतत्त्वार्थपदलपञ्च तत्ताम समुदाहृतम्।।

समस्त को एक कार्य में लगा हुआ तथा बिना कारण का तत्त्वहीन अर्थवाला और अल्प है, वह तामस ज्ञान कहा गया है।

जैसे कि क्रम से कहा गया तथा मुक्त इस प्रकार विषय भी दो प्रकार का है तथा विद्या और अविद्या दो प्रकार की है तथा विषय सर्व व्यापित होता है। विषय विद्या का भी हो सकता है तथा अविद्या का भी।।३५-३६।।

अविद्याजनितज्ञानविषयः सर्वनिन्दितः।
नित्यसिद्धः कृपासिद्धः क्रियासिद्धः स्वरूपकः।।३७।।
सर्वतः ध्येयं रूपञ्च नामरूपं स्वतन्त्रकम्।

अविद्याजनित ज्ञान का विषय सबके द्वारा निन्दित होता है। विद्याजनित ज्ञान का विषय नित्यसिद्ध, कृपासिद्ध, क्रिया सिद्ध, और स्वरूप वाला होता है। सब ओर स्वतंत्र रूप और नाम रूप का ध्यान करना चाहिये।।३७।।

वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा।।३८।।
सुसिद्धे वासना शुद्धा मलिना तद्विपर्यया।
उभयवासनात्यागो नेमो ज्ञाने विवेचितः।।३९।।
नित्यसिद्धः शिवादिकः क्रियासिद्धो ह्यनन्तकः।

वासना दो प्रकार की कही गयी है। शुद्धा और मलिना। अच्छी तरह सिद्ध होने पर वासना शुद्ध होती है और अच्छी तरह सिद्ध न होने पर वासना मलिन होती है। दोनों प्रकार की वासनाओं का त्याग ही ज्ञान में मुख्य कहा गया है। दोनों प्रकार की वासनाओं का त्याग नित्यसिद्ध है। शिवादि से सम्बन्धित है, क्रिया सिद्ध है और अन्तहीन है, उसका कहीं अन्त नहीं है।।३८-३९.५।।

नयनं त्रिविधं प्रोक्तं शुद्धञ्च मलिनं तथा।।४०।।
शुद्धं सकलब्रह्म च मायायोगेन मलिनम्।
आधेयं विद्यायोगेन गुरुश्चक्षुप्रकाशकः।।४१।।

नयन दो प्रकार का कहा गया है। वह शुद्ध और मलिन शुद्ध सकल ब्रह्म है अर्थात् शुद्ध साकार ब्रह्म है और जो माया के योग से युक्त है, वह मलिन है, विद्या के योग से नयन आधेय होता है अर्थात् विद्या आने पर ही नेत्र किसी भी विषय को पकड़ता है। जैसे विना पढ़ा व्यक्ति किताब नहीं पढ़ सकता, अतः विद्या आधार है और नेत्र आधेय है तथा नयन गुरु है तथा नेत्रों में प्रकाश करने वाला है।।३९-४१।।

यथा ब्रह्म निराकारो ह्यन्तरात्मा तथा भवेत्।
परमात्मा महाशून्यः शून्या चिच्छक्तिरूपिणी।।४२।।

जिस प्रकार ब्रह्म निराकार है, उसी प्रकार यह अन्तरात्मा भी निराकार है। परमात्मा महाशून्य है तथा प्राणियों में चेतना लाने वाली प्रकृति भी शून्य है।।४२।।

चिद्घनः शक्तिस्थूला च यथा नीरकरकता।
नीरः क्षीरो यथा पृथ्वी पाषाणादिक्रमागतः।।४३।।

चिद्घन (चैतन्यरूप परं ब्रह्म) निराकार और शक्ति स्थूल अर्थात् आत्मा

(पुरुष) तथा प्रकृति (सशरीर चौबीस तत्त्व) इनका जल और वृक्ष के समान सम्बन्ध है। जैसे जल है, तो वृक्ष है, जल नहीं तो वृक्ष नहीं, उसी प्रकार चिद्घन निराकार के बिना शक्तिस्थूल (साकार) प्रकृति नहीं रह सकती तथा जल दूध पृथ्वी पाषाणादिक क्रम से आये हुए हैं।।४३।।

स्वभावः सर्वमूलञ्च स्वभावः सती ईश्वरी।
अन्तरङ्गास्त्रिविधाश्च बहिरङ्गास्तथा पुनः।।४४।।

स्वभाव प्रकृति ही सबका मूल है, स्वभाव ही ईश्वरी प्रकृति है। अन्तरंग तत्त्व तीन हैं, मन अहंकार और बुद्धि तथा उसी प्रकार बहिरंग भी तीन प्रकार के हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ और पाँच महाभूत।।४४।।

तटस्थास्त्रिविधा मिश्रा सर्वव्यापी चराचरः।
अन्तरङ्गा अन्तरात्मा सकलः परमेश्वरे।।४५।।

तटस्थ तीन प्रकार के हैं—१. मिश्र, २. सर्वव्यापी, ३. चराचर अन्तरात्मा अन्तरंग है, अर्थात् अन्तरात्मा शरीर के अन्दर का भाग है। वह परमेश्वर में समस्त कलाओं से युक्त है। अर्थात् परमेश्वर में सभी कलाओं का अस्तित्व है।।४५।।

सूर्यः प्रकाशको दीप्ते चैतन्यः सती निर्भरि।
मायिने अंशभूतश्च कला अनुर्जीवान्तरे।।४६।।
दर्पणस्थे शरावस्थे जले बिम्बे यथा रविः।
सूर्यमण्डलं स्थूलं हि दिवि सूक्ष्मो भवेन्महान्।।४७।।

दीप्त होने पर सूर्य प्रकाश करने वाला है। प्रकृति चैतन्य पर निर्भर है। माया के लिये चैतन्य अंशभूत है। अर्थात् माया (प्रकृति) में चेतनतत्त्व का अंश है।

जैसे सूर्य दर्पण में स्थित होने पर, शराव में स्थित होने पर जल में प्रतिबिम्ब में समा जाता है तथा वह महान् स्थूल सूर्यमण्डल सूक्ष्म ही महान् होता है। भाव यह है कि जैसे महान् स्थूल सूर्यमण्डल जल दर्पण आदि में सूक्ष्म होकर समा जाता है, उसी प्रकार यह महान् आत्मा इन शरीरों में सूक्ष्म होकर समाया हुआ है।।४६–४७।।

गवाक्षोपरि छिन्नश्च दर्शने अनुलक्षितः।
मण्डलमध्यशून्यवन्निष्कलः परमेश्वरः।।४८।।

वातायन में देखने पर जिस प्रकार सूर्य छिन्न दिखलायी देते हैं, उसी प्रकार मण्डल मध्य शून्य के समान निराकार परमेश्वर स्थित है।।४८।।

प्रकाशद्योतिचैतन्यं सकलशक्तिरीश्वरी।
ब्रह्म ज्योतर्भवेद् वह्निर्गवाक्षो देवकल्पना।।४९।।

अणुवज्जीवजन्तुर्हि क्षुद्रद्वारे प्रदर्शितः।
चिच्छक्तिः सच्चिदानन्दो माया इच्छा ज्ञानक्रिया॥५०॥

चैतन्य प्रकाश स्वरूप है, प्रकृति समस्त कलाओं की शक्ति वाली है। वह्नि ब्रह्म का प्रकाश है। जिस प्रकार वातायन से ज्योति भिन्न-भिन्न दिखाई देती है, उसती तरह वह अभिन्न दिखाई देता है

जीवजन्तु इस संसार में अणु के समान जो क्षुद्र द्वार में प्रदर्शित हैं, अर्थात् इस ब्रह्माण्ड में जीव-जन्तु इतने कम हैं कि वे छोटे से द्वार में दिखायी देते हैं। चित् शक्ति, सत् (प्रकृति), चित् (जीव) और आनन्द (ब्रह्म) मय है। तथा यह चित् शक्ति माया इच्छा ज्ञान और क्रियात्मक है, अथात् यह चैतन्य शक्ति ही माया रूप है। शरीर में इसके रहने पर ही इच्छा होती है। इसी के रहने पर ज्ञान होता है तथा इसी के रहने पर शरीर क्रियाशील रहता है॥४९-५०॥

मनोऽपि सदसद्रूपं सत्त्वरजतमाश्रितम्।
सकले चिदानन्दः प्रेम सक्षरमक्षरम्॥५१॥

मन भी सत् और असत् रूप है। वह सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों पर आश्रित है। सत्त्वगुण पर आश्रित मन सदैव शुभ विचार वाला होता है। राजसिक मन में सदैव भोग-विलास का विषय होता है तथा तामसिक मन सदैव काम-क्रोध-मोह के वशीभूत रहता है। सकल (साकार) में सच्चिदान्द प्रेम सक्षर और अक्षर होता है, अर्थात् साकार ब्रह्म में प्रेम नष्ट होने वाला और न नष्ट होने वाला दोनों प्रकार का होता है॥५१॥

ईश्वरे सत्यकामश्च प्रेम ऐश्वर्यमिश्रितम्।
कल्पनापरिपूर्णेन असत्या भवति क्वचित्॥५२॥

ईश्वर के प्रति प्रेम सत्य कामना वाला और ऐश्वर्य से मिश्रित होता है तथा कल्पना से परिपूर्ण होने से कहीं-कहीं असत्य भी हो जाता है॥५२॥

सत्याधिक्ये नरादीनां कर्मानुप्रेम प्राप्यते।
स्त्रीमन्त्र उष्णज्योतिश्च पुंमन्त्रः शीतलप्रभा॥५३॥
सूर्यश्चन्द्रं शशिर्भानुं वाञ्छति प्रेमलिप्सया।

मनुष्यादि का जो प्रेम सत्य की अधिकता के रहने पर होता है, वह कर्म के बाद प्रेम प्राप्त होता है। स्त्री मन्त्र उष्ण ज्योति है और पुरुष मन्त्र शीतल प्रभा है।

सूर्य चन्द्रमा को और चन्द्रमा सूर्य को प्रेम से प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, अतः स्त्री मन्त्र उष्ण ज्योति वाला सूर्य है और पुंमन्त्र शीतल प्रभा वाला चन्द्रमा

है। अतः जैसे सूर्य चन्द्रमा को और चन्द्रमा सूर्य को पाना चाहते हैं, वैसे ही स्त्री पुरुष को और पुरुष स्त्री को पाना चाहता है।।५३-५३.५।।

अन्तरङ्गा पराशक्तिर्मध्यमा योगमायया।।५४।।
अधमा विद्याशक्तिश्च निराकारा पराश्रया।
स्थूलवत् कुरुते कर्म ज्ञानकर्मेन्द्रियैः सह।।५५।।

पराशक्ति अन्तरंग होती है। योगमाया मध्यमा शक्ति है तथा विद्या शक्ति अधम होती है तथा पराशक्ति निराकार होती है तथा शरीर में प्रविष्ट होकर वह ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के साथ स्थूल के समान कार्य करती है।।५४-५५।।

लिङ्गदेहो निराकारः सूक्ष्मः सप्रेमभुञ्जितः।
कारणं स्वभावः सुप्तः चिच्छक्तिस्तुर्यकालिका।।५६।।

लिङ्ग शरीर (आत्मा) निराकार है, सूक्ष्म है और प्रेम से भुञ्जित है। यह लिङ्ग स्थूल शरीर का कारण है, स्वभाव है। चित् शक्ति तुर्यकालिका है।।५६।।

चिद्घनः स्वप्रकाशश्च महाज्योतिः स्वभावतः।
आनन्दो ब्रह्मणो रूपं स्थूलरूपप्रकाशकः।।५७।।

चिद्घन स्वयं प्रकाशित है, महाज्योति है तथा स्वभाव है। आनन्द ब्रह्म का रूप है तथा स्थूलरूप वाले इस शरीर को प्रकाशित करने वाला है।।५७।।

माधुर्यो रसनाग्राहो रसः सूक्ष्मो न संशयः।
अनुभवः सुखानन्दोऽप्रत्यक्षः कदाचन।।५८।।
स्थूलः सूक्ष्मः फलसम्प्राप्त आनन्दस्त्रिविधात्मकः।

मधुरता जिह्वा से ग्रहण की जाती है, अतः रस (आनन्द) सूक्ष्म है, इसमें सन्देह नहीं है। अतः सुख का आनन्द अनुभव है। वह अप्रत्यक्ष कभी नहीं है तथा स्थूल सूक्ष्म और फल सम्प्राप्त इन तीनों के रूप में आनन्द तीन प्रकार का होता है।।५८-५८.५।।

सर्वाङ्गसुन्दरी किं वा सुन्दरो यौवनस्थितः।।५९।।
अथवा प्रियरूपादि सुपुष्पः पूर्णचन्द्रिका।
दर्शने जायते ह्लादोऽनुभवः परमात्मनि।।६०।।

सर्वाङ्ग सुन्दरी स्त्री हो अथवा यौवनस्थित सुन्दर पुरुष हो अथवा प्रिय रूपादि हो, सुन्दर पुष्प हो अथवा पूर्ण चांदनी हो, सबको देखने पर परम आत्मा में आनन्द का अनुभव होता है।।५९-६०।।

आनन्दो धनस्थूलश्च कालानन्दो गरिष्ठो हि।
अनुभवो बोधानन्दो यद् यदानन्दवाचकः।।६१।।

आनन्द घनस्थूल है, कालानन्द गरिष्ठ है, बोध के बाद होने वाला आनन्द अनुभव है। जो कि आनन्द को बताने वाला है। अर्थात् किसी विषय में बोध होने के बाद होने वाला आनन्द अनुभव होता है, अतः अनुभव ही आनन्द का वाचक है।।६१।।

स्थूलधनसुफलञ्च योगादिमन्त्रचिन्तनम्।
स्थूलसूक्ष्मकोषादीनां कोषं स्थूलार्थं कथ्यते।।६२।।

योगादि मन्त्र का चिन्तन स्थूल अर्थात् धन और सुन्दर फल देने वाला होता है तथा योग और मन्त्र का चिन्तन स्थूल और सूक्ष्म कोषों (खजानों) का कोष (खजाना) होता है अर्थात् स्थूल अर्थ यही है।।६२।।

कोषवादः सकलो हि सकल ईश्वरादिकः।
चिद्घनः कोषमावाह्य सकलः परमेश्वरः।।६३।।
विभवः प्रभवः शक्तिरच्युतो नित्यदायकः।
नित्योऽपि वर्तते स्थूले सूक्ष्मो नित्यः स्वभावतः।।६४।।

विभव प्रभव शक्ति अच्युत और नित्यदायक है। स्थूल शरीर में नित्य भी रहने वाला वह आत्मा स्वभाव से नित्य और सूक्ष्म आत्मा वर्तमान है।।६३-६४।।

विमर्श—कोषवाद जितने भी हैं अर्थात् जो अन्नमय, प्राणमय कोश मनोमयकोश विज्ञानमयकोश और आनन्दमयकोश ये सभी ईश्वरादिक हैं तथा ब्रह्म की कलारूप हैं अर्थात् उसके साकार रूप हैं। इन सबको वह चिद्घन ब्रह्म ढोकर चल रहा है। वह ईश्वर जो समस्त आत्माओं का पुञ्ज है, सब उसी द्वारा हो रहा है।

निर्वाचनो निराकारः स्वभावो भाववर्जितः।
अप्रकाशोऽभावश्च प्रकाशभावसंयुतः।।६५।।

वह आत्मा बताने योग्य नहीं है, व उसका कोई आकार नहीं है। अपने ही भाव वाला है तथा भाव रहित है। वह प्रकाश रहित अभाव रूप है। फिर प्रकाश भाव से युक्त है।।६५।।

विमर्श—भले ही उसका आकार नहीं; परन्तु यह समस्त ब्रह्माण्ड सी का रूप है। भले ही उसमें कोई प्रकाश नहीं दिखाई देता; परन्तु ये सभी सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि उसी के प्रकाश हैं।

परस्परं भवेद् बन्धः सम्बन्धसंयोगात्मकः।
न भवेत् सकलं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्मचिदात्मकः।।६६।।
जीवे भिन्नो भवेत् स्थूलो सज्ज्ञाने मरणे किल।
दीक्षा शिक्षा प्राणयोगः स्थूलेन सह जायते।।६७।।

इस स्थूल शरीर और उस शरीरी आत्मा का परस्पर बन्धन हो जाता है, क्योंकि इनका सम्बन्ध संयोगात्मक है। परन्तु समस्त कलाओं से युक्त ब्रह्म स्थूल, सूक्ष्म, चैतन्य आत्मा वाला नहीं होता। अर्थात् सशरीरी ब्रह्म स्थूल, सूक्ष्म, चैतन्य आत्मा वाला नहीं होता। सच्चा ज्ञान होने पर और मरने पर जीव में स्थूल भिन्न हो जाता है तथा शिक्षा–दीक्षा और प्राण का योग स्थूल के साथ ही उत्पन्न होता है, अर्थात् जब स्थूल शरीर में जीव रहता है, तभी शिक्षा–दीक्षा और प्राणों का योग रहता है।।६७।।

विनाधारं निराकारं फलमात्रं न वर्तते।
आधारः त्रिविधाकारश्चिन्मायामयरूपकः।।६८।।

शरीर रूपी आधार के बिना शरीरी (आत्मा) किसी फल को प्राप्त नहीं करती। आधार तीन प्रकार के आकार का होता है। चिन्मय, मायामय और रूपमय।।६८।।

आधारः स्फटिकः शुद्धो आधारो वर्णभूषितः।
शुद्धाङ्गमन्तरं साक्षी उपाङ्गो गुणमिश्रितः।।६९।।

आत्मा और शरीर इनमें शरीर आधार है और आत्मा आधेय है। अतः आधार (शरीर) शुद्ध स्फटिक है उसमें आत्मा प्रतिबिम्बित है तथा आधार (शरीर) ही वर्णविभूषित है अर्थात् अनेकों प्रकार के वर्णों वाला कोई गोरा है, कोई काला है, कोई बिल्कुल श्वेत वर्ण वाला है। उसका शुद्ध अंग अन्तर स्थित है तथा वही साक्षी है अर्थात् अन्तरात्मा शुद्ध अंग है, जो अच्छे–बुरे कर्म का गवाह है तथा उपाङ्ग शरीर के समस्त अंग गुण मिश्रित है अर्थात् इन्द्रियाँ गुणमिश्रित हैं।

उपाङ्गस्पर्शने गङ्गा सदङ्गं सद् भवेद् ध्रुवम्।
एकाङ्गदर्शने सर्पः सर्वाङ्गं विषप्लावितम्।।७०।।

उपाङ्ग का स्पर्श करने पर गङ्गा सारे शरीर को संग होना बताती है। अर्थात् गंगा का एक अंग (जल) का स्पर्श करने पर अपनी सदङ्गता बताती है तथा सर्प का एक अंग देखने पर उसके समस्त शरीर में विष भरा हुआ दिखाई देता है।

स्वप्नजागरणसुप्तं मनः कारणसङ्गतम्।
मन एव मुनिध्यानं कारणं बन्धमोक्षयोः।।७१।।
यथा वृक्षादिषु च्छाया जलमाने प्रजायते।
जले नष्टे पुनश्छाया पुनर्वृक्ष प्रलीयते।।७२।।

स्वप्न जागरण से संयुक्त मन कारण सङ्गत है, मन ही मुनि का ध्यान है और बन्धन और मोक्ष का कारण है।

जिस प्रकार वृक्ष आदि में छाया जल के मान में उत्पन्न होती है, अर्थात् वृक्षादि में छाया है नहीं, परन्तु जल के होने पर उत्पन्न हो जाती है तथा जब जल नष्ट हो जाता है, तो वह छाया जल में ही पुनः विलीन हो जाती है।।७१-७२।।

मनोरूपं भवेद् वृक्षो वृक्षो बीजगतो यदा।
कारणाकरणं ज्ञात्वा ध्यानज्ञानं समाचरेत्।।७३।।

मनोरूप वृक्ष है तथा ये सेन्द्रिय शरीर जल रूप है। जब तक शरीर है, तब तक उसमें मन की छाया है तथा शरीर समाप्त हो जायेगा, तब मन की छाया स्वतः मन में विलीन हो जायेगी।

मनोरूप वृक्ष है तथा जब वृक्ष बीजगत होता है, अर्थात् जब यह मनोरूप वृक्ष कारण स्वरूप ब्रह्म में लीन हो जाता है। तब वह कारण और अकारण को जान कर ध्यान के ज्ञान का सम्यक् आचरण करता है। अर्थात् जब इस मन को यह पता चल जाता है कि इस आत्मा का कारण कौन है? तथा अकारण कौन है? तब वह उस कारण रूप ब्रह्म में ध्यान मग्न हो जाता है।।७३।।

ज्ञाने कारणं नश्यति ध्याने प्रेमस्वरूपतः।
चिच्छक्तिः कारणं ब्रह्म ध्यानज्ञानफलप्रदम्।।७४।।

ध्यान में प्रेम के स्वरूप से ज्ञान में कारण नष्ट हो जाता है। चित् शक्ति कारण ब्रह्म है। वही ध्यान और ज्ञान रूपी फल को प्रदान करने वाली है।।७४।।

स्वप्रकाशं जागरणं तुर्यस्था कुलरूपिणी।
चतुष्षष्टिकलाधारे सहस्त्रारे समावृतः।।७५।।

चित् शक्ति स्वप्रकाश स्वरूप है, जागरण रूप है, तुरी में स्थित कुलरूपिणी है। वह चौंसठ कलाओं के आधार सहस्त्र दल कमल में समावृत हैं।।७५।।

विमर्श—कलायें बतायी जा चुकी हैं।

सदाशिवः खगाकारो द्विदलोर्ध्वपुरे स्थितः।
ब्रह्मपुरं विष्णुपुरं रुद्रपुरं तथेश्वरः।।७६।।

उन चौंसठ कलाओं के आधार सहस्त्रार चक्र यन्त्र सदाशिव खग परीक्षा के आकार वाले अर्थात् आकाश में गमन करने वाले पक्षी के आकार वाले दो दलों वाले ऊर्ध्वपुर में स्थित हैं। द्विदलपुर, ब्रह्मपुर, विष्णुपुर, रुद्रपुर तथा ईश्वर का पुर है।।७६।।

त्रिपुरस्त्रिपुरा पुरकाली पुरसमावृता।
सरस्वती निराकारा बिन्दुचक्रे प्रतिष्ठिता।।७७।।

त्रिपुर वाली त्रिपुरा पुरकाली सरस्वती निराकार है, जो बिन्दु चक्र में प्रतिष्ठित है।।७७।।

भिन्नाभिन्ना पञ्चशून्ये तारिणी सुप्रकाशिता।
नाक्षत्री तिथिरूपा च षोडशवर्षा षोडशी।।७८।।
चैतन्यरूपिणी काली समानन्दप्रदायिनी।
शवरूपं भवेच्छिवः शक्तियोगे शिवो महान्।।७९।।

भिन्न–अभिन्न पञ्चशून्य में तारिणी सुप्रकाशित है तथा नाक्षत्री तिथिरूपा षोडशवर्षा षोडशी चैतन्य रूपिणी काली जो सम्यक् आनन्द प्रदान करने वाली है। वैसे शिव शव (मृत देह) रूप है, परन्तु शक्ति के योग होने पर शिव महान् होते हैं।।७८–७९।।

शिवयोगे तथा सती सच्चिदानन्दरूपिणी।
तारमन्त्रस्त्रिधाकारो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।।८०।।

तथा शिव के योग में सती सच्चिदानन्दरूपिणी होती है। तारा मन्त्र तीन प्रकार के आकार का होता है। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन तीनों के आकार वाला होता है।।८०।।

पञ्चमात्रा महातारा पञ्चप्रेतशवासना।
कला बाला कामकला अमला कालकामिनी।।८१।।

महातारा पाँच मात्राओं वाली हैं। वे पाँच प्रेतों के शवों पर रहने वाली हैं। वे हैं कला, बाला, कामकला, अमला और कालकामिनी।।८१।।

ज्ञाने मुक्तिः ध्याने भक्तिः प्रेम्णि भुक्तिफलप्रदा।
अज्ञानं जीवजन्तूनां सृष्टिस्थितिलयात्मिकाः।।८२।।

ज्ञान में मुक्ति है, ध्यान में भक्ति है और प्रेम में मुक्ति फल प्रदान करने वाली है। जीव–जन्तुओं का अज्ञान है। सृष्टि, स्थिति और प्रलय आत्मिक है। अर्थात् ये जीव पैदा होते हैं, स्थित रहते हैं और नष्ट होते हैं।।८२।।

तमः सुप्तो जरे स्वप्नः सत्यमिश्रेण जाग्रतः।
जीवानां जीवभावाश्च प्रेम्णां भाव उत्तमः।।८३।।

तमोगुण में जीव की सुप्तावस्था होती है तथा सत्त्वगुण में जीव की जाग्रत अवस्था होती है। जीवों का जीव भाव है और प्रेमियों का प्रेमभाव उत्तम है।।८३।।

चिच्छक्तिर्निर्मला काली मायाशक्तिस्तदंशकः।
घनशक्तिः प्रतिबिम्बं सुखदुःखप्रयोजकम्।।८४।।

सङ्कल्पवासनामुक्तं वासना द्विविधा मता।
शुद्धा अर्थविनाशी स्याद् मलिना अर्थदायिनी॥८५॥

चित् शक्ति निर्मला काली है और मायाशक्ति उसका अंश है। घनशक्ति उसका प्रतिबिम्ब है, जो दुःख और सुख का प्रयोजक है तथा संकल्प की वासना से मुक्त है। तथा वासना दो प्रकार की मानी गयी है, शुद्धा और मलिना। शुद्धा अर्थ को नष्ट करने वाली होनी चाहिये और मलिना अर्थ (धन) को देने वाली है॥८४-८५॥

शारीरं मानसं वाचं त्रिविधं कर्म चाचरेत्।
सुकर्म सत्यं पूर्णञ्च कुकर्म नरकप्रदम्॥८६॥

कर्म तीन प्रकार के होते हैं—१. शारीरिक, २. मानसिक और ३. वाचिक। इन तीनों प्रकार के कर्मों का आचरण करना चाहिये। अतः शरीर से, मन से और वाणी से अच्छे कर्म करने चाहियें। सुकर्म सत्य और पूर्ण होते हैं तथा कुकर्म नरक प्रदान करने वाले होते हैं॥८६॥

विकर्म धर्मनाशाय सुकाला विफला मृता।
मलिना व्यापिता जन्तौ स्थावरौ गुप्तजाग्रतः॥८७॥

विकर्म धर्म नाश के लिये होता है तथा अच्छे काल विफल और मृत होते हैं। अर्थात् बुरे कर्म द्वारा जो सुकाल (अच्छा समय) आता है, वह विफल तथा मृत होता है। मलिन वासना प्राणियों में व्यापित रहती है तथा स्थावर में गुप्त रूप से जाग्रत रहती है॥८७॥

मनश्च जीवजन्तूनां कारणं बन्धमोक्षयोः।
सत्सङ्गे सत्यसञ्चारः सत्यकर्मे निपुणता॥८८॥

मन जीव जन्तुओं के बन्धन और मोक्ष का कारण है। सज्जन पुरुषों के साथ रहने से मन में सत्य का संचार होता है तथा सत्य कर्म में निपुणता प्राप्त होती है॥८८॥

आसक्तिर्भक्तियोगेन कामहीने सफलता।
कामना बहुविधा च इष्टा श्रेष्ठा अकामता॥८९॥

भक्ति के योग से कर्म के प्रति आसक्ति पैदा होती है तथा बिना इच्छा के कार्य करने से सफलता प्राप्त होती है। कामना (इच्छायें) बहुत प्रकार की होती हैं। वे इष्ट कामना, श्रेष्ठ कामना तथा विना इच्छा की कामना। अर्थात् इष्ट कामना वह है, जिसमें अपने लिये कुछ इच्छा की जाती है। श्रेष्ठ कामना श्रेयपरक अर्थात् दूसरे का कल्याण करने वाली होती है तथा अकामता कामना बिना किसी स्वार्थ की भावना से की गयी कामना अकामता होती है॥८९॥

चिदानन्दात्मसुखमात्मवन्तं द्विधा मतम्।
जाग्रदिन्द्रियग्राह्यः सेव्यसेविप्रतिष्ठितः॥९०॥

सुख दो प्रकार के होते हैं, चिदानन्दात्मक सुख एवं आत्मवत् सुख। अर्थात् ब्रह्मानन्द सहोदर सुख तथा आत्मानन्दात्मक सुख। जागते हुए जो इन्द्रियग्राह्य सुख है, वह सेव्य, (ब्रह्म) और सेवक (साधक) में प्रतिबिम्बित होता है।।९०।।

स्थूल ऐक्यं महामोक्षः सूक्ष्मचिन्तनं स्वप्नवत्।
सुषुप्ते प्रलयः सर्वोऽस्ति नास्ति गतो भवेत्॥९१॥

स्थूल की एकता महामोक्ष है, सूक्ष्म चिन्तन स्वप्न के समान है। सुषुप्ति में सबका प्रलय है। सुषुप्ति में कुछ भी गतिशील नहीं होता।।९१।।

अस्ति चैतन्य उष्णत्वं नास्ति किञ्चिद् निष्कलम्।
तुर्यस्वरूपमाप्नोति भ्रमप्रमादवर्जितम्॥९२॥

तुर्य स्वरूप को प्राप्त करता है। अर्थात् चैतन्य अज्ञान की उपाधि से रहित होकर उस परम चैतन्य ब्रह्म में लीन हो जाता है।।९२।।

बहुभाग्यप्रसादेन तुर्यावस्था पुरे स्थितम्।
तुर्यपुरं गुरुपुरं कालीपुरसमायुतम्॥९३॥

बहुत अधिक भाग्य की कृपा से तुर्यावस्था के पुर में आत्मा स्थित होता है (अज्ञान की उपाधि से रहित आत्मा की स्थिति) तुर्य पुर है, जहाँ आत्मा–परमात्मा का एकीभाव है, वही गुरु पुर अर्थात् सदाशिव का वासस्थान है, जो कालीपुर से समायुत है।।९३।।

त्रिपुरेशपुरं वेत्ति स्वामीव वेत्ति भाविनी।
सजलपूरितपुरं कारणं लवणाम्बुधिः॥९४॥

वह आत्मा (चैतन्य) त्रिपुरेश पुर को जानता है। भाविनी आत्मा स्वामी के समान उसे जानती है। वह त्रिपुरेश पुर जल से पूरित है, क्योंकि वहाँ लवण का सागर है।।९४।।

क्षीरोदशयने विष्णुः ब्रह्मा चैव स्मरहरः।
सुचैतन्यं महामान्यं त्रिविधं सतीकारणम्॥९५॥
गुप्ता व्यक्ता तथा सुप्ता स्थूलसूक्ष्मचिदात्मकः।
नादबिन्दुः सूक्ष्मज्योतिः सवितुर्वह्निचन्द्रमाः॥९६॥

क्षीर सागर में शयन करने वाले विष्णु, ब्रह्मा और कामदेव के शरीर का हरण करने वाले भगवान् शंकर सुचैतन्य ही महामान्य है। सती के कारण तीन

प्रकार के हैं। गुप्त कारण, व्यक्त कारण तथा सुप्त कारण, अर्थात् उस समय सती (शक्ति) तीन प्रकार की होती है। वह एक रूप है छिपा हुआ, दूसरा है, प्रकट होना, तीसरा है सुप्त होना। नादबिन्दु सूक्ष्म ज्योति है। वे उस सूर्य की अग्नि और चन्द्रमा हैं।।९५-९६।।

चिच्छक्तिः सुप्रसन्नेन सत्यरूपस्य दर्शनम्।
गुरुकृपा विना शक्तिर्न प्रसन्ना भवेत् कदा।।९७।।

चित् शक्ति जब अच्छी तरह प्रसन्न हो जाती है, तब सत्यरूप का दर्शन होता है। परन्तु वह चित् शक्ति गुरु की कृपा के बिना कभी प्रसन्न नहीं होती।।९७।।

प्रथमे गुरुदीक्षादिः क्रमे एकाग्रसाधना।
व्यग्रत्वं जाग्रत्त्वं शक्तेः ततः सद्गुरुभावना।।९८।।

साधना क्रमिक होती है। सर्वप्रथम गुरु से दीक्षा लेनी होती है, उसके बाद क्रम में एकाग्र होने की साधना की जाती है। पहले शक्ति की व्यग्रता होती है, तब शक्ति का जागरण होता है, उसके बाद सद्गुरु (सदाशिव) की भावना होती है।।९८।।

सर्वत्र अङ्गस्वाङ्गानामुत्तमं श्रीगुरुपदम्।
शिवपदः शक्तिपदः चिन्तामणिर्मनीषिणाम्।।९९।।

सर्वत्र अंग और स्वाङ्गों में श्री गुरु (शिव) के चरण उत्तम हैं। शिवपद शक्तिपद है तथा वह मनीषी पुरुषों की चिन्तामणि है।।९९।।

पिण्डब्रह्माण्डपरमं महाशून्यमधःस्थितम्।
ज्ञानचक्षे भवेल्लक्ष्यं वैरिपक्षे विडम्बना।।१००।।

परम ब्रह्माण्ड का पिण्ड (गोला) महाशून्य है तथा वह नीचे स्थित है। ज्ञान के दर्शन में वह लक्ष्य है तथा वैरी के पक्ष में विडम्बना है।।१००।।

त्रिलोचने लक्षान्तोऽक्षो विरूपाक्षप्रयासिनः।
चक्षुर्दर्शनमुक्तो हि आकाशः क्षुद्ररन्ध्रके।।१०१।।

त्रिलोचन भगवान् सदाशिव लक्षान्त हैं, अर्थात् उनका दर्शन अन्त में है। वे विरूपाक्ष प्रयासी भगवान् शिव की आँखों के दर्शन कहे गये हैं। वे उसी प्रकार छोटे-से छिद्र में समाये हुए आकाश के समान हैं, जैसे छोटे-से छिद्र में से आकाश दिखाई देता है, उसी प्रकार वे सदाशिव साधना काल में आँख में दृष्टिगोचर होते हैं।।१०१।।

ज्ञानचक्षे किमाश्चार्यं कामकलाप्रदर्शनम्।
माधुर्यं वर्जितसौर्यं सम्राड् विराडादिकम्।।१०२।।

महाश्चर्यमणिमादि इन्द्रजालं प्रपश्यति।
मधुरमूर्तिर्माधुर्यं भावुकरसिकप्रियः॥१०३॥

ज्ञान की दृष्टि में (ज्ञान की आँख) में कामकलाओं का प्रदर्शन होना क्या आश्चर्य है। यही नहीं, उस ज्ञानचक्षु में भावुक रसिक प्रिय व्यक्ति माधुर्य वर्जित सौर्य सम्राट् और विराट् आदि तथा अणिमा, महिमा, लघिमा आदि सब सिद्धियाँ, जो महा आश्चर्य पैदा करने वाली हैं, उनको तथा इन्द्रजाल और मधुर मूर्ति की मधुरता को देखता है।।१०२-१०३।।

तदन्यो नास्ति मधुरोऽतो लिप्सा यथेच्छया।
सुरासिन्धुः सुधासिन्धुर्विषसिन्धुर्विरहजः॥१०४॥

उस काल में सदाशिव के सान्निध्य में पहुंचने पर वहाँ अन्य कोई ऐसी वस्तु नहीं बचती, जिसे प्राप्त करने की इच्छा हो। वहाँ पर सुरा की, सुधा की तथा विष रहित नदी है।।१०४।।

भावाभावो महाभावो द्विविधो भाव उत्तमः।
मननं दर्शनं साक्षाद् दर्शनं सुप्रयोजनम्॥१०५॥

भावाभाव (भाव का न होना) और महाभाव दो प्रकार के भाव उत्तम हैं। मनन ही साक्षात् दर्शन है और दर्शन ही अच्छा प्रयोजन है।।१०५।।

प्रथमे दर्शनलिप्सा द्वितीये पदसेवनम्।
तृतीये चरणाम्बुजामृतपानधारणम्॥१०६॥

प्रथम काल में दर्शन प्राप्त करने की इच्छा होती है। द्वितीय काल में चरणों की सेवा प्राप्त करने की इच्छा होती है तथा तृतीय काल में चरणकमलों से निःसृत अमृत का पान करने की इच्छा होती है।।१०६।।

पुरुषार्थः पञ्चमार्थः परमार्थो विशिष्यते।
पुष्पवन्तश्चन्द्रभानुरेको लीनः प्रकाशितः॥१०७॥

पुरुषार्थ पञ्चमार्थ है तथा परमार्थ सबसे विशेष है। चन्द्रमा और सूर्य पुष्पवान् है। एक लीन होता है, तो एक प्रकाशित है।।१०७।।

अतुल्यप्रकाशः सूर्यः अतुल्यशीतलः शशी।
सुनिर्मलं महाफलं नादबिन्दुसमन्वितम्॥१०८॥

सूर्य अतुलनीय प्रकाश वाले हैं तथा चन्द्रमा अतुलनीय शीतल हैं तथा नाद और बिन्दु जो महाकाल हैं, वह बहुत ही सुनिर्मल हैं। सच्चिदानन्द विभव सकल परमेश्वर से शक्ति उत्पन्न हुई, उसके बाद नाद उत्पन्न हुआ और नाद से बिन्दु

की उत्पत्ति है, ऐसा शारदातिलक में कहा गया है तथा कुलिका तन्त्र के अनुसार ध्यान में पहले बिन्दु, फिर नाद उत्पन्न होता है। नाद से शक्ति पैदा हुई है। नाद रूप महेशानी है और चित् परम कला है। नाद से अर्धबिन्दु की उत्पत्ति हुई है। शारदातिलक में बिन्दु और नाद बीज है। विन्दु शिवात्मक है और बीज है तथा नाद शक्ति है। अर्थात् विन्दु शिव से शक्ति उत्पन्न हुई है, यही अधिक उचित है।।।१०८।।

विना भक्तिम् अन्यमुक्तिः खद्योतरूपकल्पनम्।
अविधेया परा भक्तिः प्रेमफलप्रदायिका।।१०९।।

भक्ति के बिना किसी की मुक्ति होना खद्योत के रूप में कल्पना है, अर्थात् जैसे खद्योत चमक कर बंद हो जाता है, उसी प्रकार बिंना भक्ति के मुक्ति आयेगी, फिर तुरन्त समाप्त हो जायेगी। परा भक्ति अविधेय है तथा वह प्रेम के फल को प्रदान करने वाली है।।१०९।।

अतः प्राणो मनो बुद्धिर्देहसर्वेन्द्रियाणि च।
आत्मसमर्पणं कुर्याद् यथा प्रेमयोजनम्।।११०।।

अतः प्राण, मन, बुद्धि, शरीर और सब इन्द्रियों का आत्मसमर्पण कर देना चाहिये। अर्थात् उक्त सभी को आत्मा में लीन कर देना चाहिये। यही प्रेम का प्रयोजन है।।११०।।

सानन्दं विचरेत् पूर्वमात्मनात्मविवेकतः।
आत्मा पूर्णशक्तिवस्तु शक्तिः सूक्ष्मे निरामयः।।१११।।

उसके बाद प्राण, मन, बुद्धि और समस्त इन्द्रियों को आत्मा को समर्पित करके पूर्व आत्मा के विवेक से सानन्द विचरण करना चाहिये, क्योंकि आत्मा तो पूर्ण शक्तिशाली वस्तु है, क्योंकि वह सूक्ष्म और निरामय रोगरहित है तथा सूक्ष्म में निरोग होने की शक्ति होती है।।१११।।

अनन्तवाचकः शक्तिर्घनचैतन्यरूपिणी।
चैतन्यः शक्तिसम्भूतस्तन्मात्रे हि प्रतिष्ठितः।।११२।।

पूर्ण चैतन्यरूपिणी शक्ति अनन्त वाचक है। चैतन्य शक्ति से उत्पन्न है, जो, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन तन्मात्राओं में प्रतिष्ठित है।।११२।।

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिर्महत्तत्त्वगुणत्रयम् ।
विषयभूतवर्गञ्च देवताजन्मकर्मसु।।११३।।
ब्रह्मलीनं जगत्सर्वं गुह्यलीनं प्रयोजनम्।
निष्कलमद्वितीयञ्च शक्तिगुणादिगोपितम्।।११४।।

इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति ये महत्तत्त्व के तीन गुण हैं तथा विषयभूत वर्ग भी इसी के अधीन हैं। इच्छाशक्ति मन की शक्ति है ज्ञानशक्ति बुद्धि की शक्ति है और क्रियाशक्ति इन्द्रियों की शक्ति है इसी पर सृष्टि चल रही है।

समस्त संसार का ब्रह्म में लीन गुह्य में लीन होना प्रयोजन है। यदि गुह्य में लीन नहीं होता तो यह संसार ही नहीं चलता, अतः इस संसार का गुह्य (गुप्तेन्द्रिय) में लीन होना सृष्टि का प्रयोजन है। निष्कल (निराकार) ब्रह्म अद्वितीय है। यह निराकार ब्रह्म शक्ति और गुण आदि को अपने में छिपाये हुए है।।११३-११४।।

सकलं सर्वसम्पूर्णं पूर्णहरतमोत्तमम्।
एकात्मा हि द्विधा भूत्वा सद्रूपं चिद्घनात्मकम्।।११५।।

सकल (साकार) ब्रह्म सर्वसम्पूर्ण है। पूर्ण हर तमोत्तम है। यह एकात्मा दो प्रकार का होकर सद्रूप और चिद्घनात्मक दो रूप में जब यह शरीरों में है, तब सद्रूप है तथा चैतन्य घनात्मक है।।११५।।

विशेष–यह एक ही आत्मा दो रूप का है। सद्रूप और चिद्घनात्मक। सद्रूप वह है, जबकि वह इस शरीर में रहता है अर्थात् वह उस समय सद् (अस्तित्व) में है तथा वह चैतन्यसमूहात्मक तब होता है जबकि समष्टिरूप चैतन्य परमब्रह्म में रहता है।

सर्वावयवपूर्णञ्च माधुर्यरूपमव्ययम्।
तरुणा करुणा नित्या न वेश्या सर्वमोहिनी।।११६।।
तथैव मोहनं नित्यं प्रेमानन्दप्रवर्धनम्।
सर्वोज्ज्वला उज्ज्वला च उज्ज्वला आसने स्थिता।।११७।।
अनन्तान्तब्रह्माण्डे अद्वित्वद्विप्रतिष्ठिता।
प्रेमानन्दप्रेममयी शुद्धसत्यसनातनम्।।११८।।
आधारश्चिद्घनाकार आथेयश्चित्परात्मनी।
विषयः परमा प्रीतिः सद्रूपं दोषवर्जितम्।।११९।।

माधुर्य रूप कभी नष्ट नहीं होने वाला है तथा वह सब अंगों से पूर्ण है, क्योंकि जैसे तरुण और करुण वेश्या नित्य सबको मोहने वाली नहीं होती, क्योंकि उसकी वह तरुणता (जवानी) तथा करुणा (मोहनशक्ति) सदा सबको मोहने वाली नहीं होती। जब बुढ़ापा आता है, तब उसे कोई नहीं पूंछता। उसी प्रकार परमानन्द को बढ़ाने वाला मोहन नित्य है। वहाँ यह आत्मा उज्ज्वल और सब प्रकार से उज्ज्वल है और वह उज्ज्वल आत्मा आसन पर स्थित है।

चित्घनाकार ब्रह्म ही आधार है तथा चैतन्यरूपिणी परात्मा आधेय है। परम प्रीति विषय है तथा सद्रूप वही है, जो दोषरहित है।।११६-११९।।

विस्फुलिङ्गो जीवात्मनः परमात्मा यथा धनः।
देवानां मूलदेवो हि इन्द्रियभूतदैवतम्।।१२०।।

जीवात्मा की परमात्मा एक चिन्गारी है, जैसे कि बादल की चिन्गारी विद्युत् होती है। देवताओं के मूल देवता इन्द्रियों और पंचभूतादि के देवता हैं।।१२०।।

बीजभूते न दोषः स्याद् दोषगुणगुणत्रयम्।
गुणसाम्ये महत्तत्वं प्रकृतिः शक्तिवाचिनी।।१२१।।

बीजभूत होने पर कोई दोष नहीं होता, क्योंकि जब प्रकृति बीज भूत (मुख्यकारण) होती है तब उसमें कोई दोष नहीं होता; क्योंकि दोष और गुण त्रयात्मक होते हैं। गुणों की समानता होने पर महत्तत्त्व वाली प्रकृति शक्ति वाचिनी होती है।।१२१।।

विमर्श—यहाँ पर सांख्य का आश्रेय लेकर यह स्पष्ट किया है कि मूल-प्रकृति विकार रहित होती है। सांख्य में कहा गया है—'मूलप्रकृतिरविकृति प्रकृति विकृतयः सप्त।'

शक्तिः शान्ता शक्तिः कान्ता शक्तिर्बन्धपरमेश्वरी।
न भेदः प्रकृत्यां ब्रह्म चिच्छक्त्योश्चित्परात्मनोः।।१२२।।

शक्ति ही शान्त है, शक्ति ही कान्त है, शक्ति ही बन्धपरमेश्वरी है। प्रकृति (शक्ति) में भेद नहीं है, क्योंकि चैतन्य तत्त्व और प्रकृति तत्त्व में तथा चैतन्य तत्त्व तथा परमात्मा में कोई भेद नहीं है।।१२२।।

प्रकृतिर्बहुरूपा च मिश्रे विकृतिर्बहुला।
न दोषो जायते ब्रह्म निर्लिप्तं शक्तिसङ्गमे।।१२३।।

प्रकृति अनेकों रूप वाली है, अर्थात् संसार के जितने भी चराचर पदार्थ हैं, वे सब प्रकृति के अनेक रूप हैं, क्योंकि यह प्रकृति अनेक तत्त्वों का मिश्रण है, इसलिये यह बहुत प्रकार की है। ब्रह्म वैसे निर्दोष है, परन्तु शक्ति से मिल जाने पर भी उसमें कोई दोष नहीं होता।।१२३।।

चिच्छक्तिः परमात्मा च देहप्राणसमन्वितः।
महामाया भवेत् काया इन्द्रियदेवसंयुता।।१२४।।

चित् शक्ति शरीरों में चेतनता लाने वाली शक्ति ही परमात्मा है तथा देह और प्राण से समन्वित रहते हुए भी वह परमात्मा है, अर्थात् परमात्मा और इस

शरीर में रहने वाले आत्मा में कोई भेद नहीं है। इन्द्रिय रूपी देवों से युक्त यह शरीर महामाया है, जिसे प्रकृति भी कहते हैं।।१२४।।

तनूरुहतटस्थादित्रिगुणशक्तिव्यापितः।
निर्मलमनलयोगे सुवर्णवर्णः सुन्दरः।।१२५।।
तरलः कठिनो दीप्तिस्तथा ब्रह्म परात्मनः।
कठिने एकरूपं हि द्विरूपमानुषङ्गिकम्।।१२६।।
स्वरूपं स्वरूपं वर्णघर्षणे मणिदर्शनम्।
कालकूटोऽप्रकटो विषेण कालनाशकः।।१२७।।

तनूरुह तटस्थ आदि त्रिगुणशक्ति से व्यापित हैं। अग्नि तत्त्व के योग में सुवर्ण का वर्ण निर्मल और सुन्दर हो जाता है। इस प्रकार स्वर्ण के तीन रूप हैं। तरल, कठिन और दीप्ति। अर्थात् आग से तपाने पर सोना तरल हो जाता है, फिर वह कठिन होता है। तब उसमें चमक पैदा होती है। उसी प्रकार परात्मा का ब्रह्म है। कठिन होने पर एकरूप होता है तथा जब आग से मिलता है, तब उसके दो रूप होते हैं, एक तरल और एक ठोस। स्वरूप स्वरूप है वर्ण घर्षण करने पर मणि का दर्शन होता है। कालकूट अप्रकट है, जो विष के द्वारा काल नाशक है। जैसे कालकूट विष में मारने की शक्ति है; परन्तु वह दिखाई नहीं देती।१२५-१२७।।

वरं विषं हरेद् विष इन्द्रिययोगसाधनम्।
बहुभाग्यप्रसादेन पराभक्तिप्रसादतः।।१२८।।
ततो कुलगुरुं वेत्ति सहस्रदलसहितम्।
अनर्पितं चरित्रं स्यात् करुणयामृतप्रदम्।।१२९।।

इन्द्रिययोग साधन विष है और वह विष को हरना चाहिये। बहुत भाग्य के प्रसाद से, पराभक्ति के प्रसाद से साधक सहस्रदल सहित कुलुगुरु (सदाशिव) को जानता है, तब उनकी करुणा के द्वारा अमृत प्रदान करने वाला अनर्पित चरित्र होना चाहिये।।१२८-१२९।।

चिन्तामणिमणिपुरे इष्टरूपे प्रकाशितम्।
कुलपुरे स्वरूपञ्च कुलपुरे तदंशकम्।।१३०।।

अतः जब अनर्पित चरित्र होगा, तब चिन्तामणि नाम अभीष्ट पुर में वह आत्मा प्रकाशित होता है। तब कुलपुर में स्वरूप होता है तथा कुलपुर में उसका अंश होता है।।१३०।।

चन्द्रपुरे पूर्णत्वं च अर्कपुरोत्तमोत्तमम्।
मध्यपुरे गोलोकञ्च नित्यं वृन्दावने हरिः।।१३१।।

चन्द्रपुर में पूर्णत्व (पूर्णता) है तथा सूर्य पुर उत्तम से भी उत्तम पुर है। मध्यपुर में गोलोक है। वृन्दावन में नित्य भगवान् कृष्ण विद्यमान हैं।।१३१।।

वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।
श्मशानानलो यज्ञाग्निरग्निरेकत्त्ववाचकः।।१ ३ २।।

वृन्दावन को छोड़कर एक पद भी नहीं चलता है। श्मशान की अग्नि ही यज्ञाग्नि है तथा वह अग्नि ही एकता का वाचक है। अर्थात् गोलोक छोड़ कर जीव एक पैर भी नहीं चलता है और फिर वह श्मशान की अग्नि में भस्म होकर सब तत्त्वों की एकता प्राप्त कर परमपद तत्त्व में मिल जाता है। श्मशान की अग्नि उसकी यज्ञाग्नि है, वही उसे एकत्व को प्राप्त कराती है।।१३२।।

तथा वृन्दावनं सर्वं वृन्दावनप्रवाचकः।
गोलोको गोलोको नित्यं तथा वृन्दावनपुरी।।१ ३ ३।।
अच्युतो नित्यपुरश्च अनित्यो योनिजो यतः।
एककालो न नश्यन्ति अतो नित्यः सुसङ्गतः।।१ ३ ४।।

तथा सब वृन्दावन वृन्दावन का प्रवाचक है। अर्थात् वास्तव में वृन्दावन वृन्दावन ही है। अर्थात् वृन्दावन की उपमा वृन्दावन से ही दी जा सकती है, क्योंकि ब्रह्मवैवर्त पुराण में वृन्दावन को अत्यन्त गुह्य और गुह्यतर तीर्थ माना गया है। वह स्थान अत्यद्‌भुत रहस्यों का रहस्य है। वह स्थान सर्वशक्तिमय है। वह स्थान ब्रह्माण्ड के ऊपर कहा गया है। इस स्थान पर पूर्ण ब्रह्म का सुख नित्य ऐश्वर्य तथा नित्यानन्द उपलब्ध है। यह वृन्दावन इस पृथ्वी पर इतना महान् है कि स्वयं वैकुण्ठ उसके एक अंश का अंश है। इस वृन्दावन के कारण ये पृथ्वी तीनों लोकों में धन्य है। यह स्थान मथुरा मण्डल में है तथा यह माधुर मण्डल सहस्त्र पत्र कमलाकार है। इसके पूर्व में पाँच वन कहे गये हैं। वहीं पर गोकुल नामक महावन है तथा रम्य मधुवन है। वह गोलोक नित्य गोलोक है तथा वृन्दावनपुरी भी नित्य है तथा वह वृन्दावन अच्युत पुर है, अर्थात् वह कभी भी नष्ट होने वाला नहीं है, नित्य है। भले ही वहाँ योनि से पैदा होने वाले प्राणी अनित्य हों। वे एक काल में नष्ट नहीं होते हैं, इसलिये उनको नित्य और सुसंगत कहा गया है।

अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण का वह नित्य पुर है तथा वे भगवान् श्रीकृष्ण नित्य हैं, क्योंकि वे योनि से उत्पन्न नहीं हैं तथा सभी योनि से उत्पन्न होने वाले अनित्य होते हैं। वे एक काल हैं तथा कभी नष्ट नहीं होते हैं, इसलिये नित्य और सुसङ्गत हैं।।१३३-१३४।।

नित्यं वृन्दावनं विद्धि अङ्गे लोमानि सर्वतः।
वृन्दावने घनश्यामो घनश्यामाङ्गिनी खगः॥१३५॥

इसलिये वृन्दावन को नित्य समझो, शरीर पर सब ओर लोम है, उसी तरह यह वृन्दावन है। वृन्दावन घनश्याम भगवान् श्रीकृष्ण है तथा घनश्याम का अङ्गिनी खग पक्षी है।।१३५।।

हितार्थममरलोकानां कृष्णोस्तिष्ठति बालवत्।
कृष्णवर्णः शशिर्यत्र तत्र द्वारावती स्थिता॥१३६॥

वहाँ वृन्दावन में समस्त देवताओं के हित के लिये बालवत् भगवान् श्रीकृष्ण स्थित हैं। जहाँ पर कृष्णवर्ण के चन्द्रमा हैं, वहाँ पर द्वारका पुरी स्थित है।।१३६।।

तत्र कृष्णश्च राधा च चन्द्रे सूर्ये नराकृतिः।
ब्रह्मा चेद् गुप्तो भुक्तः स्याद् मेरुर्ब्रह्म सनातनम्॥१३७॥

वहाँ पर कृष्ण और राधा मनुष्य की आकृति सूर्य और चन्द्रमा हैं। तथा ब्रह्मा यदि गुप्त भुक्त हों तो वह सनातन मेरु पर्वत हैं, अर्थात् सुमेरु पर्वत ब्रह्मा के रूप में कृष्ण और राधा के भक्त हैं।।१३७।।

आदिमेरुः स्वर्गयोगे ब्रह्मस्थानमुदाहृतः।
चिद्घनः कालिकाकुलमानन्दो ब्रह्मविग्रहः॥१३८॥

आदि मेरु को स्वर्ण के योग में ब्रह्मस्थान कहा गया है। चिद्घन कालिकाकुल को चिद्घन कहा गया है तथा ब्रह्म का शरीर ही आनन्द है।।१३८।।

माधुर्यं रसराज्यञ्च चैतन्यं तारिणी परा।
तत्सवितुर्वरणीयं बाला श्रीभानुकन्यका॥१३९॥

माधुर्य सब रसों का राजा है, अतः माधुर्य और रसराज और चैतन्य परा तारिणी है। अतः तत्सवितुर्वरणीय बाला श्रीभानुकन्यका राधा हैं। जो चैतन्य रूप परा और तारिणी हैं।।१३९।।

न भेदः सच्चिदानन्दे वेदा रसप्रयोजकाः।
इक्षुदण्डो भवेत्पिण्डो रस आस्वादबोधकः॥१४०॥

सच्चिदानन्द ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। वेद ही रस के प्रयोजक हैं, क्योंकि इक्षुदण्ड (ईख का दण्ड अर्थात् गन्ना) एक मधुर रस का पिण्ड होता है तथा उसका रस आस्वाद का बोध कराने वाला होता है। अतः सच्चिदानन्द रस का पिण्ड (गन्ना) है तथा वेद उसका रस है, जो सच्चिदानन्द के स्वादु को बताते हैं।।१४०।।

चिद्घनस्थूला ख्याता रसः सूक्ष्मः परात्मनि।
मिष्ट इष्टो भवेद् ह्लादः सर्वदा ज्योतिसंयुतः।।१४१।।

परमात्मा में चिद्घन स्थूल कहा गया है तथा उसमें रस सूक्ष्म कहा गया है। अर्थात् जैसे गन्ना स्थूल है तथा उसमें जो रस है, वह सूक्ष्म है। यही चिद्घन रूप आत्मा एक स्थूल दण्ड है तथा उसमें जो असीमित रस है, परमानन्द है, वह सूक्ष्म है। तथा जो मीठा है, वह सबको इष्ट होता है तथा आनन्ददायक होता है तथा सर्वदा ज्योतिसंयुत होता है।।१४१।।

स्थूलपिण्डो मिश्रखण्ड आधाराधेयसन्ततः।
सच्छब्दवाचको नित्या आधेया रसरूपिणी।।१४२।।

स्थूल पिण्ड इक्षुदण्ड और मिश्री का टुकड़ा दोनों में आधार आधेय सम्बन्ध है। इक्षुपिण्ड आधार है तथा मिश्री आधेय है, क्योंकि इक्षुदण्ड से मिश्री बनी है। इक्षुदण्ड आधार में आधेय मिश्री स्थित है। आधेय जो मिश्री रसरूपिणी है और मिश्री मीठा होने वाले सत् शब्द की वाचक है, अर्थात् उस मिश्री में रस है, यह कहा ही जा सकता है।।१४२।।

सर्वव्यापी चिदाधारा ब्रह्मरूपा सनातनी।
आनन्दो ब्रह्मणो रूपं चैतन्यं शक्तिसंस्थितम्।।१४३।।

वह रसरूपिणी सच्छब्द वाचक जो शक्ति है, वह सर्वव्यापी चित् आधार ब्रह्मरूपा और अत्यन्त प्राचीन है। आनन्द ब्रह्म का रूप है। जो चैतन्यशक्ति (आत्मा) में स्थित है।।१४३।।

महाकाशो घटाकाशो ह्यखण्डखण्डव्यापितः।
सन्दिनी ह्लादिनी मुक्ता सच्चिद्रूपा परात्मनि।।१४४।।

वह आनन्द महाकाश है। जैसे महाकाश से सब कुछ आवृत है, उसी प्रकार इस परमानन्द ब्रह्म में सब कुछ प्रतिबिम्बित है, यही घटाकाश है तथा अखण्ड और खण्ड सब कुछ इसमें व्यापित है। यह शक्ति इस ब्रह्म में सन्दिनी आनन्द प्रदान करने वाली, मुक्ता और सत् चित् रूप वाली है।।१४४।।

सच्चिदंशो न चेद् ध्वंसः अखण्डः खण्डकल्पना।
अखण्डो भासुरो भानुः शराबजलसंस्थितः।।१४५।।

सत् और चिद् का अंश कभी नष्ट नहीं होता है, वह अखण्ड है, परन्तु उसमें खण्ड की कल्पना की जाती है। जैसे यह संसार और उसके प्राणी सब अलग-अलग दिखाई देते हैं, परन्तु वे हैं सब रूप ब्रह्म ही हैं। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या का भाव यहाँ

प्रदर्शित है। जैसे कि किसी पात्र में स्थित जल में सूर्य खण्ड रूप में अर्थात् अलग दिखायी देते हैं, परन्तु वे सूर्य तो एक ही हैं, उसी तरह वह भिन्न-भिन्न शरीर रूप में दिखाई देने वाला है, तो एक ही, परन्तु अलग-अलग दिखाई देता है।।१४५।।

अस्थिरा सन्दिनी यत्र ह्लादिनी अस्थिरा भवेत्।
नित्यानन्दो भवेच्छिवो जीवोऽनित्यकल्पना।।१४६।।

जहाँ कि सन्दिनी अस्थिर है तथा आनन्दप्रदायिनी ह्लादिनी भी अस्थिर होती है, शिव नित्यानन्द है, जीव अनित्यकल्पना है।।१४६।।

पुष्पवन्तो ह्लादयोगो योगचन्द्रदिवाकरः।
परमाराध्या भवेदाद्या चिद्घनशक्तिरूपिणी।।१४७।।

ह्लादयोग पुष्पवन्त है तथा वह योग चन्द्र और सूर्य है। चिद्घनरूपिणी (समष्टि, ब्रह्म युक्त आत्मा) आद्याशक्ति परम आराध्य है।।१४७।।

दक्षो ह्यक्षः सदङ्गश्च द्वितीया द्वितीया परा।
वामा रामा नन्दबाला सकला सफला यतः।।१४८।।

दक्ष ही अक्ष है और सच्चा अंग है, द्वितीया परा शक्ति है। वामा रामा नन्दबाला (राधा) है, जो सकला (समस्त कलाओं वाली) है और फलों को प्रदान करने वाली है।।१४८।।

ब्रह्मरन्ध्रे महाकालो ब्रह्मवक्त्रे (रन्ध्रे) च कालिका।
प्रकाशनयनं ज्योतिः श्रुतिस्मृतिनिगमजः।।१४९।।

ब्रह्मरन्ध्र में महाकाल (शिव) है और ब्रह्मरन्ध्र कालिका है। श्रुति स्मृति और निगम से उत्पन्न ज्योति (प्रकाश) नेत्र है।।१४९।।

सुपुष्पगन्धरसिका रसिका नायिकाद्वयः।
तिमिरबाणजालश्च पिण्डब्रह्माण्डो मस्तकः।।१५०।।

सुन्दर पुष्प की गन्ध युक्त रस वाली रसिका दोनों नायिका हैं। अन्धकार रूपी बाण का समूह पिण्ड ब्रह्माण्ड मस्तक है।।१५०।।

तिमिरारिर्मुखद्वारि करगतः पदानतः।
हस्ताध्वन्तं खण्डः खण्डः शाणितकरधारणे।।१५१।।

अन्धकार के शत्रु सूर्य अपनी किरणों से युक्त होकर पदानत हैं, वे अपनी किरणों से अन्धकार का खण्ड-खण्ड कर रहे हैं।

अभयवरदा नित्या दक्षिणा दक्षिणागमे।
द्विजराजो भवेदस्तं नगराजप्रदर्शने।।१५२।।

अन्धकार के शत्रु, अभय रूपी वर को देने वाली नित्या दक्षिणा दक्षिण आगम में है। द्विजराज चन्द्रमा नगराज (हिमालय) के प्रदर्शन में अस्त होते हैं।।१५१-१५२।।

वक्ष (रक्ष) लक्षं शैलसुता त्रिपुरे सृष्टिसंस्थिता।
समानमाहुतिस्थानं वदनं करालं मतम्।।१५३।।

वक्ष की रक्षा करने वाली शैलसुता त्रिपुर में सृष्टि संस्थित है। उनका कराल मुख समान आहुति का स्थान माना गया है।।१५३।।

मध्यक्षीणचरतटो विस्तीर्णसरितस्तटः।
अभ्रान्तो भवति शान्तो भ्रान्तः शान्तः समागतः।।१५४।।

मध्य में क्षीण चर तट नदी का तट विस्तीर्ण है। अभ्रान्त अर्थात् भूला हुआ नहीं है, वह शान्त होता है, भ्रान्त और शान्त समागत है।।१५४।।

धारिणीमानिनीप्रायः कम्पमानः क्षणे क्षणे।
कालग्रासे सर्वनाशे कालग्रासे निपातितः।।१५५।।

यह काली धारण करने वाली है, मानिनी है, अतः प्रायः यह क्षण-क्षण पर कांपती रहती है। काल द्वारा ग्रास करने पर सर्वनाश होने पर यह गिरा देती है।।१५५।।

कालसंग्रसनात् काली महाकालविमोचिनी।
वाराणसी नित्यकाशी रामचन्द्रवने स्थिता।।१५६।।
कुलनाथो विश्वनाथो ध्यानज्ञानपरायणः।
इहामुत्र विरागश्च भुक्तिमुक्तिपदप्रदः।।१५७।।

काल के द्वारा सम्यक् रूप से ग्रसने के कारण यह काली महाकाल विमोचिनी है। वाराणसी नित्यकाशी है, जो रामचन्द्र वन में स्थित है। यहाँ ध्यान ज्ञान परायण कुलनाथ बाबा विश्वनाथ विराजमान हैं, जो इहलोक और परलोक में भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाले हैं।।१५६-१५७।।

ऊरुभानुः किरणसूस्तरुः करिकरस्तथा।
परमसम्पदपदमुक्तिःपदद्वयव्यवस्थितः ।।१५८।।

ऊरुभानु (विशाल सूर्य) किरण को पैदा करने वाले और करिकर वृक्ष परम सम्पत्ति और पदमुक्ति दो पद स्थित हैं।।१५८।।

भक्तिपराः केचिद्भावाः प्रेमभावाश्च उज्ज्वलाः।
न वाञ्छति शुद्धमतिः निर्वाणगतिवञ्चना।।१५९।।

कुछ भाव भक्तिपरक होते हैं तथा वे उज्ज्वल प्रेमभाव होते हैं। परन्तु शुद्धमति मनुष्य यह नहीं चाहता है, क्योंकि निर्वाण गति वञ्चना होती है।।१५९।।

सनन्दस्त्रिविधो बन्धः प्रवर्तः साध्यसिद्धकः।
सिद्धानां प्रथमा व्याख्या साधनं मध्यवाचकम्।।१६०।।

सानन्द तीन प्रकार का बन्ध है। वह प्रवर्तक है तथा साध्य की सिद्धि कराने वाला है। सिद्ध पुरुषों की प्रथम व्याख्या है और साधन मध्य का वाचक है।।१६०।।

प्रवर्तं त्रिविधं वर्त्म क्रमे शृणु स्वतन्त्रकम्।
कृष्णचन्द्रो भवेत् कालः कालिका भानुकन्यका।।१६१।।

क्रम में प्रवर्त क्रम में लगना तीन प्रकार का मार्ग है, उस स्वतन्त्र को सुनो। कृष्ण चन्द्र काल हैं तथा वृषभानु की पुत्री कालिका हैं।।१६१।।

पिण्डखण्डो वक्त्रखण्डोऽष्टस्पष्टो गृहान्तरः।
ब्रह्माण्डो मांसपिण्डश्च विविधं ग्रहणं यथा।।१६२।।
राहुचन्द्रो ग्रसेत् सूर्यं विपरीतो विपरीतम्।
मन्त्रयोगः प्राणयोगः क्रियाज्ञानसमन्वितः।।१६३।।
भक्तियोगः समायोगः पञ्चयोगः उदाहृतः।
योगो बहुविधः प्रोक्तः पञ्चयोगो गरीयान्।।१६४।।

पिण्डखण्ड वक्त्र खण्ड अष्टस्पष्ट ग्रहान्तर ब्रह्माण्ड और मांस पिण्ड अनेकं प्रकार के ग्रहण हैं। राहु चन्द्र और सूर्य को ग्रस लेते हैं। विपरीत विपरीत को ग्रसता है। मन्त्रयोग, प्राणयोग, क्रिया ज्ञान समन्वित योग, भक्ति योग और समायोग, ये पाँच योग बताये गये हैं। वैसे तो योग अनेकों प्रकार के कहे गये हैं, परन्तु उपर्युक्त पाँच योग ही महान् हैं।।१६२-१६४।।

सर्वयोगः सहयोगो मन्त्रयोगः सफलता।
मन्त्रो हि परमाराध्या देवता बीजपूर्विका।।१६५।।

सभी योग सहयोगी योग हैं। मन्त्रयोग ही सफलता वाला योग है। मन्त्र ही परम आराध्य है तथा देवताओं व बीजपूर्विका अर्थात् देवताओं को सिद्ध करने का पूर्व बीज है, पूर्व कारण है। पहला कारण है।।१६५।।

मन्त्रहीनः क्रियाहीनो ज्ञानहीनो विडम्बितः।
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः।।१६६।।
शतकोटिजपेनैव तस्य सिद्धिर्न जायते।

जो मन्त्रहीन है, यज्ञादि क्रिया नहीं करता है, ज्ञानहीन है, विडम्बित अर्थात्

व्याकुल है तथा मन्त्र के अर्थ को, मन्त्र की चेतनता को एवं योनिमुद्रा को जो नहीं जानता है, वह व्यक्ति यदि सैकड़ों करोड़ जप करे, तब भी सिद्धि (सफलता) नहीं होती है।।१६६-१६६.५।।

अष्टाङ्ग प्राणयोगश्च पञ्चाङ्गः फलति महान्।।१६७।।
परिचर्या चतुःषष्टि उपचारात्मकक्रिया।
ज्ञानयोगे भूतशुद्धिः ब्रह्मज्ञाननिरूपणम्।।१६८।।

अष्टांग योग प्राणयोग और पंचांग महान् फल देते हैं।

परिचर्या चौंसठ प्रकार उपचारात्मक क्रियाएँ हैं। ज्ञान के योग में भूतशुद्धि होती है, जिसमें ब्रह्म ज्ञान का निरूपण है।।१६७-१६८।।

विमर्श—महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त के व्यापारों को रोकना ही योग है। उन्होंने योग के आठ अंग बताये हैं। वे हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि। यम का अर्थ है पांच कर्मों से स्वयं को रोकना। वे पांच कर्म हैं—१. अहिंसा : अहिंसा का अर्थ है—हत्या न करना परन्तु इतना ही नहीं, अहिंसा का अर्थ है—शब्दों से, मन से और कर्मों से किसी को हानि न पहुंचाना, २. सत्य बोलना, ३. अस्तेय—चोरी न करना, ब्रह्मचर्य चेतना को ब्रह्म के ज्ञान में स्थिर करना, ५. अपरिग्रह—आवश्यकता से अधिक धन संचय न करना। नियम—व्यक्तिगत नैतिकता ये पांच हैं—१. शौच—शरीर और मन की शुद्धि, २. सन्तोष, ३. तप—कठिन श्रम करना, ४. स्वाध्ययाय—आत्मचिन्तन, ५. ईश्वर के प्रति पूर्ण समपर्ण। ३. आसन का अर्थ है—शारीरिक व्यायाम, ४. प्राणायाम—श्वास रोकने आदि क्रियायों द्वारा प्राण पर नियन्त्रण। ५. प्रत्याहार—इन्द्रियों को वश में रखना, ६. धारणा—एकाग्रचित्त होना, ७. ध्यान—लगातार ध्यान करना। समाधि—आत्मा से जुड़ना। प्राणयोग—प्राण का अर्थ योगानुसार उस वायु से है, जो हमको जीवित रखती है। यही वायु प्राण या जीवात्मा कही जाती है। इसका स्थान हृदय में है। इसे जानना चिरकाल तक जीना है। वायु के पांच प्रकार हैं—१. व्यान चर्वी या मांस बनाने वाली, २. समान—हड्डियों में रहकर सन्तुलन बनाने वाला, ३. अपान नीचे जाने वाली, ४. उदान—ऊपर जाने वाली (डकार के रूप में) ५. प्राण—रक्त में रहने वाली।

भक्तियोगः क्रियामुक्तः कामसङ्कल्पवर्जितः।
श्रद्धा शुद्धा व्यभिचारो दृढभावपरान्वितः।।१६९।।

भक्तियोग क्रिया से मुक्त है, वह कामसङ्कल्प से रहित है। श्रद्धा शुद्धा भक्ति दृढ़ भाव से परान्वित व्यभिचार है।।१६९।।

वैराग्यं मनोभूमिश्च समायोगेन रोपणम्।
भक्तिवारिजलचक्रे मन्त्रयन्त्रे प्रसेचनम्॥१७०॥

मनोभूमि में वैराग्य को सम्यक् योग द्वारा आरोपित करना चाहिये। उसके बाद भक्तिरूप जलचक्र में मन्त्ररूपी यन्त्र से सिञ्चन करना चाहिये॥१७०॥

उष्णज्ञानं प्राणध्यानम् आकाशस्थलविस्तृतम्।
कल्पवृक्षो भवेल्लक्ष्यः फलपुष्पसमन्वितः॥१७१॥

प्राण का ध्यान उष्ण ज्ञान है, जो आकाश और स्थल तक फैला हुआ है। साधक का लक्ष्य पुष्प फल से युक्त कल्पवृक्ष ही होता है, अर्थात् सब इच्छाओं की पूर्ति करना ही साधक का लक्ष्य होता है॥१७१॥

प्रथमे आत्मज्ञानं हि द्वितीये विद्याचिन्तनम्।
तृतीये शिवतत्त्वं च सकलनिष्कलात्मकम्॥१७२॥

सबसे पहले आत्मज्ञान करना चाहिये। फिर उसके बाद विद्या का चिन्तन करना चाहिये और साकार निराकारात्मक शिवतत्त्व का ध्यान करना चाहिये॥१७२॥

त्रिविधं त्रिविधं सर्वं क्रमेण श्रृणु सादरम्।
देहज्ञानेन दासोऽहम् आत्मज्ञाने तदंशकम्॥१७३॥
ब्रह्मज्ञानेन पूर्णोऽहम् इति मे निश्चलात्मनः।
वीर्यरूपी पिता सुतो गर्भाभारे प्रवेशनम्॥१७४॥
न भेदो भेदः प्रत्यक्षः सेव्यसेवकरूपकः।
स्थूलसूक्ष्ममात्रं भेदो बीजं वृक्षे यथा भवेत्॥१७५॥

सब तीन ही प्रकार के होते हैं, इसलिये आदर सहित क्रम से सुनो। उन तीन में देहज्ञान से मैं आपका दास हूँ और आत्मज्ञान से मैं आप ब्रह्म का अंश हूँ। ब्रह्मज्ञान से मैं भी पूर्ण ब्रह्म हूँ, इस प्रकार यह मेरा मन निश्चल है। अर्थात् जब तक मनुष्य को ब्रह्मज्ञान नहीं होता, तब तक वह उस सदाशिव का वह शरीर से दास होता है तथा जब आत्मज्ञान होता है कि मैं एक आत्मा हूँ, तब वह उस परमात्मा का अंश हो जाता है तथा जब आत्मज्ञान के बाद ब्रह्मज्ञान हो जाता है, तब वह पूर्ण ब्रह्म हो जाता है, क्योंकि वह उसी में लिप्त हो जाता है। अर्थात् ब्रह्म में और उसमें कोई भेद नहीं होता, अर्थात् वह भी ब्रह्म ही हो जाता है।

जीव का पिता वीर्यरूपी है। वह वीर्यरूपी पिता ही पुत्र बन कर गर्भ गृह में प्रवेश करता है। अतः पिता और पुत्र में कोई भेद नहीं है। भेद है, तो वह प्रत्यक्ष रूप से सेव्यसेवक रूप है तथा वह भेद स्थूल सूक्ष्म मात्र का है, अर्थात् यह देह

स्थूल है, तो आत्मा और ब्रह्म सूक्ष्म है तथा इनमें यही भेद है, जैसा कि वृक्ष और बीज में होता है। वृक्ष में बीज होता है, परन्तु वह दिखाई नहीं देता तथा बीज में भी विशाल वृक्ष छिपा रहता है। वह भी सूक्ष्म ही है।।१७३-१७५।।

भेदाभेदौ विभेदश्च केवलभावकल्पनम्।
विस्फुलिङ्गे न च भेदोऽनले सूर्यमण्डले।।१७६।।

भेद, अभेद और विभेद ये सब केवल भावों की कल्पना है। जैसे कि अग्नि और सूर्यमण्डल के विस्फुलिंग (उष्णता) में कोई भेद नहीं होता।।१७६।।

सर्वव्यापी घटरूपी रसज्योतिर्यथा स्थितः।
आत्मज्ञानं सख्यध्यानमेकांशेन स्थितो जगत्।१७७।।

सर्वव्यापी और घटरूपी रसज्योति जैसे स्थित है और आत्मज्ञान और उस ब्रह्म का ध्यान एक अंश से संसार में स्थित है, अर्थात् जिस प्रकार रस का स्वादु तो सर्वव्यापी है, मीठा है, तो वह सर्वत्र मीठा है तथा यदि वह घटरूप में है, तब भी मीठा है। इसी तरह आत्मज्ञान और उस ब्रह्म का ध्यान दोनों में एकता और सर्वव्यापकता है।।१७७।।

सुवर्णं निर्मलं सत्त्वं धातुयोगे जडात्मकम्।
दहनपवनयोगे स्वत्वगुणस्वरूपकम्।।१७८।।

स्वर्ण निर्मल और सत्त्व रूप है, परन्तु धातु के योग में वह जडात्मक हो जाता है। अर्थात् प्योर सोना रह नहीं सकता, जब उसमें कोई धातु मिलायी जाती है, तब वह ठोस आभूषण के रूप में हो जाता है, क्योंकि वह जब आग में तपाया जाता है, तब अपना गुण प्रकाशित करता है।।१७८।।

ब्रह्मज्ञानं द्विधा ध्यानं सकलनिष्कलात्मकम्।
सकलो द्विविधाकारः सेव्यसेवके वर्तते।।१७९।।

ब्रह्मज्ञान दो प्रकार के ध्यान का विषय है। वह है सकल और निष्कलात्मक अर्थात् साकार और निराकार। साकार दो प्रकार का होता है, जो सेव्य (सेवनीय व्यक्ति) में तथा सेवक में होता है।।१७९।।

विमर्श–सेव्य का अर्थ है जिसकी सेवा की जाती है, वह कोई भी देवता या व्यक्ति तथा सेवक होता है सेवा करने वाला व्यक्ति।

भावभेदे भेदभावो भूतगुणः परस्परः।
तत्त्वांशे कनकं सर्वं न भेदो भेदवाचकः।।१८०।।

पंचभूत और उनके गुणों में परस्पर भावभेद में भेद भाव है, अर्थात् उनके

होने में भेद हैं। पंचमहाभूत स्थूल है, तो उनके गुण शब्द स्पर्श आदि सूक्ष्म हैं। तत्त्व के अंश में सब सोना में कोई भी भेद बताने वाला भेद नहीं है। चाहे वह पिघला हुआ सोना हो अथवा जड़ीकृत आभूषण रूप में हो, तत्त्व एक ही है।।१८०।।

अवज्ञः स कण्ठकेशचरणाभरणादिकः।
चरणाभरणवत् सदा सादिभावप्रपूरितः।।१८१।।

बेचारा वह कण्ठ केशचरणादि का आभरण बनता है और चरणों में आभरण के समान सदा सादिभाव से पूरित रहता है।।१८१।।

विमर्श—सादिभाव का अर्थ है—अपने पूर्णभाव से।

तदन्यभावपूर्णश्च क्रमे कण्ठशिरोगतः।
प्रायशः निष्कलभावः शान्तभावे प्रतिष्ठितः।।१८२।।

वह अन्य भाव से पूर्ण से क्रम में कण्ठ और शिरोगत हो प्रायशः निष्कल भाव से शान्तिभाव में प्रतिष्ठित होता है।।१८२।।

यदि वा गुरुकारुण्ये लभते बीजमव्ययम्।
वेदागमविवेकेन प्रथमे बीजरोपणम्।।१८३।।

यदि कोई साधक गुरु की दया होने पर कभी प्रभाववान नष्ट होने वाले बीज मन्त्र को प्राप्त कर लेता है, तब वेदों और आगम (तन्त्र शास्त्र) के विवेक से प्रथम में बीज का आरोपण होता है।।१८३।।

क्रमे स्कन्धः शाखा वल्लिः पुष्पवन्तं निगमजम्।
फलोद्भूतं त्रिमतञ्च पक्वे फलं तृतीयकम्।।१८४।।

जैसे क्रम से वृक्ष पर शाखायें, लतायें और फूल आते हैं, उस तरह क्रम से निगम से ज्ञान उत्पन्न होता है। फलों का उत्पन्न होना बीज की तीसरी स्थिति है, पकने पर फल तीसरी स्थिति है।।१८४।।

मधुरं मधुरं श्रेष्ठम् अतिसुमधुरं महान्।
प्रवर्तवर्त्म मधुरं नीलचेलमती क्रिया।।१८५।।

मधुर (मीठा) मधुर (आनन्ददायक) होता है तथा वह श्रेष्ठ होता है तथा अत्यधिक सुमधुर तो महान् होता है। मधुर प्रवर्त करने का मार्ग है तथा नील चेलमती क्रिया ही मधुर है।।१८५।।

विमर्श—नीलचेलमती क्रिया नीले वस्त्र पहनने की क्रिया है।

साधको द्विविधो बोध्यः सचेलो वस्त्रवर्जितः।
सचेले गुप्तभावश्च प्रकाशश्च दिगम्बरे।।१८६।।

साधक दो प्रकार के जानने चाहियें। सचेल (वस्त्रयुक्त) तथा वस्त्र रहित। वस्त्रयुक्त साधक में गुप्तभाव होता है तथा वस्त्रविहीन साधक में प्रकाश होता है।।१८६।।

सिद्धे मनोगतो भावः सचेलो यतिरम्बरे।
सम्बन्धेन भवेद् बन्धो बन्धमूलक्रियां चरेत्।।१८७।।

सिद्ध होने पर मनोगतभाव वाला वस्त्रहीन संन्यासी आकाश में विचरण करता है। संबंध से बन्धन होता है, इसलिये साधक को बन्धनमूल क्रिया का आचरण करना चाहिये।।१८७।।

श्रेष्ठे नष्टे साधारणे सम्बन्ध एकरूपतः।
कायिकवाचिकव्याप्तं मानसं साधनत्रयम्।।१८८।।

श्रेष्ठ में नष्ट में और साधारण में सम्बन्ध एक रूप से होता है। कायिक (शारीरिक), वाचिक (वाणी वाला) और मानसिक साधन तीन प्रकार के होते हैं। अर्थात् शरीर से सम्बन्ध बातचीत द्वारा सम्बन्ध और मन से सम्बन्ध इस प्रकार सम्बन्ध तीन प्रकार के हुए।।१८८।।

कायिकं स्थूलरूपं च शरीरसाधनं महत्।
स्थूलगन्धस्थूलपुष्पस्थूलनैवेद्यासंयुतम्।।१८९।।

शारीरिक सम्बन्ध स्थूल रूप वाला होता है तथा वह शरीर साधन महान् साधन है। तथा वह स्थूल गन्ध वाला स्थूलपुष्प और स्थूल नैवेद्य (मिष्ठान्नादि) से युक्त होता है। अर्थात् इस प्रकार के साधन में धूप-दीप-नैवेद्य-पुष्प आदि से शरीर द्वारा पूजा की जाती है। यही शारीरिक साधन है।।१८९।।

वाचिकं स्तुतिनामादि ज्ञानादि भक्तिपूरितम्।
मानसे क्रियाविस्तारो मानसो जपनादिकः।।१९०।।

वाचिक साधन से इष्टदेव की स्तुति करना, उनके नामों को बोलकर जप करना आदि तथा यह वाचिक साधन ज्ञानादि की भक्ति से भरा हुआ होता है। मानस साधन में क्रिया का विस्तार होता है। मानस साधन जप-तप करना आदि है। यह बिना बोले हुए मन द्वारा किया जाता है।।१९०।।

एष सेवापरो मन्त्री सम्बन्धः सुकृतो जनः।
एतद्विपर्ययकार्यं पशुपक्षिगणादिवत्।।१९१।।

यह मन्त्र का जप करने वाला सेवापरक होता है। यह मनुष्य पुण्यशाली होता है। इसके विपरीत कार्य पशु-पक्षी आदि के समूह की भाँति है।।१९१।।

नष्टदुष्टजातिभ्रष्टा भ्रष्टदेशनिवासिनः।
माता पिता पतिर्भ्राता सुतसुताविवर्जनम्॥१९२॥

नष्ट, दुष्ट, जाति से भ्रष्ट और भ्रष्ट प्रदेश में रहने वाले माता-पिता, पति, भ्राता, पुत्र-पुत्री का त्याग करना चाहिये। अर्थात् जिनका चरित्र नष्ट हो चुका है, जो दुष्ट हैं, जो जाति से भ्रष्ट हो चुके हैं अथवा जो भ्रष्ट देश में रहने वाले हैं, ऐसे माता-पिता, पति, भाई-बन्धु, पुत्र-पुत्री को छोड़ देना चाहिये।१९२।।

निःसम्पर्को भवेत् पक्षो गुणसपक्षो बान्धवः।
अत एव क्रियामूलं ध्यानभक्तिसमन्वितम्॥१९३॥
ज्ञानविज्ञानसंयुक्तं रहस्यसाधनादिकम्।
सम्बन्धः सकलब्रह्म निष्कलोऽभेदात्मनः॥१९४॥

इन उपर्युक्त से सम्पर्क न रखना ही पक्ष है तथा गुणी बान्धवों का पक्ष ही सही पक्ष है। इसलिये ध्यान भक्ति से समन्वित ज्ञान और विज्ञान से संयुक्त रहस्य साधनादिक ही क्रिया के मूल हैं। साकार ब्रह्म ही सम्बन्ध है। अभेदात्मा का निराकार सम्बन्ध है।।१९३-१९४।।

त्याज्यः पूज्यः कामक्रोधादिरविद्यासम्भवः।
एतद् रोगो दुःखभोगो नश्यन्ति आत्मघातिनः॥१९५॥

अविद्या से उत्पन्न कामक्रोधादि का त्याग कर देना चाहिये तथा इनकी दूर से ही पूजा करनी चाहिये कि ये मुझे परेशान न करें। ये काम-क्रोधादि रोग हैं तथा दुःख का भोग कराने वाले हैं। आत्मघाती हैं तथा मनुष्य को नष्ट कर देते हैं।।१९५।।

गुरुदत्तो महामन्त्र औषधं विधिसाधना।
साधुसङ्गः क्रियामुक्तो यमनियमभावितः॥१९६॥
सुगम्यो वर्त्मतन्त्रेण सधर्मसहधर्मिणा।
यस्मिन् मन्त्रे यदाचारः सोऽपि धर्मव्यवस्थितः॥१९७॥
अर्थश्च जपसम्पत्तिरन्यार्थश्च निरर्थकः।
कामनादेवतासिद्धिं मोक्षं तन्मयमाप्नुयात्॥१९८॥

गुरु द्वारा दिया गया मन्त्र महामन्त्र है तथा विधिपूर्वक साधना औषध है। यम नियम भाव से युक्त क्रिया रहित साधु संग धर्म सहित सहधर्मि वाले तन्त्रमार्ग से साधन सुगम्य है। अर्थात् यम-नियम से युक्त सज्जन पुरुष का साथ रहे। भले ही कोई क्रिया न हो तथा सही-सही नियमपूर्वक तन्त्रमार्ग से किया गया साधन आसानी से लक्ष्य तक पहुँचाने वाला होता है। जिस मन्त्र में जो आचार है, वह भी

धर्म द्वारा व्यवस्थित है तथा जिसका अर्थ जप सम्पत्तिपरक है तथा अन्य अर्थ निरर्थक है, तथा जिसमें कामना केवल इष्टदेवता की सिद्धि प्राप्त करना है, उस देवता में लीन होकर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये।।१९६–१९८।।

तन्मन्त्रः सच्चिदान्दोऽभेदो न स्वतन्त्रकः।
रसज्ञो रसनारूपे सुरसभोगकामना॥१९९॥

वह मन्त्र सच्चिदानन्द है। वह सच्चिदानन्द भेद रहित है। वह स्वतन्त्र नहीं है। वह रसना रूप में रस का ज्ञाता है। उस सच्चिदानन्द सुन्दर रस के भोग की कामना है।।१९९।।

सिद्धकामभावलाभस्तन्मयो वामभाविनाम्।
विभावभाविनां भावस्तन्मये योगसाधना॥२००॥

वामभाव रखने वाले (वाममार्गियों) सिद्ध कामभाव का लाभ प्राप्त करना है, उसी में लीन होना है। विपरीत भाव रखने वालों का भाव है, उसी में लीन होना योगसाधना है।।२००।।

मुक्तिर्बहुविधा रूपा सालोक्यरूपसम्मता।
सायुज्यो विभावो भावः कल्पना पूर्णसिद्धता॥२०१॥

मुक्ति अनेकों प्रकार के रूपों वाली है, जो शास्त्रों में पाँच प्रकार की बतायी गयी है—१. सार्ष्टि, २. सालोक्य, ३. सारूप्य, ४. सामीप्य, ५. सायुज्य। सायुज्य सार्ष्टि मुक्ति जिसमें ईश्वर के समान ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सालोक्य का अर्थ है कि मेरे साथ एक लोक में वास करना, सारूप्य का अर्थ है आत्मा का परमात्मा के समान रूप प्राप्त करना, आत्मा का परमात्मा के समीप होना। सायुज्य में आत्मा परमात्मा की एकता हो जाती है। इस प्रकार ये पाँच प्रकार की मुक्तियाँ होती हैं। सायुज्य मुक्ति अन्तिम मुक्ति है, जिसमें बिना भाव का भाव रहता है, अर्थात् उसमें आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। अभाव का भाव रहता है तथा वह पूर्ण सिद्धता की कल्पना है।।२०१।।

तन्मये तद्रूपभावे साम्राज्यराज्ञी पूजिता।
निर्वाणं त्रिविधं शान्ति-एकत्वद्वित्वमिश्रितम्॥२०२॥

जब आत्मा उस रूप के भाव में तन्मय हो जाती है, तब साम्राज्य की महारानी महादेवी पूजित होती है। निर्वाण (मोक्ष) तीन प्रकार का है। शान्ति और एकत्व और द्वित्व।।२०२।।

प्रेमास्पदः पञ्चपञ्चतः पञ्चमः पुरुषार्थदः।
पुरुषार्थो ह्यनेकार्थस्त्रितयभावसंयुतः॥२०३॥

प्रेमास्पद (प्रेम के स्थान) पाँच से पाँच हैं। पाँचवाँ पुरुषार्थ को प्रदान करने वाला है। पुरुषार्थ भी अनेकार्थक हैं, जो तीनों धर्म, अर्थ काम तीनों भावों से युक्त है।।२०३।।

आद्यन्तो नित्यसम्बन्धो जननीजनकमतम्।
तद्रूपं ज्ञानगम्ये च सकल ईश्वरे गतः।।२०४।।

जननी (माता) और जनक (पिता) का आदि अन्त का सम्बन्ध है। ज्ञान गम्य होने पर वह रूप समस्त ईश्वर में चला जाता है।।२०४।।

गुरुभावो दीक्षालाभः शिक्षाभावो ह्यनन्तकः।
निःसम्पर्कः स्त्रियो लक्षः सम्बन्धो दम्पतीर्यतः।।२०५।।

गुरु का होना दीक्षा प्राप्त होना है, क्योंकि गुरु ही दीक्षा देता है। तथा शिक्षा अनन्तक है। अर्थात् शिक्षा का होना कभी अन्त न होने वाला ज्ञान है। निःसम्पर्क स्त्रियों द्वारा सम्बन्ध पति-पत्नी का ही होता है। स्त्रियाँ तो केवल देखने की वस्तु हैं।।२०५।।

पूर्वजन्मार्जितो भावः सुदृढो यदि जायते।
अवश्यं लभते शिष्यो गुरुगम्ये प्रकाशते।।२०६।।

पूर्वजन्म का अर्जित भाव यदि सुदृढ़ हो जाता है, तो शिष्य अवश्य हं ज्ञान प्राप्त करता है तथा वह ज्ञान गुरु से ही प्रकाशित होता है।।२०६।।

सङ्केतज्ञः क्रियादक्षः सर्वज्ञो विज्ञः सद्गुरुः।
अधिकारी भावाचारो यथायोग्यनियोजितः।।२०७।।

सद्गुरु ही किसी साधन के संकेत का ज्ञान रखने वाला होता है। वही क्रिया में कुशल होता है। वह सब कुछ जानने वाला तथा विशेष जानने वाला होता है। वही यथायोग्य नियोजित भावों के आचरण का अधिकारी होता है।।२०७।।

विमर्श—सद्गुरु उसे कहा जाता है, जो ये दावा करे कि मैं सिद्धान्त का सार जानता हूँ। ऐसा सदा प्रसन्न रहने वाला गुरु कहलाता है तथा आश्रम वर्णों को लांघ कर सदा आत्मस्थ रहता है तथा जो समस्त अध्वानों और आधारों को जानता है, जो श्रम के विना जो स्थिर रहे श्रम विना जिसका प्राणवायु स्थिर रहे जो संविति को जानता हो, जो परानन्द को पैदा करने वाले तत्त्व को जानता हो, जो भूत-भविष्य-वर्तमान, तन्त्र-मन्त्र शाक्त शाम्भव और छः प्रकार के वेधों को जानता हो, वही सद्गुरु है। कुलार्णव्तन्त्र में गुरु लक्षण निम्नवत् कहे हैं, जो प्रायः समान है देखिये—

सिद्धान्त का सार जानने वाला मैं बीज हूँ, इस प्रकार का बोध देने वाला सदा आनन्दित रहने वाला 'गुरु' कहलाता है।

आश्रमों और वर्णों का लंघन कर जो सदा आत्मा में स्थित रहता है और ज्योतिरूप वर्णाश्रम वाला योगी है, वह 'गुरु' कहलाता है।

छः आधारों और छः अध्वानों को जो विधिपूर्वक जानता है; दृश्य के बिना जिसकी दृष्टि स्थिर रहती है, आलम्बन के बिना जिसका मन स्थिर रहता है और श्रम किये बिना जिसका मन स्थिर रहता है तथा श्रम किये बिना जिसका प्राण (वायु) स्थिर रहता है; हे कुलनायिके! सम्वित्ति को प्रकट करने वाले और परानन्द के उद्भव करने वाले तत्त्व को जो जानता है; भूत, भविष्य, तन्त्र, मन्त्र, शाक्त, शाम्भव और छः प्रकार के वेधों को जो जानता है, हे देवि! वही 'वेध करने वाला गुरु' है।

उपदेशक्रमो लक्षदक्षताशिष्यसंयुतः।
चर्मचक्षे इष्टमूर्तिं प्रत्यक्षदर्शनं महान्॥२०८॥

उपदेश क्रम लक्ष और दक्षता शिष्य से संयुत है। चर्मचक्षुओं में इष्ट की मूर्ति का ध्यान करने से महान् का प्रत्यक्ष दर्शन होता है अर्थात् जब गुरु उपदेश दे रहे हों, उस समय उपदेश के क्रम को देखना और फिर उस पे दीक्षा लेना ये कार्य शिरू का है।।।२०८।।

प्रथमे पुरुषाकार आकारो मूर्तिभावना।
दृढक्रियः क्रियायोगे भक्तियोगे कृपात्मना॥२०९॥

सबसे पहले पुरुष के आकार की आकार वाली मूर्ति की भावना होती है, परन्तु उस समय दृढ़ क्रिया होनी चाहिये तथा दृढ़ क्रिया वाला साधक भक्तियोग में और क्रियायोग में कृपात्मा द्वारा उस मूर्ति को देख सकता है।।२०९।।

कृपाकार्यो महापूज्यो द्वितीयपुरुषार्थदः।
भावलाभो ह्यभावेन इच्छासिद्धिस्तृतीयकः॥२१०॥

कृपा कार्य महापूज्य है तथा वह द्वितीय पुरुषार्थ अर्थात् धन को प्रदान करने वाला है। उस कृपा कार्यसे अभाव से भाव की अर्थात् असत् से सत् की उत्पत्ति होती है तथा वह अभाव से भाव की उत्पत्ति रूपी तीसरी इच्छासिद्धि है।।२१०।।

भ्रान्तिनाशे शान्तिलाभे चतुर्थरूपकल्पनम्।
पञ्चमे पञ्चमभावः पुरुषार्थश्च पञ्चमः॥२११॥

तथा जब तीसरी इच्छासिद्धि हो जाती है, तब भ्रान्ति का नाश हो जाता है तथा जब भ्रान्ति का नाश हो जाता है, तब शान्ति प्राप्त हो जाती है तथा वह शान्ति चतुर्थ परिकल्पना है और पञ्चम स्थिति में पञ्चम भाव पुरुषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति होती है, जो परमानन्द स्वरूप है।।२११।।

क्रमेण जायते प्रेम देवानामपि दुर्लभः।
भक्तिश्च द्विविधा प्रोक्ता प्रेमोऽपि द्विविधः परः॥२१२॥

जब साधक पञ्चम भाव में पहुँचता है, तब क्रम द्वारा प्रेमा भक्ति उत्पन्न हो जाती है, जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। भक्ति दो प्रकार की बतायी गयी है। प्रेम भी दो प्रकार का है।।२१२।।

शुद्धभक्तिः प्रेममिश्रा ज्ञानमिश्रा तथा परा।
शुद्धभक्तिः परा चैव माधुर्यरूपं लभ्यते॥२१३॥

शुद्ध भक्ति प्रेम से मिश्रित है। तथा ज्ञान मिश्रा पराभक्ति है। शुद्ध भक्ति और परा दोनों ही भक्ति है माधुर्य रूप प्राप्त करती है।।२१३।।

ज्ञानमिश्रे लभेन्मिश्रं देव्यैश्वर्यमिश्रितम्।
स्वजनदासाभिमानं केचित् पितृसुतादिवत्॥२१४॥

ज्ञानमिश्र भक्ति में देवी और ऐश्वर्य दोनों मिश्र रूप से प्राप्त होते हैं। अपने मनुष्य के दास का अभिमान कुछ पिता-पुत्र के समान प्राप्त करते हैं।।२१४।।

शुद्धज्ञाने लभेन्मुक्तिर्भक्तियोगेन पार्श्वदः।
भक्तिमिश्रे प्रेमयोगे बाहुल्यभावो जायते॥२१५॥

विशुद्ध ज्ञान में भक्ति के योग से पार्श्वद मुक्ति प्राप्त करता है तथा भक्ति मिश्रित प्रेमयोग में बाहुल्य (अधिकता) अर्थात् भौतिक कमनाओं यथा धन-दौलत, पुत्र-पुत्री आदि अनेकों प्रकार की कामनायें उत्पन्न हो जाती हैं।।२१५।।

गणाधिपं धनाधिपं द्विविधं फलमश्नुते।
भक्तिविज्ञानमिश्रेण सख्यादा विजयादिकम्॥२१६॥

तथा उस प्रेम योग में साधक गणाधिप (राजा) तथा धनाधिप (धनों का स्वामी होना) ये दो फल प्राप्त करता है। भक्ति और ज्ञान के मिश्रण से सख्यादि भाव से की गयी भक्तियाँ विजय आदि प्राप्त कराती हैं।।२१६।।

शुद्धप्रेमो महाकाले कालिकायाः सुनिश्चितम्।
अंशकला विनाशेन शिवशिवादिभैरवान्॥२१७॥
नित्यसिद्धो बहुविधः क्रियासिद्धस्तथापरः।
भाविना भावभेदेन त्रिविधः साधनादिकः॥२१८॥

महाकाल भगवान् शिव के प्रति शुद्ध प्रेम कालिका का सुनिश्चित है, अर्थात् भगवान् शिव के प्रति शुद्ध प्रेम से दुर्गा, कालिका कहो या पार्वती कहो जो

प्रसन्न होती हैं। अंशकला विनाश द्वारा शिवशिवा आदि तथा भैरव भी सुनिश्चित है। नित्य सिद्ध अनेक प्रकार का होता है तथा दूसरा क्रियासिद्ध है। भाविना और भावभेद से साधना आदि तीन प्रकार के होते हैं।।२१७-२१८।।

ब्रह्मलीनं प्रेममनो जीवः क्रियाप्रेमात्मकः।
पुष्पवन्तः प्रपञ्चानामानन्दो प्रेममूलकः॥२१९॥

ब्रह्मलीन प्रेम मन वाला जीव क्रियाप्रेमात्मक होता है। वह प्रपंचों का पुष्पवन्त होता है, अतः आनन्द प्रेममूलक है।।२१९।।

लीना क्रिया सुखानन्दा यथा आत्मनि जायते।
आत्मसुखं स्वभावश्च एकात्मा ज्ञानसुखदः॥२२०॥

ब्रह्म में लीन होने की क्रिया सुख एवं आनन्ददायक होती है। जैसे कि वह आनन्द आत्मा में उत्पन्न होता है। आत्मा का सुख ही स्वभाव है, आत्मभाव है, एक आत्मा ही तो ज्ञान और सुख देने वाला है।।२२०।।

विमर्श—यहाँ सांख्यशास्त्रीय विचार प्रस्तुत किया गया है; क्योंकि सांख्य कहता है कि पुरुष के विना प्रकृति कुछ नहीं कर सकती।

अनात्मबाह्य आत्माया अनात्मा अन्तरात्मनः।
अज्ञाने आत्मज्ञानञ्च शुद्धसत्त्वपरात्मनः॥२२१॥

अनात्मतत्त्व बाह्य है आत्मा से अर्थात् अनात्मतत्त्व (ब्रह्म) आत्मा के बारह है; लेकिन फिर भी यह अनात्मा जो आत्मा नहीं, ब्रह्म है वह आत्मा के अन्तर्गत स्थित है। जो शुद्ध तत्त्व परात्मतत्त्व (ब्रह्म) अज्ञान में भी आत्मज्ञान कराता है। यहाँ उस परंब्रह्म (ईश्वर) को ही आत्मज्ञान का कारण माना गया है।।१२१।।

आत्मसुखं स्वरूपञ्च सुखम् आनन्दवाचकम्।
आनन्दो ब्रह्मणो रूपं नित्यानन्दविभेदतः॥२२२॥

आत्मसुख और अपना रूप अर्थात् आत्मा का रूप ही आत्मसुख है, क्योंकि जब मनुष्य को अपना अर्थात् आत्मा का रूप ज्ञात हो जाता है, तब उसे आत्मसुख प्राप्त होता है तथा सुख ही आनन्द कहा जाता है। तथा आनन्द ब्रह्म का रूप है, क्योंकि आत्मानन्द जिसे ब्रह्मानन्द कहा गया है, वह नित्य होता है, इसलिये उसे नित्यानन्द भी कहा जाता है।।२२१-२२२।।

आनन्दो चिद्घने स्थितो नित्यरूपे प्रतिष्ठितः।
मिश्रशिवो असज्जीवे आनन्दो दुःखदायकः॥२२३॥
पूर्णवद् अंशिकलानाम् अणुपरमाण्वादिकम्।
प्रेमघनः स्वभावश्च निष्पन्नः प्रेमपरस्परः॥२२४॥

आनन्द इस स्थूल शरीर में स्थित नहीं है। चिद्घन (ब्रह्म) में स्थित है

तथा वह आनन्द नित्य रूप है, अतः आत्मानन्द कोई शीघ्र समाप्त होने वाला नहीं है, वह तो नित्य है। तथा असज्जीव अर्थात् शरीर शिवमिश्र है, उस शरीर का आनन्द दुःखदायक है। अणु-परमाणु आदि जो कलाओं के अंश रूप हैं, अर्थात् सूक्ष्म से सूक्ष्म हैं, वे पूर्ण के समान हैं। प्रेमघन और स्वभाव निष्पन्न है और प्रेम परस्पर है।।२२३-२२४।।

ज्ञाने ध्याने परानन्दो ज्ञानहीने विडम्बना।
आत्मज्ञानं परं तत्त्वं भावज्ञानं तदोत्तमम्।।२२५।।

ज्ञान और ध्यान में परानन्द है तथा ज्ञानहीन होने पर विडम्बना है, अर्थात् केवल परिहास है। आत्मज्ञान ही परं तत्त्व है और भावज्ञान उत्तम है।।२२५।।

आत्मज्ञानं प्रवर्तञ्च सम्बन्धभाव उन्मुखम्।
भावाभावे साधनञ्च श्रद्धाभक्तिसमन्वितम्।।२२६।।

आत्मज्ञान और प्रवर्त (प्रेरणा) के उस परं तत्त्व के सम्बन्ध भाव से उन्मुख है। सम्बन्ध भाव के न होने पर श्रद्धा और भक्ति से समन्वित साधन होना चाहिये।।२२६।।

अनन्यचेतना सेवा अभिधेयादिकल्पना।
मन्दत्यागो ह्यनुराग इष्टे आत्मसमर्पणम्।।२२७।।

किसी अन्य विषय में चित्त को न लगा कर ध्यान करना सेवा है। ध्यानकाल में देवता के नाम आदि बोलना कल्पना है। इष्ट के प्रति आत्मसमर्पण मन्दत्याग और अनुराग है।।२२७।।

महाभावे महासिद्धिः लक्ष्यमैक्यप्रयोजनम्।
एकात्मा रसो रसज्ञो द्वित्व एकत्वभावना।।२२८।।

महाभाव में महासिद्धि है तथा महाभाव में आत्मा को परमात्मा में लीन कर एक कर देना साधक का प्रयोजन है तथा वही लक्ष्य है। वहाँ दोनों की एकात्मा रस है और दो और एक होने की भावना रस का ज्ञाता है।।२२८।।

पूर्णज्ञानमनुमानं ज्ञानमात्रं न विद्यते।
ॐ तत्सद्वाचकं ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूपकम्।।२२९।।

पूर्ण ज्ञान अनुमान है। वह केवल ज्ञान नहीं है, क्योंकि प्रकृति और आत्मतत्त्व के विषय में आज तक उसके किसी अंश का पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाया है। जो कुछ भी है, वह अनुमान है, कोई नहीं बता सका कि आत्म तत्त्व क्या है? तथा प्रकृति तत्त्व क्या है? सब केवल अनुमान ही करते हैं तथा उसे ही पूर्ण ज्ञान कहते

हैं। ॐ तत्सत् वाचक ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप वाला है, अर्थात् ॐ (ओंकार) जो ब्रह्म है, वही सत् है, अर्थात् सदा रहने वाला है। अन्य सब नश्वर है। वह ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है।।२२९।।

निष्कलं शून्यमात्रं हि सकलं द्विविलासितम्।
न द्वित्वं सच्चिदानन्दमनुमेयम् अनुभवम्।।२३०।।

निष्कल (निराकार) ब्रह्म शून्यमात्र है तथा साकार ब्रह्म दो में विलास करने वाला है, अर्थात् वह एक तो ब्रह्माण्ड में विलास करता है। दूसरा शरीरों में विलास कर रहा है। परन्तु सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म में द्वित्व नहीं है। यह द्वित्वभाव अनुमान किया जाता है तथा यह एक अनुभव है।।२३०।।

द्वित्वभावे रसाधिक्यमेकात्मद्वित्वचिन्तनम्।
ऐक्यज्ञाने भवेदैक्यमैक्यधनाप्रयोजनम्।।२३१।।

द्वित्वभाव होने पर अर्थात् जब यह आत्मा शरीरस्थ होता है, तब द्वित्व भाव रहता है। तब उस द्वित्व भाव में जब द्वित्व एकात्म होने का चिन्तन करता है, तब रसाधिक्य होता है, अर्थात् परमानन्द प्राप्त होता है। शरीरस्थ आत्मा को जब परमात्मा में एक होने का ज्ञान होता है। तब ऐक्य होता है और वह ऐक्य ही उस आत्मा का प्रयोजन है।।२३१।।

शुष्कज्ञानी अभिमानी अनैक्य ऐक्यकल्पनम्।
द्वित्वं विना न एकत्वं न द्वित्वं द्वित्वकल्पना।।२३२।।

जिसका ज्ञान शुष्क होता है तथा जिसे अनैक्य (एकत्व होने) का ज्ञान रहता है, अर्थात् जो यह जानता है कि आत्मा परमात्मा का ऐक्य होता ही नहीं है, वह अनैक्य में ही ऐक्य की कल्पना करता है। द्वित्व के बिना एकत्व नहीं, क्योंकि शरीरस्थ आत्मा ही परात्मा ब्रह्म में लीन हो एकत्व में स्थित हो सकता है। द्वित्व की कल्पना करना द्वित्व नहीं है, क्योंकि द्वित्व तो है ही नहीं। वह तो एक भ्रम है। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। ब्रह्म ही है, अन्य सब तो मिथ्या है। सर्वं खल्विदं ब्रह्म यह सब कुछ ब्रह्म है।।२३२।।

स्वरूपमद्वित्वरूपं हि रसज्ञः सरसो जनः।
इक्षुदण्डो मिश्रखण्डो न द्वित्वं द्वित्वभावना।।२३३।।

स्वरूप ही अद्वित्व रूप है, अर्थात् आत्मा का रूप ही एक रूप है। यह आत्मा ही रसज्ञ है। अर्थात् आनन्द का अनुभव करने वाला है तथा इस आत्मभाव में ही मनुष्य सरस (सानन्द) होता है। जैसे इक्षुदण्ड (ईख का डण्डा) अर्थात् गन्ना

और मिश्री का टुकड़ा दोनों दो रूप हैं। दोनों प्रत्यक्ष रूप से दो दिखाई देते हैं, परन्तु उन दोनों में जो माधुर्य रस है, वह तो एक ही है। अतः वहाँ द्वित्व नहीं है, केवल द्वित्व की भावना है।।२३३।।

ज्वरनाशे रसाभासे तथा रसज्ञा रसना।
रस आनन्दरूपश्च रसज्ञे बोध आत्मना।।२३४।।

ज्वर का नाश होने पर और रस का अभ्यास होने पर रस को जानने वाली रसना जिह्वा होती है। रस आनन्दस्वरूप है और रस को जानने वाले में रस का बोध आत्मा द्वारा होता है।।२३४।।

अज्ञानं ब्रह्मविज्ञानं रसना इन्द्रियमना।
सुरसो विरसः कच्चिद् विरसः सुरसात्मकः।।२३५।।

आत्मज्ञान होने पर इस शरीर का ज्ञान न होना ब्रह्म का विशेष ज्ञान है। क्योंकि इन्द्रियों सहित मन ही रस का ज्ञान करने वाला होता है। जब मन इन भौतिक रसों के ज्ञान से हीन हो जायेंगे तो इस शरीर के ज्ञान न रहने पर ब्रह्म का विशिष्ट ज्ञान होगा ही। इसीलिये यह उचित ही है। कभी कोई सुन्दर रस विरस हो जाता है तथा कोई विरस सुन्दर रसात्मक हो जाता है।।२३५।।

अज्ञानं सङ्गमूलेन न दोषो रसरसना।
सर्वमूलमैक्यमन ऐक्यं हि सत्त्वमूलकम्।।२३६।।

अज्ञान के मूल में आसक्ति होती है, अर्थात् किसी भी वस्तु व्यक्ति अथवा स्थान के प्रति आसक्ति (लगाव) के कारण अज्ञान पैदा होता है, उसमें रस और रसना का दोष नहीं है, अर्थात् आसक्ति में विषय रस तथा उसके ग्राह्य इन्द्रिय का दोष नहीं है। सबका मूल मन की एकता है। जब मन किसी भी वस्तु, व्यक्ति, स्थान के प्रति एक्य करता है, तब स्वाभाविक से इन्द्रियाँ भी उसके प्रति प्रेरित हो जाती हैं तथा वह मन की एकता सत्त्वमूलक है, क्योंकि जब सत्त्व का प्राधान्य और धनात्मक शक्ति का आधिक्य होता है, तब ही किसी के प्रति मन की एकता होती है।।२३६।।

सुविचारो विवेकेन ब्रह्मानन्दप्रबोधनात्।
अभिधेयं प्रेमघनं प्रेमघनं प्रयोजनम्।।२३७।।

विवेक द्वारा जब ब्रह्मानन्द का प्रकृष्ट बोध होता है, तब सुन्दर विचार पैदा होते हैं। फिर प्रेमघन (प्रेम का विस्तार) ही विशेष रूप से कथन करने योग्य है, अभिधेय है। क्योंकि प्रेम का विस्तार ही जीव का प्रयोजन है।।२३७।।

प्रयोजनं ब्रह्मानन्दो ह्यच्युतानन्दकारणम्।
सम्बन्धः परमानन्दः सुभक्तेषु प्रेमी यथा॥२३८॥

तब ब्रह्मानन्द ही प्रयोजन है तथा वही अच्युत (कभी न नष्ट होने वाले) आनन्द का कारण है तथा जहाँ पर परमानन्द का सम्बन्ध है, जिस प्रकार कि अच्छे भक्तों में प्रेमी का होता है।।२३८।।

यथा स्थूलस्तथा सूक्ष्मस्तथा चिदात्मकस्तनुः।
अभिधेयं तत्त्वं ज्ञात्वा विज्ञानवान् भवेत्॥२३९॥

जिस प्रकार यह दृश्यमान हाथ, पैर, नाक, कान आदि अंगों वाला यह स्थूल शरीर है, उसी प्रकार इस समस्त सेन्द्रिय शरीर का मूल तत्त्व प्रकृति है, जिसे सूक्ष्म कहा जाता है। तथा वैसा ही चिदात्मक (चैतन्य आत्मा शरीर) है तथा वह ब्रह्म का ही रूप है। तथा यह स्थूल शब्द का अर्थ दृश्यमान यह सेन्द्रिय शरीर है। सूक्ष्म उसमें व्याप्त आत्मतत्त्व है, जो इस शरीर को सञ्चालित कर रहा है तथा तीसरा तत्त्व चिदात्मा शरीर वाला ब्रह्म है, अतः ये सब एक समान हैं। केवल दृष्टिभेद है, जैसे गन्ना और उसमें व्याप्त रस दोनों एक ही हैं। इस प्रकार अभिधेय तत्त्व को जान कर मानव को विशेष ज्ञानवान् होना चाहिये।।२३९।।

अतिसुमधुरं प्रेम भाविना भावगोचरम्।
अभावे न हि संवेत्ति विना भावपरायणम्॥२४०॥

ब्रह्म के प्रति अथवा किसी के भी प्रति प्रेम अत्यन्त ही सुन्दर और मधुर होता है, क्योंकि वह भाव रखने वाले द्वारा भावगोचर होता है। भावपरायण के बिना अभाव में कोई सम्यक् ज्ञान नहीं होता। अर्थात् जो व्यक्ति यह समझता है कि वह है तभी तो वह व्यक्ति उसके प्रति भावगोचर होता है, अर्थात् उसे अपनी इन्द्रियों का विषय बनाता है। अतः भावपरायण (अर्थात् उसकी सत्ता को मानने) के बिना उसकी सत्ता न होना मानने पर मनुष्य अच्छी तरह उसे नहीं जान सकता।।२४०।।

सकलं परमं ब्रह्म सर्वमोहनमोहिनी।
तदंशविद्यायोगेन शिवादिदेवतागणाः॥२४१॥

समस्त ६४ कलाओं वाला परम ब्रह्म सबको मोहित करने वाला है तथा सबको मोहित करने वाली शक्ति वाला है। उसके अंश भी विद्या के योग से समस्त शिव आदि देवता गण हैं।।२४१।।

अविद्याजनितः सर्वो जीवजन्तुचराचरः।
सदाकारो नराकारः स्थूलसूक्ष्मचिदात्मकः॥२४२॥

सभी जीव-जन्तु, चर और अचर (चलने वाले और न चलने वाले) नदी, पर्वत, पेड़-पौधे आदि अविद्या से उत्पन्न हैं। अविद्या को ही वेदान्त माया कहता है तथा आज के वैज्ञानिक युग में उसे त्रिगुणात्मिका प्रकृति (Nature) कहा जाता है। सदाकार (सच्चा आकार) नराकार (मनुष्य का आकार) है, जो स्थूल-सूक्ष्म चिदात्मक है। अर्थात् सत् विद्यमान रूप में मनुष्य का आकार है, जिसमें स्थूल रूप से भूततत्त्व इन्द्रियाँ विद्यमान हैं ही साथ सूक्ष्म तत्त्व प्रकृति है, तथा चेतनता प्रदान करने वाला आत्मतत्त्व भी है। नराकार से अर्थ यह प्राणी समूह माना जा सकता है।।२४२।।

इच्छारूपं भवेदीशो देवता बहुरूपिणः।
महाकालो महाकाली माधुर्यमानवाकृतिः।।२४३।।

इच्छा रूप ईश्वर होता है और देवता बहुत रूप वाले होते हैं। महाकालेश्वर भगवान् सदाशिव और महाकाली माधुर्य मानवाकृति होवें। अर्थात् महाकाल और महाकाली मधुरतारुप मनुष्य की आकृति में हैं।।२४३।।

अद्वैतो ह्यच्युतः पूर्णस्तदंशकलाव्यापितः।
स्थूलो मोहनः प्रत्यक्षः सूक्ष्मो वीर्यरसात्मकः।।२४४।।

अद्वैत अच्युत है और वही पूर्ण ब्रह्म है। उस अद्वैत ब्रह्म के अंश की कला समस्त विश्व में व्यापित है। स्थूल रूप मोहन प्रत्यक्ष है तथा वीर्यरसात्मक सूक्ष्म है। कथन का आशय है कि मानव रूप में स्थूल प्रत्यक्ष है तथा उसमें दूसरे अनेक मानव वीर्यरस रूप में सूक्ष्म रूप से स्थित हैं।।२४४।।

पुष्पवन्तो भगवन्तशचन्द्रः सूर्यो महाज्योतिः।
रसज्ञो रसरूपा च नायको नायिका यथा।।२४५।।

भगवन्त पुष्पवन्त हैं। यहाँ पर पहले तो वाक्य ही अशुद्ध है। तब तो यह अर्थ लिया जा सकता है, भग वाले जीव पुष्पवन्त (रज) वाले हैं, जो रज स्त्रियों में विद्यमान होता है, अतः उसे चन्द्र कहा जा सकता है तथा महाज्योति सूर्य वीर्य रूप है। जैसे रसज्ञ और रसरूपा नायक और नायिका है। रस का ज्ञाता नायक है तथा रस नायिका है।।२४५।।

उभय उभयरूपं सूक्ष्मचित्ते अभिन्नता।
स्थूलो भिन्नोऽनुमानम् आधाराधेयरूपता।।२४६।।

नायक और नायिका दोनों ही दोनों के रूप वाले हैं, परन्तु यों तो अलग-अलग हैं, परन्तु सूक्ष्म चित्त में यदि विचार करें तो दोनों में कोई भिन्नता नहीं है।

स्थूल तत्त्व दृश्यमान शरीर में भिन्न होने का अनुमान है, परन्तु इनमें आधार और आधेयरूपता है। आधार शरीर में आधेय ब्रह्म है।।२४६।।

ब्रह्म आधाररूपं हि आधेयः परमात्मनः।
जलाधारो यथा पृथ्वी पृथ्व्याधारो जलं यथा।।२४७।।
शेषाधारः शून्याकारोऽनलाकर्षणे स्थितः।
सञ्चरणं वायुयोगे वायुः शून्यालये गतः।।२४८।।

तथा ब्रह्म और परमात्म तत्त्व में भी आधाराधेय भाव है। परमात्मतत्त्व (जीवात्मा का) आधेय ब्रह्म आधार रूप है, ब्रह्म में आत्मा व्याप्त है। जैसे जल का आधार पृथ्वी है तथा जैसे पृथ्वी का आधार जल है। शून्याकार यह पृथ्वी जिसका आधार शेषनाग है, अग्नि के आकर्षण से स्थित है। यहाँ पर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के नियम का परिचय प्राप्त होता है। वायु के योग में पृथ्वी के सञ्चरण होने पर उस शून्य रूप पृथ्वी के आलय में वायु गमन करता है, अर्थात् पृथ्वी मण्डल के चारों ओर वायुमण्डल सञ्चरण करता है। यहाँ वायु के योग से पृथ्वी के चलने के वैज्ञानिक सिद्धान्त का परिचय प्राप्त होता है तथा पृथ्वी के चारों ओर वायुमण्डल का सञ्चरण भी वैज्ञानिक तथ्य पर प्रकाश डाल रहा है।।२४७-२४८।।

स्थूलशून्यो महाकाशो मनो माया च सूक्ष्मकः।
चिच्छून्यः परमं ब्रह्म अङ्गसाङ्गे प्रबोधनम्।।२४९।।

उसके बाद अर्थात् वायु के बाद आकाश तत्त्व का स्थान आता है, अतः वायुमण्डल के बाद स्थूल शून्य रूप से प्रत्यक्ष महाकाश दिखाई दे रहा है। यह आकाश स्थूल और शून्य की भाँति है। इसमें मन और माया ये सूक्ष्म रूप से स्थित हैं। अर्थात् यह सब प्रकृति माया है, जो सूक्ष्म है, मन भी सूक्ष्म है तथा परम ब्रह्म चित् शून्य है, अर्थात् चेतन तत्त्व वाला परम ब्रह्म है, जो अङ्गों-प्रत्यङ्गों में चेतनता तथा विशेष प्रकार का बोध पैदा करता है।।२४९।।

महाकाशो घटाकाश आकाशप्रतिबिम्बकः।
जाग्रत् स्वप्नो यथा सुप्तिः सृष्टिस्थितिलयात्मकः।।२५०।।

महाकाश, घटाकाश तथा प्रतिबिम्ब करने वाला आकाश। ये तीनों आकाश के भेद हैं। आकाश का अर्थ है खाली स्थान, अतः एक आकाश समस्त वस्तुओं तथा शरीरों में है, दूसरा घट के मध्य का आकाश है, तीसरा महाकाश है, जिसमें समस्त प्रपंच सम्मिलित हैं। वैसे तो आ-समन्तात् (सब ओर) काशन्ते-दीपन्ते सूर्यादयो यत्र अर्थात् सर्वत्र सूर्यादि चमकते हैं, वह आकाश कहा है। अतः महाकाश

उससे भी बृहद् आकाश है, जिसमें सब कुछ व्याप्त है। जिसमें समस्त जीव व्याप्त हैं। जीव की तीन दशायें होती हैं, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जो तीनों सृष्टि, स्थिति और लयात्मक हैं। जाग्रत् जीव भी सृष्टि के समय की अवस्था है। स्वप्न उसके संसार में शरीरस्थ हो जीवन जीने की अवस्था है तथा सुषुप्ति जीव के ब्रह्म में लीन होने की अर्थात् प्रलय की अवस्था है।।२५०।।

एतन्मायामयं व्याप्तं चिच्छून्यं त्रिविधात्मकम्।
आनन्दो ब्रह्मणो रूपं स्थूलो दृष्टान्तवाचकः।।२५१।।

यह समस्त संसार मायामय है तथा माया (प्रकृति) से व्याप्त है तथा वह सत् चित् और आनन्द इन तीनों प्रकारों वाले चैतन्य स्वरूप शून्य से व्याप्त हैं। जिसमें आनन्द ब्रह्म का रूप है तथा यह स्थूल रूप से दृश्यमान चराचर जगत् दृष्टान्त वाचक है, अर्थात् यह उसी का स्थूल रूप है, जो दिखाई दे रहा है।।२५१।।

अनुभवः सूक्ष्मज्ञानं तमश्शक्तिविलोपकः।
जाग्रत् स्थूलरूपं हि स्वप्नः सूक्ष्मानुभावकः।।२५२।।

अनुभव ही सूक्ष्म ज्ञान है, जिसके द्वारा हम आत्मतत्त्व प्रकृति एवं परमात्मतत्त्व को जान सके हैं तथा यह अनुभव (सूक्ष्मज्ञान) तमश्शक्ति (अज्ञान) का विलोप करने वाला है। उस ब्रह्म की जाग्रत अवस्था उसका स्थूल अर्थात् प्रत्यक्ष दृश्यमान स्वरूप है तथा स्वप्नावस्था सूक्ष्म तत्त्व का अनुभव कराने वाला है।।२५२।।

सुषुप्तिः प्रलयशक्तिः तमोभूतनिरञ्जनः।
आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमगोचरम्।।२५३।।

तथा सुषुप्ति उस ब्रह्म की प्रलय शक्ति है। उस समय वे ब्रह्म तमोभूतनिरंजन होते हैं तथा उस समय ये ब्रह्म प्रकृति के तमोगुण से आवृत रहते हैं, क्योंकि तीन गुणों वाली प्रकृति में जब तमोगुण की अधिकता हो जाती है, वह प्रलय होती है, अतः उस समय वे ब्रह्म तमोभूत (तमोगुण) से आवृत हो जाते हैं, अतः तमोभूत कहे जाते हैं। तथा उस समय वे अप्रज्ञात और अगोचर होते हैं। प्रज्ञात होना अबोधावस्था है, क्योंकि अगोचरता ही अबोधता का कारण है, क्योंकि जब वे इन्द्रियाँ रहेंगी ही नहीं, तब तो बोधता होगी कैसे? जब बोधता नहीं, तब अगोचर कहा ही जायेगा।।२५३।।

ज्ञानं ज्ञेयो भवेल्लुप्तः सुप्तो ज्ञाता प्रकाशकः।
स्वप्रकाशः परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।।२५४।।
चैतन्यं परमात्मानं शक्तियुतं समण्डलम्।
भगवती पतिरती अर्द्धाङ्गो लिङ्गभूषणम्।।२५५।।

ज्ञान ही श्रेय है, जो लुप्त हो जाता है तथा जानने वाला उसका प्रकाशक है। परम ब्रह्म स्वयं प्रकाशक है तथा वह सभी कारणों का कारण है।

वह चैतन्य परम ब्रह्म ही परमात्मा है, वही शक्ति युक्त है, सभी प्राणियों में उसी की शक्ति है तथा समण्डल अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड उसी का मण्डल है, अर्थात् स्थूल रूप है। भगवती पति रती है, उनका आधा अंग लिङ्गभूषण है।।२५४-२५५।।

एकात्मवादिनां वादो विवादो वादभूषणम्।
विदेहो मुक्तिफलञ्च जीवन्मुक्तः स्वतन्त्रकः।।२५६।।

जो एक आत्मा मानने वालों का वाद है, वह विवाद है, परन्तु वह वाद का भूषण है। अर्थात् एक आत्मा ही सब कुछ यह कहना वाद का भूषण है, एक शरीर में एक आत्मा रहती है तथा जब वह आत्मा शरीर को छोड़ देती है, वह शरीर रहित आत्मा को मुक्ति का फल मिलना कहा गया है, पर जीवन्मुक्त अर्थात् जीवित होते हुए ही मुक्ति प्राप्त कर चुका है, वह स्वतन्त्र है। भाव यह है कि जिसने जीवन काल में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और अहंकार को जीत लिया है तथा सबके उपकार में लगा हुआ है, वह जीवन्मुक्त पुरुष स्वतन्त्र है।

आत्मविद्या शिवतत्त्वं प्रवर्तो भिन्नभावनम्।
आत्मा ज्ञाता शिवो ज्ञेयो विद्याज्ञाने उपासना।।२५७।।

आत्मविद्या और शिवतत्त्व भिन्न-भिन्न भावना रखते हैं, क्योंकि आत्मा ज्ञाता (जानने वाला) है और शिव ज्ञेय (जानने योग्य तत्त्व) है तथा उस विद्या के ज्ञान में उपासना का महत्त्व है, अर्थात् उपासना से उस विद्या ज्ञान को जाना जा सकता है।।२५७।।

चिद्ब्रह्म आत्मचिदंशश्चिच्छक्ती विद्यारूपिणी।
लक्ष ऐक्यो महामोक्षः प्रेम ऐक्यप्रयोजनम्।।२५८।।

चैतन्य स्वरूप ब्रह्म का चेतनता रूपी आत्मतत्त्व एक अंश है। ईश्वर अंश जीव अविनाशी अर्थात् यह आत्मा उस ब्रह्म का एक अंश है तथा विद्यारूपिणी चित् शक्ति है, अर्थात् इस जीव की शक्ति विद्या के रूप वाली है तथा इस चित् शक्ति (जीव की शक्ति) का एक ही लक्ष्य है, वह है एकता और महामोक्ष प्राप्त करना तथा उस एकता का प्रयोजन है प्रेम।।२५८।।

यथा घृतं त्रिविधञ्च काठिन्यो मिश्रस्वच्छता।
यथा स्थूलः सूक्ष्मज्योतिश्चिदात्मा सर्वव्यापितः।।२५९।।

जिस प्रकार घृत तीन प्रकार का होता है कठिनता, मिश्रता और स्वच्छता। उसी प्रकार चिदात्मा स्थूल, सूक्ष्म और प्रकाश रूप होता है और यह चिदात्मा सर्वत्र व्याप्त होता है।।२५९।।

शक्तियोगे महारुद्रः शक्तिहीने शवो मतः।
शक्तियोगे सृष्टिकर्ता शक्तियोगे चराचरः।।२६०।।

शक्ति के योग में शिव महारुद्र होते हैं तथा शक्ति के न होने पर शिव शव अर्थात् मृत शरीर माने जाते हैं। शक्ति के योग होने पर ही शिव सृष्टि करने वाले होते हैं। शक्ति योग में ही शिव चर और अचर होते हैं, अर्थात् चेतन एवं जड़ पदार्थों की रचना करते हैं।।२६०।।

चिच्छक्ती पूर्णकला सकलः परमेश्वरे।
मायाशक्तिं समाश्रित्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।।२६१।।

विशेष—शक्ति का अर्थ प्रकृति है तथा शिव पुरुष अर्थात् आत्मा है।

चित् (आत्मा जो चेतन तत्त्व है) और प्रकृति अर्थात् सेन्द्रिय शरीर यह पूर्ण कला है तथा परमात्मा कलाओं वाला है। भाव यह है कि चैतन्य जीव और यह सेन्द्रिय शरीर ही पूर्ण कलाओं वाला है, अर्थात् यही सब करता है। अकेला न जीव कुछ कर सकता है न शरीर ही। तथा यह कला देने वाला वह परमात्मा सकल है। माया शक्ति का आश्रय लेकर ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हुए हैं। अर्थात् ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं तो माया शक्ति का आश्रय लेकर करते हैं। विष्णु यदि संसार का पालन करते हैं तो माया शक्ति का आश्रय लेकर करते हैं तथा महेश्वर सृष्टि का संहार करते हैं तो वे भी मायाशक्ति का आश्रय लेते हैं।।२६१।।

गुणवती सत्यवती असती रजतामसा।
प्रकृतिर्विकृतिः शक्तिः शक्तिज्ञानसुखयुता।।२६२।।

यह शक्ति जिसे माया, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, काली, चण्डी आदि कहा गया है, वही सत् रज और तम तीनों गुण वाली है। वह सत्य भाव वाली अर्थात् जीव की सत्ता उसी के रहने पर है। वही असती अर्थात् बिना सत्ता वाली है। वही रजस् और तमस् गुण वाली है। यह शक्ति प्रकृति और विकृति दोनों प्रकार वाली है। अर्थात् प्रकृति प्रकारों वाली है और विकारों वाली है। प्रकृति के प्रकार और विकार महत्तत्त्व (बुद्धि और अहंकारं) हैं। पर प्रकृति किसी का विकार नहीं है, अतः प्रकृति के प्रकार और विकार सब हैं, इसलिये इसे प्रकृति विकृति कहा गया है। पंच तन्मात्राएँ और उनसे पंच महाभूत प्रकृति के ही विकार हैं, जो महत्तत्व से उत्पन्न हैं।

पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और पंच कर्मेन्द्रियाँ अहं तत्त्व की विकार हैं। इस प्रकार यह शक्ति प्रकृति विकृति वाली है और शक्ति ज्ञान और सुख से युक्त है। अर्थात् जीव को ज्ञान और सुख इस शक्ति (प्रकृति) (सेन्द्रिय शरीर) के रहने पर ही प्राप्त होता है।।२६२।।

प्रकृतिः पुरुषो ब्रह्म शक्तिसूक्ष्मे निरञ्जनम्।
स्वप्रकाशा यदा शक्तिः स्वप्रकाशः परमेश्वरः।।२६३।।

प्रकृति पुरुष और ब्रह्म शक्ति के सूक्ष्म होने पर निरंजन, निष्कलंक, आकृतिहीन हैं, जब शक्ति स्वप्रकाश होती है। शक्ति में अपना प्रकाश है और शक्ति के प्रकाश से परमेश्वर प्रकाश स्वरूप होता है।।२६३।।

चतुष्षष्टिकलापूर्णस्तथा सकल ईश्वरः।
सकले विविधा शक्तिस्त्रिविधानन्दवाचकः।।२६४।।

परमेश्वर चौंसठ कलाओं से परिपूर्ण है। इसीलिये वह सकल कहा जाता है तथा कलापूर्ण परमेश्वर में अनेकों प्रकार की शक्ति होती है। इसलिये यह परमेश्वर तीन प्रकार के आनन्दों का वाचक कहा गया है।।२६४।।

सन्धिनी ह्लादिनी संवित् तुर्यैका ब्रह्मसंशयः।
ह्लादतापकरी मिश्रा न कदापि परेश्वरः।।२६५।।

यह शक्ति सन्धि रखने वाली है, क्योंकि शरीरों से सन्धि रखती है और यही आनन्द और सन्ताप प्रदान करने वाली है तथा यह मिश्र है, क्योंकि मिल कर ही कुछ करने में समर्थ होती है। यह कभी भी परेश्वर नहीं है।।२६५।।

चिच्छक्तिसच्चिदानन्दब्रह्मरूपा सनातनी।
सर्वव्यापी न सन्तापी न भिन्नो ह्यद्वितीयकः।।२६६।।

चित् शक्ति सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूपा है और सबसे पुरानी है। सर्वत्र व्याप्त रहने वाली है, यह सन्तापी है अर्थात् सन्ताप (दुःख) देने वाली है और न टूटने वाली है तथा·निश्चय अद्वितीय है। अर्थात् इसके समान दूसरा कोई नहीं है।।२६६।।

शक्तिः शक्तिवन्तः कान्तो ह्यभिन्नः सुविचारतः।
तथा चित् चित्कला शक्तिरेकत्वं निर्गुणात्मनः।।२६७।।

शक्ति शक्ति रखने वाली है, शक्ति मनोहर है तथा शक्ति अच्छे विचार से अभिन्न है अर्थात् अच्छे विचार वाली है तथा चित् शक्ति जीव की शक्ति, जीव की कला है। शक्ति निर्गुण आत्मा की एकता है।।२६७।।

स्वप्रकाशो यथा भानुः प्रकाशज्योतिरव्ययः।।२६८।।

जैसे सूर्य स्वयं प्रकाश स्वरूप है तथा प्रकाश की ज्योति अव्यय है, वह कभी व्यय नहीं होती।।२६८।।

अन्धधन्दमन्दज्ञाने उदयास्तादिः कल्पितः।
कृशानुर्भानुरभिन्नो वह्निरनन्तवाचकः॥२६९॥

अन्ध, धन्ध और मन्द ज्ञान में उदय और अस्त आदि कल्पित है, अर्थात् इस संसार में उन्नति और अवनति होती रहती है। कृशानु (अग्नि) और सूर्य ये दोनों अग्नि हैं, अर्थात् अलग अलग नहीं है तथा अग्नि अनन्त है, इसका कभी भी अन्त नहीं होना है।।२६९।।

द्वित्वज्ञानं ज्ञानहीने ज्ञानिज्ञानस्वरूपकः।
चिच्छक्तिर्न भवेत् सूक्ष्मा स्वप्रकाशश्चिदात्मनः॥२७०॥

ज्ञानहीन मनुष्य में ज्ञानी और ज्ञान स्वरूप वाला द्वित्व ज्ञान होता है। अर्थात् ज्ञानहीन मनुष्य का ज्ञान संशयात्मक होता है। चित् शक्ति सूक्ष्म नहीं होती, चिदात्मा स्वप्रकाश स्वरूप है।।२७०।।

शुद्धसत्त्व। भगवत्या नित्या चिद्घन आत्मनः।
चिद्ब्रह्म सर्वव्यापी च चैतन्यं सती आत्मनः॥२७१॥

भगवती शुद्ध सत्त्व वाली है। चिद्घन आत्मा का रूप है। चैतन्य ब्रह्म सर्वव्यापी है। आत्मा की सत्ता चेतनता है।।२७१।।

चिद्घनं सकलं ब्रह्म शक्तिकारणकारणम्।
सवितृमण्डलशक्तिर्मध्यशून्ये सदाशिवः॥२७२॥

चिद्घन (चेतनता का समूह) अर्थात् समष्टि रूप ब्रह्म कलाओं से युक्त है। शक्ति कारण का कारण है, अर्थात् यह प्रकृति इस सेन्द्रिय शरीर का कारण तथा यह शरीर तथा जड़-चेतन सभी में जो २४ तत्त्व हैं, वे सभी एक दूसरे के कारण हैं तथा सब कारणों का कारण प्रकृति है। सूर्यमण्डल में तापरूप शक्ति है, जो परस्पर गैसों का विस्फोट होता है, उस सूर्य शक्ति के मध्य शून्य में सदाशिव विराजमान हैं।।२७२।।

प्रकाश आकाशो व्याप्यश्चिच्छक्तिरन्तरात्मनः।
आनन्दो ब्रह्मणो रूपं चिद्घनो हि प्रवाचकः॥२७३॥

आकाश में प्रकाश व्याप्त है, वह परमात्मा की चित् शक्ति है। आनन्द ब्रह्म का रूप है और चिद्घन उसे कहा जाता है।

चिद्घन का अर्थ है चित् = चेतन तत्त्व, घन = समूह। अर्थात् चेतन तत्त्वों का समूह तथा सीधे शब्दों में समष्टि रूप ब्रह्म कहा जा सकता है।।।२७३।।

आनन्दजननी स्थूला सूक्ष्माऽनङ्गस्वच्छता।
प्रत्यक्षोऽच्युतो नित्यो न नित्यो वागाडम्बरः॥२७४॥

आनन्द को उत्पन्न करने वाली स्थूल और सूक्ष्म कामदेव की स्वच्छता है, जो प्रत्यक्ष है। अच्युत (न नष्ट होने वाली) और नित्य है, परन्तु वाणी का आडम्बर नित्य नहीं है।।२७४।।

सकलाङ्गोऽन्तरङ्गोऽनङ्गोऽङ्गरूपिणाम्।
बहिरङ्गा महामाया प्रकाशशक्तिसम्भूता॥२७५॥

अंग रूपी कलाओं वाला शरीर सकलाङ्ग है, अन्तरंग और अंगरहित है, परन्तु महामाया बहिरंग है तथा प्रकाश की शक्ति से सम्भूत है।।२७५।।

प्रकाशो विनाशशक्तिरीश्वरी त्रिगुणात्मनी।
आकर्षणं विक्षेपणं दहनं सचलाचलम्॥२७६॥

प्रकाश और विनाश शक्ति (प्रकृति) ईश्वरी (सृष्टि रचना करने वाली) है। वह सत्त्व, रजस् और तमस् गुण वाली है। उसमें आकर्षण (खींचना), विक्षेपण (फेंकना), दहन (जलाना) आदि है तथा वह चल और अचल है।।२७६।।

विक्षेपणं तमहन्ता क्रिया सृष्टिप्रकाशिका।
कर्षणं बीजं बीजेन पालनमिच्छारूपिणम्॥२७७॥

विक्षेपण से वह अन्धकार को नष्ट करती है, जो सृष्टि को प्रकाशित करने की क्रिया है। कर्षण बीज है। बीज के लिये खेत का कर्षण किया जाता है, अतः कर्षण बीज है और बीज के द्वारा इच्छा रूपी पालन है।।२७७।।

दहनं दहनकार्यं ज्ञानरूपा महेश्वरी।
त्रिगुणे जायन्ते प्राणायामा सर्वेन्द्रियाणि च॥२७८॥

दहन जलाने का कार्य है। महेश्वरी शक्ति (माया) ज्ञानरूपा है। त्रिगुण सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण इन गुणों में नौ प्राणों आयाम अर्थात् प्राणों का आना है। अर्थात् इन तीनों गुणों से ही शरीरों में प्राण आते हैं और गुणों से ही सब इन्द्रियाँ हैं।।२७८।।

खं वायुर्ज्योतीरूपं च पृथिवी खण्डधारिणी।
प्रकृतिः पुरुषः शिवो विकृतिर्जीवव्यापिता॥२७९॥

आकाश और वायु ज्योतिरूप हैं। पृथ्वी खण्डों टुकड़ों (अणुओं) का धारण करने वाली है। प्रकृति और पुरुष शिव हैं। प्रकृति की विकृति जीवों में व्यापित है। प्रकृति (महत्तत्त्व बुद्धि से लेकर अहं, पाँच सूक्ष्म तत्त्व, पाँच स्थूल

तत्त्व, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ) ये सब प्रकृति के विकार हैं। ये सब जीवों में व्यापित हैं।।२७९।।

चित्कला अंशसम्भूता प्रकृतिर्द्विविधा स्मृता।
सूक्ष्मनीरं जलं वीर्यं स्थूलो विराट्पादपः।।२८०।।

चित्कला और अंश सम्भूता इन नामों से प्रकृति दो प्रकार की बतायी गयी है। सूक्ष्म नीर और जल वीर्य है। विराट् वृक्ष स्थूल है। विराट् वृक्ष रूपी शरीर स्थूल है।।२८०।।

महत्तत्त्वगतो वा स्यात् शाखावल्लिरूपान्तरम्।
गुणशक्तिर्विविधा च सुकृतिविकृतिमयी।।२८१।।

शाखाओं, बल्लियों वाला वृक्ष रूपी शरीर महत्तत्त्वगत है, अर्थात् जैसे शाखायें और बल्लियां वृक्ष में होती हैं तथा वृक्ष में पैदा होती हैं, वैसे यह शरीर महत्तत्त्व की शाखायें हैं, अर्थात् महत्तत्त्व (बुद्धि) से यह अनेकों इन्द्रियों वाला महाभूतों वाला शरीर उत्पन्न हुआ है। सुकृति सुन्दर कृति वाली और विकार वाली यह गुणशक्ति अनेकों प्रकार की है। भाव यह है कि यह प्रकृति जिसे सुकृति कहा गया है, वह प्रकृति और विकृति रूप से अनेकों प्रकार की है। प्रकृति जो किसी का विकार नहीं है, वह सत्त्व, रजस् और तमस् तीन गुण वाली है। यह किसी का विकार नहीं है। सभी महत्तत्त्व (बुद्धि), अहंकार, मन, पंचतन्मात्राएँ, पंच स्थूल भूत तथा दस इन्द्रियाँ, सब इस प्रकृति के प्रकार तथा विकार हैं। इस प्रकार यह प्रकृति सुकृति और विकृतिमयी है।।२८१।।

एकाकृतिस्त्रिधा भाति बालिका युवती जरा।
कामधामोऽविश्राम आत्मारामस्तथोदितः।।२८२।।

एक आकृति अर्थात् प्रकृति की एक आकृति तीन प्रकार की होती है। भाव यह कि मानव शरीर की आकृति तीन प्रकार प्रतीत होती है। बालिका, युवती और वृद्धा अर्थात् इस शरीर की तीन अवस्थायें होती हैं—बचपन, जवानी और बुढ़ापा। काम का धाम अविश्राम है, अर्थात् काम से जो शरीर पैदा हुआ है, उसे कभी आराम नहीं मिलता, वह स्वयं एवं स्वसम्बन्धियों के पालन में निरन्तर लगा रहता है, उसे मृत्यु पर्यन्त आराम नहीं मिल पाता। आत्मा का आराम उससे भी उच्च है।।२८२।।

बालिकायाः सूक्ष्मकामः प्रकाशकामः कामिनी।
जराव्याप्तः कामलुप्तः स्वभावभावभाविनी।।२८३।।

बालिका का सूक्ष्म काम है, अर्थात् जब इस शरीर में बचपन होता है, तब कामदेव सूक्ष्म रूप में रहता है तथा जब इस शरीर में जवानी आती है, तब यह शरीर काम का प्रकाश रूप होता है, तब यह प्रकृति कामिनी कही जाती है, परन्तु जब यह शरीर जरा (वृद्धावस्था) से व्याप्त होता है, तब काम का लोप हो जाता है। यह स्वभाव भाव और भाविनी रूप वाली प्रकृति है।।२८३।।

महत्तत्त्वं त्रिधा सत्यं ज्ञानेच्छाक्रियात्मकम्।
प्रकाशविनाशनाशतत्त्वरूपा महेश्वरी।।२८४।।

महत्तत्त्व तीन प्रकार के रूपों वाला है। ज्ञानात्मक, इच्छात्मक और क्रियात्मक। अर्थात् महत्तत्त्व (बुद्धि) से ही किसी भी विषय का ज्ञान होता है तथा जब ज्ञान हो जाता है, तब उसे ग्राह्यत्व और त्याज्यत्व को जान कर उसको पाने और छोड़ने की इच्छा होती है तथा जब इच्छा होती है, उसे पाने और छोड़ने की क्रिया होती है। इस प्रकार यह महेश्वरी (प्रकृति) शिव की शक्ति माया प्रकाश, विनाश और नाश तत्त्वरूपा है। अर्थात् यही प्रकाश (सृष्टि की रचना) करती है और यही सृष्टि का नाश करती है। अतः यह नाश तत्त्वरूप है।।२८४।।

सृष्टिनाशे भवेत् सूक्ष्मः शक्तिः प्रकृतिवाचिनी।
तदा तमोभूतसर्वमप्रज्ञातमलक्षणम्।।२८५।।

जब प्रकृति सृष्टि का नाश करती है, उस समय यह सूक्ष्म हो जाती है। अर्थात् प्रकृति के विकार रूप समस्त अवयव पृथिवी तत्त्व जल में, जल तत्त्व अग्नि में, अग्नि तत्त्व वायु में और वायु तत्त्व आकाश में विलीन हो जाते हैं। इन्द्रियाँ मन में और मन अहंकार में विलीन होते हुए सब महत्तत्त्व में और फिर महत्तत्त्व प्रकृति में विलीन हो जाता है। तब वहाँ सूक्ष्म स्वरूप वाली प्रकृति ही शेष रहती है। इस शक्ति को ही प्रकृति कहा जाता है। उस समय सब कुछ अन्धकारमय हो जाता है। उस समय कुछ भी प्रकृष्ट रूप से ज्ञात नहीं होता तथा उस सबका कोई लक्षण नहीं, अर्थात् उस स्थिति को न जाना जा सकता है और न उसका कोई लक्षण ही है।।२८५।।

निराकारोऽन्धकारः सूक्ष्मशक्तिः स्वभावतः।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवद् जीवभावः प्रकाशितः।।२८६।।

प्रकृति की सूक्ष्म शक्ति स्वभावतः निराकार (आकारहीन) और अन्धकार स्वरूप होती है। तथा जीव का अस्तित्व जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति के समान प्रकाशित होता है।

जीव की तीन अवस्थायें होती हैं, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जब जीव अपनी इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान से पदार्थों का ज्ञान करता है, तब वह जीव की जाग्रत् अवस्था है। जिस अवस्था में इन्द्रियों के कार्य सुनना, स्पर्श करना, देखना, चखना और सूंघना आदि नहीं रहते ऐसा जो हाथी घोड़ा आदि की कल्पनाओं वाला ज्ञान है, जिसमें अन्त:करण की अवस्था प्रत्यक्ष रहती है, यह जीव की स्वप्नावस्था है। जैसे स्वप्न में मनुष्य खेलता, कूदता, खाता-पीता है; परन्तु इन्द्रियां कुछ नहीं करती; केवल जीव ही विना शरीर की सहायता के सब कुछ करता है यही जीव की स्वप्नावस्था है तथा अविद्या विषयक अविद्या को सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। अर्थात् सुषुप्ति अवस्था में अज्ञान ही अज्ञान रहता है। यह जीव की प्रलयावस्था है। प्रलयकाल में जीव अज्ञानता में पड़ा रहता है।।२८६।।

अनवस्करश्चिदाकारो ज्ञानपक्षप्रदर्शितः।
तुर्यावस्था चतुर्थी च पञ्चमी प्रेममिलिता।।२८७।।

ऊपर जीव की तीन अवस्थायें कही गयीं। अब चौथी अवस्था तुरीयातीत है, जिसमें चिदाकार (जीव का आकार) अनवस्कर होता है। अनवस्कर का अर्थ है-शरीर से कोई मल (विष्ठा, मूत्रादि) न निकालने वाला। अत: जिस अवस्था में जीव शरीर से कोई मल न निकाले, वह तुरीयावस्था है। इसी अवस्था में ज्ञान का पथ प्रदर्शित होता है। इसे ही मोक्ष की अवस्था कहा जा सकता है। जब जीव को पूर्ण ज्ञान हो जाता है, तब वह इस तुरीयावस्था मोक्ष को प्राप्त होता है। इसकी पाँचवीं अवस्था प्रेममिलिता है, अर्थात् जिस अवस्था में आत्मा (जीव) परमात्मा में मिल जाता है, उसे प्रेममिलिता अवस्था कहा जाता है।।२८७।।

समष्टिव्यष्टिरूपेण महत्तत्त्वं द्विधा मतम्।
सत्त्वे विद्या रजस्तमे अविद्या परिकीर्तिता।।२८८।।

समष्टि और व्यष्टि रूप से महत्तत्त्व दो प्रकार का माना गया है। जब महत्तत्त्व (बुद्धि) सत्त्वगुण में रहती है, तब विद्या की प्राप्ति कराती है तथा जब वह रजोगुण और तमोगुण युक्त रहती है, तब अविद्या कही जाती है।।२८८।।

विद्यायोगे शिवादीनां सृष्टिस्थितिलयात्मकः।
सत्त्वाधिक्ये भवेद्देवो रजाधिक्ये नरादिकः।।२८९।।

महत्तत्त्व के सतोगुणपरक रहने पर विद्या का योग रहता है और विद्या का योग होने पर शिव आदि के विषय में सृष्टि स्थिति और प्रलयात्मक ज्ञान रहता है। अर्थात् कौन सृष्टि करता है, कौन इस सृष्टि का पालन करता है और इसका विनाश

कौन करता है, यह ज्ञान रहता है अतः तदनुकूल उपाय भी सत्त्वगुणपरक बुद्धि निर्णय लेता है। महत्तत्त्व में सत्त्व की अधिकता होने पर देवता होना चाहिये और रजोगुण की अधिकता होने पर मनुष्य आदि होने चाहियें। कथन का आशय है कि जब महत्तत्त्व बुद्धि में सत्त्वगुण की अधिकता होती है, तब देव सृष्टि मानी जाती है तथा मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की सृष्टि महत्तत्त्व में रजोगुण की अधिकता होने पर होती है।।२८९।।

विमर्श—सांख्य इसका समर्थन करता है कि महत्तत्त्व में जब प्रकृति के सत्त्वगुण की अधिकता होती है, तब देवसृष्टि होती है तथा जब रजोगुण की अधिकता होती है, तब मानव की सृष्टि होती है तथा जब तमोगुण की अधिकता होती है, तब पशु-पक्षी आदि की सृष्टि होती है। अतः सत्त्वगुण प्रधान देवता है रजोगुण प्रधान मनुष्य है और तमोगुण प्रधान पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि हैं। यहाँ देवताओं का अर्थ उन व्यक्तियों से लिया जा सकता है, जो अच्छे गुण वाले परोपकारी, शान्त और दान्त स्वभाव के व्यक्ति हैं। भगवद्गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि जो बुद्धि (महत्तत्त्व) प्रवृत्तिमार्ग को करणीय अकरणीय कर्म को, भय तथा अभय को तथा बन्धन और मोक्ष को यथार्थ जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है तथा जिस बुद्धि द्वारा मानव धर्म और अधर्म को यथार्थ रूप से नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है और हे अर्जुन! जो तमोगुणी बुद्धि अधर्म को धर्म मानती है तथा सब पदार्थों को विपरीत मानती है, वह बुद्धि तामसी है।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।।
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।।
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।।

—गीता १८/३०-३२

तमाधिक्ये उद्भिजादिर्मिश्रे जीवोऽनेकधा।
सत्सङ्गे जायते श्रद्धा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।२९०।।

महत्तत्त्व में तमोगुण की अधिकता होने पर पृथ्वी को फोड़ कर पैदा होने पर पेड़-पौधों की सृष्टि होती है, क्योंकि इन सबमें भी जीव होता है। सज्जनों की संगति करने पर विद्या प्राप्त होती है और फिर विद्या से मानव को अमृत प्राप्त होता है।।२९०।।

अमृतचिद्रसशक्तिश्चिद्घनः कालिका परा।
सुधानन्दो मिश्रखण्डो ह्यखण्डो मण्डलान्तरा॥२९१॥

अमृत रूपी चैतन्य के रस से युक्त हैं। वे चिद्घन समष्टि रूप ब्रह्म तथा दूसरी शक्ति कालिका है, जिसे प्रकृति कहा जाता है। अमृत रूप चैतन्य रस समन्वित चिद्घन (परमात्मा) में सुधा (अमृत) का आनन्द है और मिश्रखण्ड अर्थात् उनमें अनेकों टुकड़े रूप जीवों का मिश्रण है। मिश्र खण्ड होते हुए भी वह अखण्ड है, अर्थात् उसके टुकड़े नहीं किये जा सकते। तथा वह अपने मण्डल के अन्तर्गत ही अखण्ड रूप से विद्यमान है।।२९१।।

महाविद्याक्रमे आद्या स्थूलसूक्ष्मचिदात्मिका।
महाकालो विद्यावन्तः श्रीकान्तादिसमन्वितः॥२९२॥

महाविद्या के क्रम में आद्या (सबसे पहली) शक्ति स्थूलसूक्ष्मचिदात्मा वाली है, अर्थात् स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर चैतन्ययुक्त आत्मा वाली है। महाकालेश्वर शिव विद्यावान् हैं और श्रीकान्ता आदि से समन्वित हैं।।२९२।।

चिच्छक्तिः प्रकृतिर्नारी हरगौरीप्रवाचकः।
निष्कलो ब्रह्मस्वरूपं हरादिरूपकल्पनम्॥२९३॥

चित् शक्ति (चैतन्य जीव की शक्ति) प्रकृति है तथा वह नारी है। इस प्रकार महाकाल और चित् शक्ति प्रकृति दोनों मिल कर हरगौरी (शिव-पार्वती नाम के वाचक हैं। ब्रह्मस्वरूप निष्कल है, जो कि हर (शिव) आदि के रू हैं।।२९३।।

असारज्ञानात्मज्ञवचनं परिभाषणम्।
निराकार एकाकारः सुवर्णाकारशब्दितः॥२९४॥

असार ज्ञानात्मा को जानने वाला वचन ही उसका परिभाषण है। तथा उस निष्कल ब्रह्म का केवल एक ही आकार है और वह है–निराकार। जो यह निराकार शब्द सुन्दर वर्ण के आकार के रूप में शब्दित हुआ है, अर्थात् वह निराकार शब्द ही सुन्दर वर्ण वाला शब्द है।।२९४।।

चिच्छब्दवाचकं ब्रह्म सचैतन्यं परात्मनः।
चिद्घनः सकलं ब्रह्म एकात्मा चणकाकृतिः॥२९५॥

वह ब्रह्म चित् शब्दवाचक है, अर्थात् उस ब्रह्म को चित् कहा गया है। वह चेतनयुक्त है तथा परात्मनः (आत्मा से परे है) चिद्घन सकल ब्रह्म है, एकात्मा है और चने की आकृति वाला है।।२९५।।

स्त्रीरूपं कालिकारूपं पुंरूपं परमेश्वरः।
सुवर्णमेकरूपं हि द्विरूपं मूर्तिकल्पना॥२९६॥

कालिका (प्रकृति) का रूप स्त्री रूप है तथा परमेश्वर पुरुष रूप है। एक रूप उनका सुन्दर वर्ण रूप है। मूर्ति की कल्पना दूसरा रूप है।

शक्तियुक्ते भवेच्छिवः शक्तिहीने शवो मतः।
निष्कलः शक्तिहीनो हि तमोरूपे समावृतः॥२९७॥
व्यक्तो वह्निर्यदा लुप्तः अन्धकारसमन्वितः।
तमो मतः काष्ठगतो न वह्निः काष्ठदर्शितः॥२९८॥

शक्ति से युक्त होने पर परमेश्वर शिव होते हैं तथा शक्ति से विहीन शव (मुर्दा) माने गये हैं। निष्कल कलाहीन (शक्तिहीन) है। निष्कल तम के रूप में समावृत है। दिखाई देने वाली आग जब लुप्त हो जाती है, अर्थात् आग जब बुझ जाती है, तब वह अन्धकार से समन्वित हो जाती है, उस समय अन्धकार काष्ठगत माना जाता है, उस समय काष्ठ में अग्नि नहीं दिखाई देती।।२९७-२९८।।

चिद्घनः सकलं ब्रह्म चैतन्यं शक्तिसंयुतम्।
स्त्रीरूपं पुरुषाकारे सच्चिद्धामे सदा स्थितम्॥२९९॥

चिद्घन कलाओं से युक्त ब्रह्म है। वह समष्टि जीवों का समूह रूप ब्रह्म कलाओं वाला है। संसार उसी की कलाओं से चल रहा है तथा यह ब्रह्म शक्ति (प्रकृति) से युक्त चैतन्य (पुरुष) है। वह स्त्री रूप में और पुरुष के आकार में सत् और चित् के धाम में सदैव स्थित है। सत् चित् धाम का अर्थ है सत् प्रकृति और चित् चैतन्य आत्मा, अतः प्राणी शरीर सत् प्रकृति और चित् (आत्मा) का एक मिश्रण है। प्रकृति उसका प्रत्यक्ष दर्शनीय शरीर है तथा चित् उस शरीर की आत्मा है, अतः सत् चित् धाम यह प्राणियों का शरीर ही है। इस शरीर में चिद्घन (परमात्मा) का निवास है। ये शरीर ही उस परमेश्वर का धाम है।।२९९।।

मायाधामे महेश्वरो महामाया सह युतः।
सत्यधामे तत्त्वं महद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्॥३००॥

मायाधाम में महेश्वर महामाया के साथ स्थित हैं। सत्यधाम में महत्तत्त्व स्थित है, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक है।।३००।।

सुकृतिर्विकृतिः शक्तिर्विकृतिर्विकृतिर्मनः।
पञ्चभूतं सत्त्वांशेन त्रिगुणो मनकल्पितः॥३०१॥

शक्ति सुन्दर कृति अर्थात् प्रकृति और विकृति है, अर्थात् यह सुन्दर कृति

है तथा इससे अन्य तत्त्व उत्पन्न होते हैं। इसीलिये विकृति भी है तथा मन विकृति है, क्योंकि यह विकारों वाला है। पंचभूत सत्त्व के अंश से उत्पन्न हुए हैं। त्रिगुण (सत्त्व, रजस् और तमस्) मन में कल्पित हैं।।३०१।।

सत्त्वरूपा इच्छाशक्ती रजः प्राणक्रियात्मकः।
तमांशे ज्ञानशक्तिश्च ज्ञानाज्ञानमिश्रिता।।३०२।।

इच्छाशक्ति सत्त्वरूप है, अर्थात् जब मन में सत्त्वगुण का उद्रेक होता है, तब इच्छा पैदा होती है। और रजोगुण प्राणक्रियात्मक है। भाव यह है रजोगुण के उद्रेक से प्राण क्रिया (श्वसन, खान, पान, मलमूत्रत्यागादि क्रियायें होती हैं। तम के अंश में ज्ञान शक्ति है, परन्तु वह ज्ञानशक्ति अज्ञान से मिश्रित है।।३०२।।

प्रकृतिः पुरुषः प्राज्ञः सर्वज्ञो विश्व ईश्वरः।
वैश्वानरस्तैजसञ्च प्रकृतिपुरुषगतः।।३०३।।

प्रकृति और पुरुष प्राज्ञ हैं। विश्वेश्वर सर्वज्ञ हैं। वैश्वानर (अग्निदेव) तेज को प्राप्त कर प्रकृति और पुरुष में समाये हुए हैं।

विशेष–वैश्वानर–विश्वनर + अण = वैश्वानर। वैश्वानर अग्नि को कहा गया है तथा यह अग्नि जठराग्नि है, जो भोजन को पचाती है। वेदान्त में कहा गया है कि अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः। प्राणापान समायुक्त पचाम्यन्नं चतुर्विधम्। यहाँ अग्नि का ही कथन है कि मैं वैश्वानर होकर प्राणियों के शरीर में रहता हूँ और प्राणवायु और अपान वायु के साथ मिल कर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ। इस प्रकार वैश्वानर का अर्थ जठराग्नि हुआ। उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है कि वैश्वानर प्रकृति और पुरुषगत है। इसका सीधा अर्थ है यह जठराग्नि प्राणियों के शरीर में निवास करता है, क्योंकि प्रकृति यह शरीर है तथा पुरुष उसके अन्तर्गत आत्मा है। अतः जीवित प्राणी ही प्रकृति पुरुष है।

प्रकृति और पुरुष प्राज्ञ है, अतः यहाँ प्राज्ञ का अर्थ है प्रकृष्टरूपेण जानाति प्र + ज्ञा + क = प्रज्ञ + अण् = प्राज्ञ, जो पूरी तरह जानता है, वह प्राज्ञ है। अतः प्रकृति और पुरुष दोनों मिले हुए जो जीवित शरीर हैं, वे प्राज्ञ हैं, परन्तु सर्वज्ञ नहीं। सर्वज्ञ विश्वेश्वर (परमात्मा) ही है। प्राज्ञ का दूसरा अर्थ प्र + अ + ज्ञा + क के अनुसार प्राज्ञ शब्द का अर्थ है 'प्रकृष्ट रूपेण न जानाति' अर्थात् जो अच्छी तरह नहीं जानता है, अर्थात् अज्ञानी। इस प्रकार अर्थ होगा कि प्रकृति पुरुष अर्थात् प्राणी अज्ञानी हैं, परन्तु परमात्मा सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) है।।३०३।।

दिवाधारो मायाकारो ब्रह्मशक्तिरनन्तकः।
आधेयः पुरुषः सर्वश्चैतन्यशक्तियोगतः।।३०४।।

यह ब्रह्म की शक्ति अर्थात् प्रकृति दिन अथवा स्वर्ग का आधार है, अर्थात् दिन (सूर्य) स्वर्ग को धारण करती है तथा आकार माया रूपी है। यह सत्य नहीं अर्थात् क्षणभंगुर है, इसमें कुछ भी स्थिर नहीं है। और यह अनन्तक है, अर्थात् इसकी अस्थिरता का कभी अन्त नहीं होना है। इस प्रकृति का आधेय पुरुष (आत्मा) है, जो सब कुछ है तथा चैतन्य की शक्ति वाला है। इस प्रकार प्रकृति आधार है तथा उसमें घुसा हुआ पुरुष आधेय है। आधार में आधेय है, आधार नहीं तो आधेय नहीं, आधेय नहीं तो आधार नहीं।।३०४।।

आधारः प्रकृतिशक्तिर्बृहद्ब्रह्मप्रतिष्ठितः।
इन्द्रियविषया देवाः कुण्डली सती चालिताः।।३०५।।

प्रकृति शक्ति आधार है, उसमें बृहद् ब्रह्म प्रतिष्ठित है। इन्द्रियों के विषय देवता हैं, जो कुण्डली सती (प्रकृति) से चालित है।।३०५।।

विमर्श—यहाँ पर सांख्य का आधार लिया गया है; परन्तु अन्तर यह है कि सांख्यदर्शन प्रकृति के चौबीस तत्त्व मानता है। पच्चीसवां तत्त्व पुरुष (जीवात्मा) को मानता है; क्योंकि वह नरीश्वरवादी दर्शन है। सांख्य के अनुसार पुरुष (आत्मा) और प्रकृति (चौबीस तत्त्वों वाला शरीर) दोनों मिलकर ही समस्त चर अचर की रचना करते हैं और संसार चल रहा है; परन्तु इस षडाम्नाय तन्त्र में एक २६वां तत्त्व भी स्वीकार किया गया है, वह है—परमात्मा जिसे यहाँ चिद्घन कहा गया है। उसी को बहद्ब्रह्म भी कहा गया। वैसे चिद् का अर्थ है—चेतन (जीव) जिसे आत्मतत्त्व भी कह सकते हैं तथा चिद्घन का अर्थ होगा—चैतन्यों का समूह जो सीधे तौर पर परमात्मा ही है, जिसे वेदान्त समष्टि ब्रह्म कहता है।

यह समष्टि ब्रह्म ही प्रकृति शक्ति में प्रतिष्ठित है। इस दर्शन के अनुसार प्रकृति और प्राज्ञ अर्थात् अज्ञानी हैं; परन्तु वह चिद्घन समष्टि रूप ब्रह्म परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ हैं, जिसे तन्त्र पर शिव सदाशिव कहता है। तन्त्र की भाषा में शिव परुष है और शक्ति प्रकृति है, जिसका आविनाभाव सम्बन्ध बता दिया गया है। परन्तु इन दोनों बृहद् ब्रह्म परमेश्वर चिद्घन प्रतिष्ठित हैं। जो इस प्रकृति पुरुष युक्त चराचर जगत् को चला रहा है। यहाँ यदि यह तर्क दिया जाये कि कोई नहीं चला रहा यह तो स्वतः संचालित है, तब तो प्रकृति पुरुष (सप्राण शरीर) चाहे तब तक जीवित रह सकता है; क्योंकि जब वे दोनों ही सब कुछ है तब क्या वे जो चाहे सो कर सकते हैं। अतः यह रस्य वैज्ञानिक है।

स्वप्ने ज्ञानं यथा लभ्यं दीर्घस्वप्नोऽनिद्रितः।
प्राणे लुप्तः सुप्तकाले मरणे कारणे गतः।।३०६।।

दीर्घ स्वप्न वाला व्यक्ति स्वप्न में उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त करता है, जिस प्रकार कि विना नींद वाला व्यक्ति प्राप्त करता है। अतः सोने के समय पुरुष प्राण में लुप्त रहता है, अर्थात् सोने पर पुरुष प्राण में विलीन रहता है; परन्तु मरने पर वह पुरुष कारण शरीर में चला जाता है।।३०६।।

तस्मिन् सूक्ष्मरूपा शक्तिः स्थूलरूपा चराचरे।
पिण्डव्रह्माण्डसंव्याप्या व्यक्ताव्यक्ता कुलाकुले।।३०७।।

उस कारण प्रकृति में शक्ति सूक्ष्म रूप होती है तथा वही शक्ति चराचर जगत् में स्थूल रूप हो जाती है। यह शक्तिरूपा प्रकृति शरीरों और ब्रह्माण्ड में सम्यक् रूप से व्याप्त होकर स्थित है तथा कुल और अकुल अर्थात् शक्ति और शिव दोनों व्यक्त और अव्यक्त हैं। अर्थात् शक्ति चौबीस तत्त्वों वाली प्रकृति व्यक्त है, अर्थात् दिखाई देती है तथा शिव अव्यक्त अर्थात् दिखाई नहीं देते।।३०७।।

तुर्यधामे आत्मारामः पञ्चमपुरुषार्थदः।
पुरस्वरः पुरहरो जीवपुरोऽनेकधा।।३०८।।

तुर्यधाम में आत्माराम है। जो पंचम पुरुषार्थ को प्रदान करने वाला है। पुरस्वर पुरहर है, जीवों के पुर अनेक प्रकार के हैं।।३०८।।

त्रिपुरा प्रथमगम्या विराडा त्रिपुरेश्वरी।
जीवपुरे गुणमयी स्थूलसूक्ष्मचिदात्मनि।।३०९।।

त्रिपुरा प्रथम गम्य है। वही विराडा तीनों पुरों की ईश्वरी है। वह जीव पुर में अर्थात् चेतन शरीर में स्थूल और सूक्ष्म चिदात्मा में महा त्रिपुरेश्वरी का वास है।।३०९।।

क्वचिद् व्यक्ता क्वचिद् गुप्ता स्वरूपं वरुणपुरे।
भूरूपं वह्निसंव्याप्तं कामकलाकलान्तरे।।३१०।।

वरुणपुर में अर्थात् जल में वह शक्ति कहीं व्यक्त होती है और कहीं गुप्त होती है। कामकला की कला में पृथ्वी का रूप अग्नि से संव्याप्त है।।३१०।।

कामः सामः कुलाकुलः पुररूपेण उदितः।
कलाधाम आत्मधाम कामसाम प्रकाशितः।।३११।।

काम साम कुल अकुल पुर रूप से उदित है। कलाधाम आत्मधाम ही काम साम प्रकाशित है।।३११।।

विमर्श–कुल शब्द अनेकार्थक है। १. मूलाधार चक्र, २. जीव, ३. प्रकृति, दिक्, काल, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन नौ तत्त्वों को कुल कहा जाता है।

श्रीचक्र में कुल योनि को कहा गया। सौभाग्यभास्कर के ग्रन्थ के अनुसार कुल शक्ति को कहा गया है। अतः यही उचित है तथा अन्य जो नौ अर्थ हैं, वे सब शक्ति में ही समा जाते हैं। अतः कुल का अर्थ शक्ति (प्रकृति) ही उचित है तदनुसार अकुल का अर्थ है–शिव। कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिवमुच्यते।

स्वरूपमेकरूपं हि महाशक्तिस्वरूपिणी।
ईकाररूपिणी वह्निः कामिनी कामदायिनी॥३१२॥

महाशक्तिरूपिणी प्रकृति का अपना रूप है तथा उसका एक रूप है। ई वर्ण के आकार वाली अग्नि है, जो काम से युक्त है और काम को प्रदान करने वाली है॥३१२॥

खचरः परमहंसः कामरूपः परशिवः।
हकारः शून्यवाक्यार्तः कन्दर्पदर्पः अनिलः॥३१३॥

ख वर्ण आकाश में विचरण करने वाला है और परम हंस है। और पर शिव कामरूप है। ह कार (ह वर्ण) शून्य वाक्य का अर्थ है। वायु कामदेव का दर्प है॥३१३॥

रकारः कामिनी साक्षाद् भूरग्निजलमिश्रितः।
अनिला लीनाः सर्वत्र दश द्वादश अङ्गुलः॥३१४॥

र कार (र वर्ण) साक्षात् कामिनी है तथा यह वर्ण पृथ्वी और अग्निमिश्रित है। दस और बारह अंगुल सब जगह वायु से लीन है॥३१४॥

द्विदले दलं बलं च षड्चक्रे बलं निष्कलम्।
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं वृषशून्यं पुरातनम्॥३१५॥

द्विदल में दल और बल है। षट्चक्र में निष्कल बल है। पश्चिम को मुख वाला लिङ्ग है, जो कि वृषशून्य और पुरातन है॥३१५॥

कुण्डलीकुलमाख्यातं कामकलाप्रतिष्ठितम्।
वृषारूढो महाचण्डोऽस्थिमालविभूषितः॥३१६॥
नागिनी रागिणी नित्यं मुखचुम्बनतत्परा।
शवासना सवासनामूर्ध्वे शम्भुनिपातनम्॥३१७॥

कामदेव की कला से प्रतिष्ठित कुण्डली के कुल को कहा गया है। जिसमें वृष (बैल) पर आरूढ़ महाचण्ड (शिव) हड्डियों की माला से विभूषित हैं और वहाँ नित्य रागयुक्त नागिनी नित्य उनके मुख का चुम्बन करने के लिये तत्पर है। वासना से युक्त ऊर्ध्व में शवासन (मृतशरीर पर बैठे हुए) शम्भु स्थित हैं॥३१६–३१७॥

जीवनं जीवनदाने पुनः शम्भुः सचेतनः।
पञ्चाननः पञ्चकालः कला षडाननसमा॥३१८॥

वे शम्भु जीवनदान करने में जीवन हैं, क्योंकि वे सचेतन हैं, अर्थात् प्राणियों को चेतनता प्रदान कर वे जीवन देते हैं। पंचानन (पाँच मुख) उनके पाँच काल हैं, उनकी कलायें छः मुख वाली हैं।।३१८।।

विमर्श–शिव (शम्भु) के पांच मुख, कुलार्णव्तंत्र में वर्णित हैं। शिव के पांच मुखों से पांच आम्नाओं की उत्पत्ति हुई है। वे हैं–१. पूर्वामनाय, २. पश्चिमाम्नाय, ३. दक्षिणाम्नाय, ४. उत्तराम्नाय, ५. ऊर्ध्वाम्नाय। ये पांचों ही मोक्षमार्ग के प्रवर्तक हैं। तान्त्रिक वाङ्मय का आम्नाय विभाग प्रसिद्ध है। इनमें पहला विभाग शैवों तथा दूसरा शक्तों के लिये मान्य है। कुलार्णव तंत्र में बताया गया है कि शिव के तत्पुरुष सद्योजात, अघोर, वामदेव और ईशान नामक पांच मुखों से क्रमशः पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर और ऊर्ध्व आम्नायों का और उसके अन्दर के तन्त्रों की उत्पत्ति हुई है। परशुरामकल्प सूत्र (१-२) नित्यषोडशिकार्णव तन्त्र में चार ही आम्नाय है। सभी टीकाकार इसमें सहमत हैं। सौन्दर्य लहरी (१:१०) में छः आम्नाय बताये गय हैं। टीकाकार अनुत्तराम्नाय को छठा आम्नाय मानते हैं। नेत्र तन्त्र (१६/७६) और तन्त्रालोक में १५, २०४-२०६ में षष्ठ आम्नाय का उल्लेख रहस्य स्रोतस्, ज्येष्ठ, अधोवक्त्र, पातालवक्त्र अथवा पिचुवक्त्र के नाम से हुआ है। इन षडाम्नाय तन्त्रों का विशद वर्णन शक्तिसंगम में मिलता है; परन्तु उसमें भी स्पष्ट रूप से षडम्नाय नाम नहीं मिलता। वहाँ यह तो कहा गया है कि ऊर्ध्वाम्नाय के बाद छठा आम्नाय 'पातालाम्नाय' है। अतः इस पातालाम्नाय को ही षडाम्नाय मानना उचित है; क्योंकि इसकी कुछ विशेषता षडाम्नाय तन्त्र से मेल खाती हैं।

ऐक्यमर्थः पुरुषार्थः कामकलास्वरूपतः।
पूर्वास्यः शास्ता कुलं च याम्यः पुंरूपशब्दितः॥३१९॥
पश्चिमः सुखमुखं च स्थूलकुलपुरोः स्थितः।
उत्तममत्युमुखं शरामुखं च निष्कलम्॥३२०॥

उनमें एकता स्थापित करना अर्थात् उनमें स्वयं को मिला देने का अर्थ ही पुरुष (आत्मा) का लक्ष्य है। तथा वह ऐक्य भी कामकला के स्वरूप से उनमें अपनी आत्मा को मिलाना है। पूर्व मुख शासन करने वाला है। दक्षिण मुख कुल (शक्तिरूप) है। जो पुं रूप से शब्दित है। पश्चिम मुख सुख है, जो स्थूल शक्ति के आगे स्थित है। ऊपर की ओर उर मुख है और शरामुख निष्कल है।।३१९-३२०।।

ऊर्ध्व उग्रः सदा व्यग्रः षडाननासनादिकः।
चित्कलास्थो महाकालो विद्यायोगे शिवादयः।।३२१।।

ऊपर में उग्र षडानन आदि हैं, जो सदा व्यग्र हैं तथा चित्कलास्थ (चैतन्य) की कला में स्थित महाकाल है तथा विद्या के योग शिव आदि हैं।।३२१।।

गुणयोगे भवेज्जीवो जन्तुरूपे प्रतिष्ठितः।

सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों गुणों के योग में जीव (पुरुष/आत्मा) जन्तु प्राणी के रूप में प्रतिष्ठित है।।३२१।।

कमलं विमलं शून्यं सकलं कमलं खगः।।३२२।।
सूर्यवत् पूर्णमानेऽपि सुकमलः प्रकाशकः।

कमल, विमल और शून्य है। सकल कलाओं में से युक्त कमल खग (आकाश में जाने वाला) है। सूर्य के समान पूर्ण मान में भी सुन्दर कमल प्रकाशक है।।३२२।।

सुधावृष्टिस्तदा सृष्टिः पूर्णचन्द्रस्थितामरः।।३२३।।
शोषयेत् सविता सर्वं यदि सूर्यो न शुष्यति।।३२४।।

जब अमृत की वर्षा होती है, तब सृष्टि होती है। पूर्ण चन्द्र यदि स्थित है, तो अमर है। यदि सूर्य नहीं सोखता है, तो सविता देव सब कुछ सोख लेते हैं।।३२३-३२४।।

अमलं गोलोकं विद्धि नारायणपरं जनम्।
रमणे रमणशक्ती रमणी शक्तिरमणी।।३२५।।
भूतशक्तिर्गुणशक्तिर्माया चित् सती तारिणी।
शक्तिः स्त्रीवाचकः शब्दस्त्रिगुणः पुंस्वरार्थदः।।३२६।।

गोलोक को अमल समझो, नारायणपरक मनुष्य को जानो। रमण में रमण करने की शक्ति है तथा रमणी शक्ति रमणी ही है। भूतशक्ति, गुणशक्ति, मायाशक्ति, तारिणी शक्ति है। शक्ति स्त्रीवाचक शब्द है, जिसे प्रकृति कहा जा सकता है। यह शक्ति शब्द तीन गुणों वाला तथा पुं स्वर के अर्थ को देने वाला है।।३२५-३२६।।

सदसन्निराकारो भूताकारः स्वतन्त्रकः।
स्त्रीपुंसाकृतिर्भिन्नः प्रकृतिगुणमिलितः।।३२७।।

सत् और असत् निराकार है। सत् भूताकार है और असत् स्वतन्त्र है। स्त्री और पुरुष की आकृति भिन्न है, दोनों में प्रकृति के गुण मिले हुए हैं।।३२७।।

पञ्चचरः शिवपरः खचरो दैवतो महान्।
वायुचरो देवचरो नानारूपः स्वतन्त्रकः।।३२८।।

पंचचर पर शिव है, ख चर महान् देवता है। अर्थात् आकाश में विचरण करने वाला देवता है तथा वह वायु में विचरण करने वाला है तथा देवों में विचरण करने वाला है तथा वह सदसद् अनेकों रूपों वाला और स्वतन्त्र है।।३२८।।

अग्निचेरा बहुतरा देवता द्योतिरूपिणः।
भूचरा जरायुजा जीवा डिम्बजाधिकनीरगाः।।३२९।।

अग्नि में विचरण करने वाले बहुतर देवता हैं। जो प्रकाश स्वरूप हैं। पृथ्वी पर विचरण करने वाले जीव जरायुज (गर्भ की झिल्ली) से पैदा होने वाले मनुष्य पशु आदि हैं और डिम्बज (अण्डे से पैदा होने वाले प्राणी) अधिक जल में गमन करने वाले हैं। ये प्राणी पक्षी तथा जलजीव मकर, मछली आदि हैं।।३२९।।

अहङ्कारस्त्रिधा पुंसः सत्त्वगुणो प्रतिष्ठितः।
ईश्वरः करणं सत्त्वं रजतमगुणयुतः।।३३०।।

पुरुष (आत्मा) का अहं तत्त्व (अहंकार) तीन प्रकार है। सत्त्वगुण वाला, रजोगुण वाला और तमोगुण वाला और वह सत्त्वगुण में प्रतिष्ठित है। ईश्वर सत्त्व का कारण है तथा वह सत्त्व रजतमगुणयुक्त होना चाहिये।

भाव यह है कि जब सत्त्व गुण का आधिक्य होगा, तभी संसार के जीवों का अस्तित्व है, परन्तु वह सत्त्वगुण रज और तम गुण युक्त होना चाहिये।।३३०।।

ब्रह्माणी कुरुते सृष्टिर्न च ब्रह्मा कदाचन।
अत एव महादेवो महाप्रेतो न संशयः।।३३१।।

ब्रह्माणी सृष्टि करती हैं, ब्रह्मा कभी भी नहीं करते। इसीलिये महादेव महा प्रेत हैं, इसमें सन्देह नहीं है।।३३१।।

वैष्णवी पालकर्त्री न च विष्णुः कदाचन।
अत एव महाविष्णुः प्रेतरूपो न संशयः।।३३२।।

वैष्णवी पालन करने वाली हैं, विष्णु कभी भी पालन करने वाले नहीं हैं। इसलिये महाविष्णु महाप्रेत हैं, इसमें सन्देह नहीं है।।३३२।।

रुद्राणी हरते सर्वं न च रुद्रः कदाचन।
अत एव महारुद्रो महाप्रेतो न संशयः।।३३३।।

रुद्राणी (पार्वती) सब कुछ हर लेती हैं, अर्थात् रुद्राणी ही प्रलयकारिणी हैं। वही इस सृष्टि का संहार करती हैं और रुद्र कभी नहीं करते, इसलिये महारुद्र महाप्रेत हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३३३।।

ॐ तत्सद्वाचकं ब्रह्म ॐकारो गुणवाचकः।
तच्छब्दः परमा शक्तिः सच्छब्दः परमात्मनः॥३३४॥

ॐ तत्सत् शब्द से बोला जाने वाला ब्रह्म है। ॐकार गुण वाचक है। ॐ तत् सत् में तत् शब्द परमाशक्ति से युक्त है और सत् शब्द परमात्मा का वाचक है।।३३४।।

योनिजः पञ्चभूतश्च निर्गुणे दोषवर्जितः।
निर्गुणो द्विविधो वाच्यः सुविद्या सुजनो यथा॥३३५॥

योनि से उत्पन्न होने वाले प्राणी और पञ्च महाभूत निर्गुण होने पर दोषरहित हैं। निर्गुण दो प्रकार का कहा गया है, जैसे अच्छी विद्या अच्छा मनुष्य है।।३३५।।

शुद्धसत्त्वगुणे विद्या रजस्तमे दोषान्वितः।
गङ्गादिसलिलं शुद्धं स्नानपाने पवित्रता॥३३६॥

शुद्ध सत्त्व गुण की अधिकता होने पर मनुष्य में विद्या आती है तथा रजोगुण और तमोगुण के अधिक होने पर मनुष्य दोषों से युक्त हो जाता है। गङ्गा आदि का जल शुद्ध होता है। उसमें स्नान करने और उसका पान करने से शरीर में पवित्रता आती है।।३३६।।

दोषमिलितो निन्दितः स्पर्शने जलवर्ज्जितः।
शुचिः शुचियोगे मुद्रा उच्छिष्टजलयोगतः॥३३७॥

वही जल दोषों के मिलने पर निन्दित हो जाता है। फिर वह जल स्पर्श करने में वर्जित होता है। पवित्रता का योग होने पर वह जल पवित्र रहता है तथा जब जल में उच्छिष्ट (अर्थात् फेंकी हुई, खाई हुई) चीजें डाली जाती हैं तो वह अपवित्र हो जाता है।।३३७।।

कमले कमलं जातं विमलं जलं कमले।
नीरं क्षीरं कमलजं कमलं कमलान्तरे॥३३८॥

कमल–जल के मल अर्थात् कीचड़ में कमल पैदा हुआ, लेकिन कमल में विमल (साफ) जल है। कमल जल और दूध दोनों को पैदा करने वाला है, अर्थात् कमल के अन्तर्गत जल भी होता है और उसमें दूध भी होता है। कमल कमल (कीचड़) के अन्तर्गत है।।३३८।।

कमलविमलभानुः निर्मलतनुश्चन्द्रमाः।
पञ्चकामः पञ्चधाम कौलज्ञाने प्रकाशितः॥३३९॥

कमल विमल सूर्य है और निर्मल शरीर चन्द्रमा है। इस प्रकार पाँच काम और पाँच धाम कौल ज्ञान में प्रकाशित हैं।।३३९।।

धारिणी गामिनी वर्षाप्रवाहः सवितृत्रयः।
दीपनाकर्षणदीप्तेर्यथाकारो दिवाकरः।।३४०।।

वर्षा जल को धारण करने वाली और ले जाने वाली है सविता (सूर्य) तीन प्रकार के हैं। अर्थात् सूर्य तीन कार्य करते हैं। दीपन, आकर्षण (जल को खींचना) और दीप्ति। इस प्रकार यही आकार दिवाकर (सूर्य) का हो, जैसा उनका आकार है, वैसा उनका कार्य है।।३४०।।

चलनी चालनी वायू रसानिर्नागिनी सदा।
अवकाशो महाकाशः पिण्डब्रह्माण्डान्तरे।।३४१।।

वायु चलने वाली और चलाने वाली है तथा वह सदा रस (जल) को सोखने वाली है। इस शरीर रूपी ब्रह्माण्ड के अन्दर खाली स्थान (अवकाश) महाकाश है।।३४१।।

भूतानां पञ्च प्रपञ्चतत्त्वगुणसमन्वितः।
मादनादि पञ्च पञ्च शक्त्यादिर्मातृकान्तरे।।३४२।।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच महाभूतों के प्रपंच अपने-अपने गुणों से युक्त हैं। वे क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द गुण समन्वित हैं। मादन आदि भी पाँच हैं। अर्थात् कामदेव के पाँच बाण हैं। मदन, उन्मादन, तापन, शोषण और मारण। तथा ये सब शक्ति आदि मातृका के अन्दर स्थित हैं।।३४२।।

चिच्छक्तिः सर्वमूलश्च त्रिदेहदेहमाश्रितः।
स्त्रीपुंदेहो जङ्गमादि नपुंसकबीजादयः।।३४३।।

चित् शक्ति (चेतन शक्ति) सब प्राणियों का मूल है। वह तीन प्रकार के प्राणियों जरायुज (झिल्ली से पैदा होने वाले), अण्डज (अण्डे से पैदा होने वाले) और उद्भिज्ज (जमीन फोड़ कर पैदा होने वाले) शरीरों पर आश्रित अर्थात् जितने भी जीव को धारण करने वाले प्राणियों यथा जरायु से पैदा होने वाले मनुष्य पशु आदि, अण्डे से पैदा होने वाले पक्षी मकर आदि तथा जमीन फोड़कर पैदा होने वाली वनस्पतियों, इन सबमें चेतन शक्ति स्थित है तथा यह चेतन शक्ति स्त्री-पुरुष दोनों में है।।३४३।।

प्रायो भ्रान्तः क्वचित् शान्तः शक्तिवन्तो महेश्वरः।
अज्ञानं भेदमूलं हि अभेदो ज्ञानगोचरः।।३४४।।

परन्तु समस्त प्राणि जगत् भ्रान्त है, अज्ञानी है और कहीं कहीं शान्त है, परन्तु शक्तिवान् तो महेश्वर हैं। अज्ञान भेद का मूल है। जब तक मनुष्य में अज्ञान है, तब तक वह इन सबमें भेद देखता रहता है तथा इनमें कोई भेद न मानना ही इन्द्रियों में ज्ञान का होना है।।३४४।।

ब्रह्मशक्तिर्विष्णुशक्तिः शिवशक्तिर्दिगीश्वरः।
सर्वः किञ्चित् क्वचिद् वस्तु सदसदात्मनात्मने।।३४५।।

ब्रह्मशक्ति, विष्णुशक्ति और शिवशक्ति दिगीश्वर हैं। संसार में जो कुछ भी है, वह सब वस्तु सद् असद् आत्मा के लिये हैं।।३४५।।

सर्वशक्तिमयं पश्येद् नित्यं व्याप्यं चराचरे।
अनादिसृष्टिरूपेण विषयदेवताद्वयम्।।३४६।।

सब कुछ शक्तिमय देखना चाहिये, अर्थात् इस चर और अचर संसार में सब कुछ शक्तिमय (प्रकृतिमय) है। अतः यहाँ इस चराचर संसार में व्याप्त होकर सब कुछ शक्तिमय देखना चाहिये। अनादि सृष्टि रूप के द्वारा इस विषय के दो देवता हैं।।३४६।।

जीवो नित्यः सत्यभृत्यः स्वामित्वग्रस्त ईश्वरः।
सत्यवस्तु ब्रह्मचैतन्यावस्था गुणजातकः।।३४७।।

जीव नित्य है, इसका कभी नाश नहीं होता। वह इस शरीर का सच्चा पालन करने वाला है तथा वह जीव ईश्वर के स्वामित्व से ग्रस्त है। ब्रह्म और चैतन्य की अवस्था सत्य वस्तु है। अर्थात् जब तक ब्रह्म जीव की एक अवस्था रहती है, तब तक ही वस्तु की स्थिति है तथा ब्रह्म जीव की अवस्था ही गुण जातियाँ हैं।।३४७।।

त्रिगुणमिश्रितः सर्वो यतो जातस्ततो लयः।
स्त्रीपुंरूपे न भेदोऽस्ति चिदात्मा परमात्मनि।।३४८।।

सब कुछ तीनों गुणों से मिश्रित जब होता है, तब लय हो जाता है। स्त्री और पुरुष के रूप में चिदात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। अर्थात् जब सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों गुणों की समानता हो जाती है, तभी प्रलय हो जाती है। ये तीनों गुण आज विज्ञान के प्रोटॉन, इलेक्ट्रान और न्यूट्रॉन ही हैं।३४८।।

पुरुषः पुरुषवाच्यः स्थूले भेदः कथञ्चन।
लिङ्गकारणकोषादिगुणभेदो न चेत् कदा।।३४९।।

पुरुष पुरुष का वाच्य है। स्थूल में किसी प्रकार का भेद नहीं है। अर्थात्

पुरुष स्त्री में भी है और पुरुष में भी अर्थात् पुरुष (आत्म तत्त्व जिसे जीव भी कहा जाता है, वह पुरुष और स्त्री दोनों में है। पुरुष में स्त्री लिंग पुल्लिंग का कोई भेद नहीं है। लिंग कारण और कोष आदि में गुण भेद कभी नहीं है।।३४९।।

महाज्योतिर्मयो भानुस्तरुणारुणतनुः।
करुणः करुणाम्बुधिः लावण्यमधुरनदी।।३५०।।

सूर्य तरुण हों या तरुण न हों, अर्थात् मध्याह्न के सूर्य हों अथवा प्रातःकाल के हों, ग्रीष्म के हों अथवा शरद् ऋतु के सूर्य, सदा प्रकाशमय हैं। करुण समुद्र है, सुन्दरता मधुर नदी है।।३५०।।

त्रिधारा त्रिवेणीधारा स्थूलसूक्ष्मपथि गतः।
सूक्ष्मपन्था महारथः सुषुम्नामार्गसंस्थितः।।३५१।।

तीन धारा त्रिवेणीधार है, स्थूल और सूक्ष्म मार्ग में गयी हुई हैं। सूक्ष्म मार्ग महारथ है, जो सुषुम्ना के मार्ग में स्थित है।।३५१।।

यदि शक्तिरूर्ध्वगतिस्तदा सुप्रेमफलम्।
अधोवर्त्म काममत्तं सृष्टिस्थितिलयात्मकम्।।३५२।।

यदि शक्ति की गति ऊर्ध्व होती है, तब सुप्रेमफल होता है। नीचे का मार्ग काम से मत्त कराने वाला है। जो सृष्टि, स्थिति और लयात्मक है।।३५२।।

एवम्भूतो निशानाथो द्विदलपद्म उज्ज्वलः।
चिच्चेन्द्रो हृदयाकाशे प्रकाशमुखमण्डलः।।३५३।।

इस प्रकार के बने हुए चन्द्रमा द्विदल (दो पत्तों वाले) कमल से उज्ज्वल हैं। चित् चन्द्र (जीव रूपी चन्द्रमा) हृदय रूपी आकाश में है। प्रकाश उसका मुखमण्डल है।।३५३।।

विमर्श—यह सब षडाम्नाय चक्र के सहस्रार चक्र की स्थित का वर्णन है, वहाँ पर दो पत्तों वाले कमल से उज्ज्वल हैं।

अकलङ्कश्चन्द्रमुखः कलङ्कशून्यमण्डले।
पूर्णचन्द्रः शतशतं हस्तपदनखान्तरे।।३५४।।

वहाँ कलङ्कशून्य मण्डल में निष्कलङ्क चन्द्र मुख है। उस कलङ्कशून्य मण्डल में ब्रह्म के हाथ, पैर और नाखूनों के बीच में सैकड़ों पूर्ण चन्द्र विराजमान हैं। वहाँ पर ब्रह्म के साथ अनेकों पूर्ण चन्द्रमा विद्यमान हैं।३५४।।

लण्डे मुण्डे चतुर्थञ्च शिरे अर्धविभूषितम्।
क्षणे ह्रासः क्षणे नाशः क्षणे पूर्णो गृहान्तरे।।३५५।।

वहाँ उनके लण्ड (मूत्रेन्द्रिय) और मुण्ड में चतुर्थ शिर में अर्ध विभूषित चन्द्रमा हैं। जहाँ क्षण में ह्रास और क्षण में नाश है तथा क्षण में गृह के अन्तर्गत चन्द्रमा पूर्ण हो जाते हैं।।३५५।।

महाकालः कृष्णचन्द्रः कोटिचन्द्रसमप्रभः।
सूर्यप्रकाशकश्चन्द्रः कमलं कमलालये।।३५६।।

वहाँ महाकाल कृष्णचन्द्र हैं (काला चन्द्रमा) है, जो करोड़ों चन्द्रमाओं के समान कान्ति वाले हैं। सूर्य के प्रकाशक चन्द्रमा हैं। कमलालय में कमल है। वहाँ उस कमलगृह के अन्तर्गत करोड़ों चन्द्रमाओं के समान कान्ति वाले महाकाल भगवान् शिव काले वर्ण के चन्द्रमा रूप में विराजमान हैं।।३५६।।

विमलकमल आस्यं हृदये कमलद्वये।
कमलं कर आकीर्णं कमलचरणभरे।।३५७।।

वहाँ विमल कमल उनका मुख है, दो कमल उनके हृदय हैं। कमल ही हाथ है, कमल ही उनके दोनों चरण हैं।।३५७।।

सवितुर्वरणीयश्च चित्सूर्यो हृदये स्थितः।
नाभिमूले कुलाकुले त्रिपुरे तेजविस्तृते।।३५८।।

वहाँ सूर्य के वरणीय चैतन्य रूप सूर्य हृदय में स्थित हैं। जिनमें तेज फैला हुआ है। ऐसे नाभिमूल में कुल और अकुल (शक्ति और शिव) विद्यमान हैं। वहाँ उस कमलगृह में उन महाकाल के हृदय में सूर्य तथा नाभि मूल में कुलाकुल (शक्ति और शिव) विराजमान हैं।।३५८।।

चिच्छक्तिः कालिका सूर्या पद्मनि हुँ सवासना।
जीवस्थो जलजस्थश्च परिशिवो वृषासने।।३५९।।

वहाँ चित् शक्ति कालिका सूर्या है, जो पद्म (कमल) में 'हुं' वास करती है। जीवस्थ और कमलस्थ वृष के आसन पर अर्थात् बैल पर परिशिव विराजमान हैं।।३५९।।

एतत्प्रयोजनं तत्त्वं तत्त्वज्ञानेन लभ्यते।
कुलतत्त्वं लयतत्त्वं विज्ञानं ज्ञानगोचरे।।३६०।।

यह तत्त्व का प्रयोजन जो तत्त्व ज्ञान से ही प्राप्त होता है। ज्ञानगोचर में कुलतत्त्व और लयतत्त्व विज्ञान है। विशेष ज्ञान है।।३६०।।

पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः।
पाशबद्धा तथा नारी गौरी पाशविमुक्तिदा।।३६१।।

जीव पाश में बँधा हुआ है और सदाशिव पाश मुक्त हैं। पाश से बँधी हुई नारी है और गौरी पाश से मुक्ति दिलाने वाली हैं।।३६१।।

श्रीभगवान् शिव उवाच–

एकमेवाद्वितीयञ्च ब्रह्म शास्त्रेषु निश्चितम्।
अनन्तब्रह्मवाच्येन पञ्चदीक्षा प्रकाशिता।।३६२।।

श्री भगवान् बोले–एक ही ब्रह्म है, दूसरा नहीं है, यह शास्त्रों में निश्चित है। अनन्त ब्रह्मवाच्य द्वारा पाँच प्रकार की दीक्षायें प्रकाशित हैं।।३६२।।

पञ्चतनी परं दीक्षा शक्तिवैष्णवविस्तराः।
गाणपत्यश्चतुर्विधः सौरो द्वादशवाचकः।।३६३।।

पंचतनी परम दीक्षा है, जो शक्ति और वैष्णव से विस्तर है। गाणपत्य चार प्रकार की दीक्षा है। और सौर बारह प्रकार की बताई गयी है।।३६३।।

शैवादिर्बहुधा प्रोक्तः शाक्तसंख्या यथोदिता।
शतकोटिमहाविद्या उपविद्या च तादृशी।।३६४।।
सर्वा भैरवसंयुक्ता विष्ण्वादिशक्तियोगतः।
कथमेकत्वमापन्नमपरं शृणु अम्बिकाम्।।३६५।।

शैव आदि अनेक प्रकार के कहे गये हैं। शाक्तों की संख्या भी यथोदित है। महाविद्या सौ करोड़ प्रकार की कही गयी है। इसी प्रकार उपविद्या भी सौ करोड़ प्रकार की है तथा विष्णु आदि की शक्ति के योग से सभी विद्यायें भैरव से संयुक्त हैं। कैसे एकत्व से उत्पन्न है? अपर अम्बिका को सुनो।।३६४–३६५।।

महाविद्या आद्यादीनं शिवादिहृदये स्थिताः।
पद्मासना सिंहासना प्रेतासनादिका भृशम्।।३६६।।
आद्यरामा महाकाले सदासने योगान्विता।
एतत् संशयं हृदये छित्वा कुरु पवित्रता।।३६७।।

महाविद्या आद्य प्राणियों को जो कि शिव आदि के हृदय में संस्थित हैं। जिनके नाम हैं, पद्मासना, सिंहासना, प्रेतासना आदि आद्यारामा विद्या महाकाल में सदासन पर योगान्वित हैं। इस संशय को काट कर हृदय में पवित्रता करो।।३६६–३६७।।

श्रीभगवती देव्युवाच–

एकमेवाद्वितीयञ्च ब्रह्म निष्कलं सकलम्।
पुंस्त्रीरूपं सकलञ्च एकमेवाद्वितीयकम्।।३६८।।

श्री भगवती बोलीं—एक ही ब्रह्म द्वितीय है और वह निष्कल (कलाओं से रहित) और सकल कलाओं से युक्त है। पुरुष और स्त्री रूप ब्रह्म सकल है। अर्थात् जिसमें कलायें हैं, जो चलने-फिरने, घूमने आदि कलाओं वाले हैं। ऐसे ब्रह्म में स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग हैं। इनमें सब प्रकार के प्राणी आ जाते हैं। अतः ये दो प्रकार के जरूर हैं, परन्तु दो तरह के रहते हुए एक ही हैं।।३६८।।

एकरूपो महाकालः पुरुषो नास्ति तादृशः।
तथैव योषिता काली कामरूपा महोज्ज्वला।।३६९।।

महाकाल एकरूप है, पुरुष वैसा नहीं है। उसी प्रकार नारीरूपा काली कामरूपा है और महा उज्ज्वल है। अर्थात् महाकला (शिव) और पुरुष (जीवऋ में अन्तर है। उसी प्रकार कामरूपा काली नारीरूपा हैं, परन्तु नारी के समान नहीं है। ।३६९।।

यथा राज्ञ एकप्राज्ञ आत्मत्वं राजवाचकम्।
अनात्मत्वं भवेद् वाचा राजा राजगुणान्वितः।।३७०।।

जैसे राजा का एक प्राज्ञ है और आत्मत्व राजवाचक है। अनात्मत्व राजा के गुणों से युक्त वाणी से राजा होना चाहिये। अर्थात् जो वास्तव में राजा है, जिसकी आत्मा राजत्व युक्त है, जो राजकाज का जानकार है। महाकाल (सदाशिव) हैं, जिन्हें परं ग्रह्म भी कहा जा सकता है।वह राजा है, उसका आत्मत्व ही राजा का है। दूसरा जो वाणी से राजा कहा जाता है, उसमें राजा की आत्मा नहीं, उसमें अनात्मत्व है। राजा राजगुण से युक्त होना चाहिये।३७०।।

गणावरणेन सह देवता एकपूजिता।
त्रिधा ध्यानं महाज्ञानं स्थूलसूक्ष्मचिदात्मकम्।।३७१।।

गणावरण के साथ एक देवी पूजित होती है। तीन प्रकार ध्यान महाज्ञान है, जो स्थूल, सूक्ष्म और चिदात्मक है। ये तीनों ही ध्यान महाज्ञान हैं।।३७१।।

प्रथमे केवलं स्थूलं वैदिकं पशुकल्पितम्।
स्थूलसूक्ष्मचिदंशेन वीराणां भावो निश्चितः।।३७२।।

प्रथम ध्यान में केवल स्थूल महाज्ञान होता है, जो वैदिक और पशुकल्पित है। स्थूल, सूक्ष्म चैतन्य के अंश से वीरों का भाव (वीरभाव) निश्चित है। अर्थात् पहले स्थूलज्ञान होता है, जिसे महाज्ञान कहा है। यह ज्ञान प्रारम्भिक आदि सभ्यता का ज्ञान है, जो वैदिक और पशु के ज्ञान के समान है। बाद में स्थूल तत्त्व में उस चैतन्य शक्ति के अधिक अंश के रहने पर वीरों भाव पैदा होना निश्चित है।।३७२।।

विद्यभावः श्रेष्ठलाभः द्वित्व एकत्वमिलितः।
स्थूलरूपं स्त्रीस्वरूपं पुंरूपं वा समन्वितम्॥३७३॥

विद्याभाव श्रेष्ठ लाभ है, दोनों में एक मिला हुआ है। स्थूल रूप स्त्री स्वरूप है, जो पुरुष रूप से समन्वित है। अर्थात् स्थूलरूप (दिखाई देने वाला सेन्द्रिय शरीर जो प्रकृति के २४ तत्त्वों वाला है, वह स्त्रीरूप है अर्थात् प्रकृत स्वरूप है। क्योंकि प्रकृति को स्त्री माना गया है। अतः इसे स्त्रीरूप कहा है तथा स्त्रीरूप (प्रकृतिरूप) पुरुष से समन्वित है विना पुरुष के तो प्रकृति कुछ कर ही नहीं सकती।।३७३।।

सूक्ष्मरूपं न भेदो हि एकात्मा सर्वव्यापितः।
चिदात्मा चैत्यरूपेण कुलाकुलसमास्थितः॥३७४॥

आत्मा का सूक्ष्म रूप में भेद नहीं है, सूक्ष्म रूप एक आत्मा सर्वत्र व्यापित है। चिदात्मा चेतनता के रूप में कुल और अकुल (शक्ति और शिव) में सम्यक् प्रकार से और पूरी तरह स्थित है।।३७४।।

कुलाकुलं सर्वमूलं स्थूल एकात्मवाचकः।
द्वित्वेऽपि द्वितीयो नास्ति चैतन्यं ब्रह्मरूपकम्॥३७५॥

कुलाकुल (शक्ति और शिव) सबके मूल हैं। स्थूल एकात्मवाचक है। द्वित्व में भी दूसरा कोई नहीं है चैतन्य ब्रह्मरूप वाला अर्थात् उन शक्ति और शिव (सांख्य की भाषा में प्रकृति और पुरुष सामान्य भाषा में स्थूल तत्त्व (शरीर) और सूक्ष्म तत्त्व प्रकृति ये दोनों एक ही हैं। दोनों चैतन्य ब्रह्म रूप वाला सदाशिव हैं।।३७५।।

स्थूलं ब्रह्म बृहद्वाच्यं विराड्वै ईशसंज्ञकः।
शुक्रं ब्रह्मबीजादीनां वेदादिशास्त्रनिश्चितम्॥३७६॥

स्थूल ब्रह्म बृहद् वाच्य है और विराट् निश्चित ही ईश की संज्ञा वाला है। शुक्र ब्रह्मबीज आदियों का है, जो वेद आदि शास्त्रों में निश्चित है।।३७६।।

अन्यवर्त्म न चेद् वर्त्म ब्रह्मा वर्त्मप्रकाशितम्।
कुलाधारः सत्यसारोऽन्याधारो विवर्ज्जितः॥३७७॥

अन्य मार्ग कोई मार्ग नहीं है। ब्रह्ममार्ग ही प्रकाशित है। कुलाधार मार्ग सत्यसार है, अन्याधार विशेष रूप से वर्जित है।।३७७।।

पुष्पवन्ताद्योपान्तो ज्योतिर्दिवा निशाकरः।
सुविचार्यं किमाश्चर्यं ब्रह्म खल्विदं निश्चितम्॥३७८॥

पुष्पवन्त आद्योपान्त ज्योति है, जो दिन और रात करने वाली है। अच्छी तरह विचार कर ऐसा करना चाहिये। इसमें क्या आश्चर्य है, यह निश्चित ही ब्रह्म है।।३७८।।

तन्त्रं मन्त्रो यः स्वतन्त्रो यथाभावभावान्तरम्।
एकमुखं द्विभावेन पित्रा भर्त्रा प्रचुम्बितः।।३७९।।

तन्त्र वह स्वतन्त्र मन्त्र है, जो जैसा भाव हो, उसी भाव के अन्तर्गत रहता है। एक मुख दो भाव से पिता द्वारा और पति द्वारा चुम्बन किया जाता है। पिता द्वारा वात्सल्य भाव से और पति द्वारा शृंगार भाव से चूमा जाता है। अतः तन्त्र में भी ऐसा स्वतन्त्र मन्त्र है, जिसमें देव एवं देवी की उपासना किसी भी भाव से कर सकते हैं। यहाँ पर षडाम्नाय तंत्र तान्त्रिक पद्धति से हटकर अपना विचार प्रस्तुत कर रहा है। यह साधक को यह आजादी देता है कि वह देव-देवी की उपासना किसी भी भाव से कर सकता है।।३७९।।

सुतः पिता पिता सुतो भर्ता एकस्य वाचकः।
संकेतज्ञस्तन्त्रवेत्ता न वेत्ता धातुरादिनः।।३८०।।
धातुवादविवादादि शठधूर्तविवर्णितः।
आसनासनबन्धो निगमे सुप्रकाशितः।।३८१।।

पुत्र, पिता, पिता, पुत्र, पति ये शब्द एक व्यक्ति के वाचक हैं। तन्त्र को जानने वाले, संकेत को जानने वाले होते हैं। वे धातुवादी का ज्ञान रखने वाले नहीं होते। धातुवाद विवाद आदि शठ और धूर्तों द्वारा वर्णन किये गये हैं। आसन और आसन बन्ध निगम (वेदों) में सुप्रकाशित है।।३८०-३८१।।

मलं कमलं पद्मं कमलञ्च कुलाकुलम्।
मातङ्गाङ्गोन्मत्तो मातङ्गी सङ्गमानसे।।३८२।।

अमल, कमल, पद्म, कमल और कुलाकुल हैं। मातङ्ग का अङ्ग उन्मत्त है और मातङ्गी की मानस में आसक्ति है।।३८२।।

सिंहाकारा रागपरा कुलमातङ्गघातिका।
सिंहासना तदाख्यानमद्रिजा सिंहवाहिनी।।३८३।।

मातङ्गी सिंह के आकार वाली है। रागपरक है। कुलमातङ्ग की घातिका है। सिंह जिसकी सवारी है। इसीलिये उसका नाम पर्वत से पैदा होने वाली (अद्रिजा) सिंहवाहिनी रखा गया है।।३८३।।

विलोमार्थेऽपि यथार्थः कुलसाधकसम्मतः।
विपरीतमहाप्रेतहृदये चरणद्वयम्।।३८४।।

विलोम अर्थ में भी कुल सिद्धि साधक सम्मत है। विपरीत महाप्रेत के हृदय में दोनों चरण स्थित हैं।।३८४।।

विमर्श—कुलसिद्धि का अर्थ यहाँ देवी की सिद्धि से कुल अर्थात् शक्ति की सिद्धि परमावश्यक है। वैसे भी शक्ति शिव की अर्धाङ्गिनी है। जब शक्ति सिद्ध हो जायेगी तो शिव तो स्वतः सिद्ध हो जायेगें; क्योंकि पुरुष तो स्त्री का प्रेमी होता है।

कुलेशी काली कुलञ्च अकुलः कालभैरवः।
कृष्णचन्द्रो भवेत् कालश्चिरकालयोगान्वितः।।३८५।।

कुलेश्वरी काली कुल अर्थात् शक्ति है और अकुल कालभैरव है। चिरकाल से योग में लगे हुए कृष्णचन्द्र काल होने चाहियें।।३८५।।

भानुकन्या भवेद् धन्या सहजानन्दनन्दिता।
वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।।३८६।।

सूर्य की पुत्री धन्य होनी चाहिये, जो कि सहज (प्राकृतिक/स्वाभाविक) आनन्द से आनन्दित है। वह वृन्दावन को छोड़ कर एक पग भी नहीं जाती है।।३८६।।

वृन्दावनं सहस्रारो ब्रह्मद्वारो द्विरस्रकः।
द्विरस्रो नादरूपश्च एकबिन्दुसमाहिता।।३८७।।

वृन्दावन सहस्रार है, ब्रह्म का द्वार है और द्विरस्रक है। द्विरस्र और नादरूप है और एक बिन्दु में समाहित है।।३८७।।

विमर्श—सहस्रार—हजार पत्रों वाला कमल है, जहाँ कुलाकुल का निवास है, जिसे इस तन्त्र में वृन्दावन माना गया है। वैसे आज्ञाचक्र के ऊपर यही नाद की महानाद की सिंति है। उसके ऊपर शंखिनी नामक नाड़ी है तथा उस नाडी के शिखर भाग के ठीक ऊपर एक छे है, जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहा जाता है। वहाँ ब्रह्मरन्ध्र में विसर्ग के नीचे हजार पत्तों वाले कमल की स्थिति मानी जाती है। इस कमल का मुख नीचे की ओर है। कमल के पत्ते सूर्य की किरणों के समान कमनीय कान्ति वाले हैं। इसमें 'अ' से लेकर 'क्ष' तक के सभी वर्ण विराजमान हैं। सहस्रदल कमल में पचास-पचास पत्तों की पच्चीस आवृत्तियां होती हैं। प्रत्येक पचास पत्तों की आवृत्ति में पचास वर्णों की स्थिति होती है। इस सहस्रार चक्र की कर्णिका में निष्कलंक चन्द्रमण्डल लगातार प्रकाशित रहता है। इस चन्द्रमण्डल के मध्य त्रिकोण के मध्य में पर बिन्दू की स्थिति मानी गयी है। कुछ आचार्यों के मतानुसार सहस्रार स्थित इस त्रिकोण के बाहर अ, क, और थ के क्रम से १६-१६ वर्णों की तथा त्रिकोण के

भीतर ह, क्ष, और ळ वर्णों की स्थिति रहती है। इसके बिन्दु स्थान में ही हंस पीठ पर विराजमान परमशिव निवास करते हैं। परमशिव की नीचे परमहंस नामक अन्तरात्मा की स्थिति मानी गयी हैं। इस सहस्रदल कमल की कर्णिका में शैवों के अनुसार शिव, वैष्णवों के अनुसार विष्णु और शाक्तों के अनुसार शक्ति का निवास है। इस स्थान में अपने इष्ट देवता का साक्षात्कार कर लेने के बाद साधक फिर जन्म नहीं लेता। उसको मोक्ष मिल जाता है। यही नहीं इसमें सृष्टि और संसार के संहार की भी शक्ति प्रकट हो जाती है।(—श्रीतत्त्वचिन्तामणि, षट्चक्र प्रकरण—६)

इति वाक्य अक्षलक्षो नित्यवृन्दावनं पुरः।
प्रत्यालीढा महाधीरा दक्षिणशिव्यापिका॥३८८॥
कुलदक्षोऽक्षपद्मे तारारूपा शवासना।
महालीढा वामधरा नाभिनी रजवासिनी॥३८९॥

इति वाक्य अक्षलक्ष। लाख अक्ष वाला है। वृन्दावन पुर नित्य है। प्रत्यालीढा महाधीरा दक्षिण शिव व्यापिका। कुलदक्ष अक्ष पद्म में तारा रूप में मुर्दे के आसन पर स्थित है। जो महालीढा वामाधीरा नामिनी और रजवासिनी है॥३८८-३८९॥

पञ्चकामोऽविश्रामो बाला पञ्चशवासना।
नादबिन्दुमध्ये इन्दुर्महानादो महोज्ज्वलः॥३९०॥

पञ्चकाम विश्राम रहित हैं। और बाला पाँच मुर्दों के आसन पर बैठी हुई हैं। नाद और बिन्दु के मध्य में चन्द्रमा हैं और महानाद महोज्ज्वल है॥३९०॥

कामकला भानुबाला चित्कला परमेश्वरी।
काली कुलादिकूलादिषट्चक्रमध्यव्यापिता॥३९१॥

कामकला भानुबाला (सूर्यपुत्री) है और चित्कला परमेश्वरी है। काली कुल (शक्ति) आदि है, कुलादि है तथा षट्चक्र के मध्य में व्यापित है॥३९१॥

विमर्श—पद्मपुराण स्वर्गखण्ड के अनुसार षट्चक्र का वर्णन इस प्रकार है कि गुदा में पृथ्वी के समान एक चक्र है, जो हरे वर्ण के चार पत्रों से सुखोभित है और लिंग में तो छः पत्तों वाला चक्र है। वह तीनों लोकों की पंक्ति से युक्त है तथा तपे हुए सोने के समान है नाभि में, दशदलचक्र है, जो कुण्डलिनी से युक्त हैं, वहाँ नीली स्याही के समान ब्रह्मस्थान मन्दिर है, जो मणिपूर नामक चक्र वाला है और स्वच्छ जल स्थान युक्त है। जहाँ उगता हुआ सूर्य है तथा हृदय में अनाहत चक्र है। कुम्भक नाम द्वादशदल कमल है जहाँ पर विष्णु का वायुमन्दिर वहाँ कण्ठ में विशुद्ध षोडशदल कमल स्थित है। जहाँ शाम्भवी नामक चक्र है।

जो चन्द्रबिन्दु से विभूषित है। उसके षष्ठ ज्ञाज्ञा चक्र है, जो मन के स्थान के नाम से प्रसिद्ध है। यह आज्ञालय नामक चक्र में दो उत्तम दल (पत्र) सुख्शोभित हैं। सहस्त्रदल एक अलग है, जो परमात्मतत्त्व का प्रकाशक है, जो नित्य ज्ञानमय और सत्य है तथा हजारों सूर्यों के समान जिसकी कमनीय कान्ति है। अतः इन षट्चक्रों का भेदन कर ही आत्मतत्त्व परमात्मतत्त्व में लीन हो सकता साधक को इन षट्चक्रों को भेदना ही होगा। इनको तोड़े बिना कुछ भी नहीं हो सकता है। वैसे श्रीयन्त्र में सहस्त्रार चक्र माना गया है। (देखिये—सुभगोदय स्तुति ७१–७३।)

आलीढो दक्षिणे कालः कुलाकुलसमास्थितः।
षाम्यो व्रामो भिन्नः सामो न भिन्न एकरूपता॥३९२॥

दक्षिण दिशा में काल आलीढ़ है, जो कुल (शक्ति) और अकुल (शिव) से समास्थित है। षाम्य व्राम भिन्न है॥३९२॥

यथा काली तथा तारा तथा त्रिपुरसुन्दरी।
स्थूलसूक्ष्मचिदाकारे महाज्योतिप्रकाशिनी॥३९३॥

जैसे काली हैं, वैसे ही तारा हैं और वैसी ही त्रिपुरसुन्दरी हैं। ये स्थूल, सूक्ष्म और चिदाकार में महाज्योति का प्रकाश करने वाली हैं॥३९३॥

चिदङ्गमच्युतानन्दोऽन्तरङ्गस्वरूपता।
महाविद्या अन्तरङ्गा विद्या सर्वाङ्गवेष्टिता॥३९४॥

चिदङ्ग (चैतन्य अंग) अच्युतानन्द (विष्णु) हैं, जो अंगों के अन्तर्गत व्याप्त महाविद्या भी अन्तरंग है अर्थात् उनके अन्दर है तथा जो सर्वाङ्गवेष्टित है। अर्थात् सभी अंगों को घेरे हुए है॥३९४॥

देव्यङ्गे शिवो गुप्तश्च शिवाङ्गे सूक्ष्मकालिका।
स्त्र्यङ्गेऽन्तरपुंसः पुमङ्गे योषिता कुला॥३९५॥

देवी के अंग में शिव गुप्त रूप से स्थित है और शिव के अंग में सूक्ष्म काली गुप्त रूप से स्थित हैं। तथा स्त्री के अंग में पुरुष और पुरुष के अंग में शक्तिरूप स्त्री गुप्त रूप से स्थित है॥३९५॥

व्यक्ता गुप्ताः स्वरूपेण शिवजीवादिजङ्गमाः।
स्थूलाभ्यन्तरं व्याप्य चिच्छक्तिर्मिश्रखण्डवत्॥३९६॥

शिव जीव आदि जङ्गम (चलने वाले) अपने रूप से कभी गुप्त और कभी व्यक्त होते हैं। चित् शक्ति (चेतन शक्ति) कभी मिल कर, कभी अलग-अलग (टुकड़े के समान) स्थूल तत्त्वों के अन्तर्गत व्याप्य होकर स्थित है॥३९६॥

न चेद् भिन्नो मिष्टोऽन्यः परमेष्टफलप्रदः।
अङ्गस्पर्शे ब्रह्मज्ञाने यथैकाङ्गपूजने।।३९७।।
अवश्यं लभते सिद्धिं चतुर्वर्गफलप्रदाम्।
पुष्पं बहुविधं सत्यं मधुमेकं न चान्यथा।।३९८।।

वह शक्ति न तो भिन्न है और न मिली हुई है। परन्तु परम इष्ट फल को प्रदान करने वाली है। अङ्गस्पर्श में, ब्रह्मज्ञान में तथा एकाङ्ग पूजन में अवश्य चार वर्ग धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के फल को प्रदान करने वाली सिद्धि प्राप्त होती है। जैसे कि पुष्प अनेक प्रकार के सत्य होते हैं, परन्तु मधु एक ही प्रकार का होता है। वह अन्य-अन्य प्रकार का नहीं होता। अतः चारों प्रकार की सिद्धि उपर्युक्त साधनों से प्राप्त होती है।।३९७-३९८।।

एतद् गौणं भवेन्मोक्षो वृक्षमूले प्रसेचनम्।
सर्वाङ्गे जायते तृप्तिः शाखावल्लिसमन्विते।।३९९।।

इति रहस्यषडाम्नायतन्त्रे निगमसन्दर्भे तृतीयः पटलः

⁂

जैसे वृक्ष की जड़ में सींचने से वृक्ष बढ़ता है। जैसे यह गौण है कि उपर्युक्त साधनों से मोक्ष होता है। जैसे वृक्ष की जड़ में सींचने से वृक्ष की शाखाओं, वल्लियों में तृप्ति होती है। वे खिल उठती हैं, उनमें चमक आ जाती है, उसी प्रकार उपर्युक्त साधनों से मानव के समस्त अंगों में तृप्ति होती है, सब अंग खिल उठते हैं।।३९९।।

।।इस प्रकार सर्वोत्तम रहस्य षडाम्नाय तन्त्र में निगम सन्दर्भ में
तृतीय पटल समाप्त हुआ।।

अथ चतुर्थः पटलः

श्री भगवान् शिव उवाच–

यस्मिन् मन्त्रे यदाचारः प्रवर्तधर्म उच्यते।
तदाचारः साधनञ्च प्रवर्तभावस्त्रिविधः॥१॥

भगवान् शिव ने भगवती पार्वती से पूछा कि हे देवि! जिस मन्त्र में जो आचार प्रवर्त धर्म कहा जाता है, वह आचार और साधन तथा उसमें प्रवर्त होने का भाव तीन प्रकार का है।।१।।

साधने भवति प्राप्तं सिद्धिसाधनमुत्तमम्।
सिद्धे प्रवर्तभावादिर्भावपक्षे क्रियादिकः॥
महाभावपरा सिद्धिः कीदृशी वद अम्बिके॥२॥

साधन करने पर उत्तम सिद्धि वाला साधन प्राप्त होता है तथा सिद्ध होने पर प्रवर्त भावादि भावपक्ष में क्रियादिक होते हैं। अतः वह भावपरा सिद्धि कैसी होती है, यह हमको बताइये।।२।।

श्रीभगवती देव्युवाच–

सर्वेभ्यश्चोत्तमो वेदो ब्रह्मचर्यसुसंयतः।
विष्णुमते परा भक्तिर्ज्ञानक्रियासमन्विता॥३॥

श्रीभगवती ने कहा कि हे देव! सुनिये–

ब्रह्म के आचरण से सुसंयुत वेद सबसे उत्तम हैं तथा विष्णु के मत में ज्ञान क्रिया से युक्त परा भक्ति उत्तम है।।३।।

ज्ञानाधिक्ये भक्तिक्रिया न्यासादिर्बाह्य अन्तरे।
शैवो दक्षिणः शाक्तश्च मन्त्रादिर्नीलसाधनम्॥४॥

ज्ञान की अधिकता होने पर भक्ति क्रिया तथा बाह्य और अन्तर में न्यासादि क्रियायें हैं। शैव, दक्षिण और शाक्त तीन प्रकार के मन्त्र नील के साधन हैं।।४।।

विशेष–शैव, दक्षिण और शाक्त ये तीन प्रकार के प्राचीन समुदाय हैं। शैव–शिव के भक्त हैं, दक्षिण (वैष्णव) विष्णु के भक्त होते हैं और शाक्त (शक्ति) प्रकृति के भक्त होते हैं। अतः इनके अलग–अलग मंत्र हैं।

वेदतन्त्रोक्तमिश्रेण कामसङ्कल्पवर्जितम्।
वामपथा यजेद् वामां स्वयं कामकलात्मना॥५॥

वेद और तन्त्रशास्त्र में कहे गये मिश्रण से साधन कामसंकल्प वर्जित है। वाम मार्ग से स्वयं कामकलात्मा द्वारा वामा देवी की पूजा–अर्चना करनी चाहिये।।५।।

भावपक्षे भवेत् सिद्धिस्त्रिविधं सिद्धिलक्षणम्।
बीजं कीटः कीटो भृङ्गोऽहिवत् त्वचवर्जनम्॥६॥
भावसिद्धो जीवन्मुक्तो भावदेहः स्वतन्त्रकः।
भाववद्देहः प्रत्यक्षो नित्यसिद्धस्तदन्तरम्॥७॥

भाव पक्ष में सिद्धि होती है तथा सिद्धि के लक्षण तीन प्रकार के हैं। बीज कीट है, कीट भृङ्ग है तथा सर्प के समान त्वच् वर्जन है।।६-७।।

विमर्श—भावसिद्ध जीवन्मुक्त होता है अर्थात् जो भाव से सिद्धि प्राप्त करता है, वह जीवित रहते हुए भी काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से रहित हो जाता है तथा साक्षात् शिवरूप हो जाता है तथा जो भावदेह वाला साधक है, वह स्वतंत्र हो जाता है। भावदेह साधक प्रत्यक्ष (सबके सामने रहता हुआ भी व्यसन से रहित होता है और उसके बाद वह नित्य सिद्ध हो जाता है।

सिद्धान्ते भाविनीभावः शिवादितत्त्वनिर्णयः।
शब्दब्रह्म परंब्रह्म सिद्धान्तप्राज्ञलक्षणम्॥८॥

सिद्धान्त अर्थात् सिद्ध होने के अन्त में भाव रखने वाले का भाव शिव तत्त्व का निर्णय करता है। यही शब्दब्रह्म, परं ब्रह्म, सिद्धान्त प्राज्ञ का लक्षण है।।८।।

महासिद्धिर्भवेत् कौले दिव्यरूपः शिवोत्तमः।
कुलिनी कुलं कौलश्च प्रत्यक्षदेवसाधनम्॥९॥

कौल साधना में महासिद्धि होती है तथा दिव्य रूप उत्तम शिव की प्राप्ति होती है। कुलिनी कुल और कौल—ये प्रत्यक्ष देव साधन हैं।।९।।

ब्रह्मचर्यं तपोमूलं पापघ्नं शुद्धचित्तवान्।
पशुभावे चरेदादौ सर्वमङ्गलकारणम्॥१०॥

ब्रह्मचर्य तपःप्रधान है। पाप का नाश करने वाला है तथा शुद्ध चित्त वाला है, इसलिये प्रारम्भ में पशुंभाव में आचरण करना चाहिये, क्योंकि पशुभाव सब प्रकार से कल्याण करने वाला है।।१०।।

त्यागो भोगो मिश्राचारो ब्रह्मचर्यं द्विधा मतम्।
व्यक्ताव्यक्तं द्विविधञ्च वामसिद्धान्तसंयुतम्॥११॥

त्याग, भोग और मिश्राचार ब्रह्मचर्य दो प्रकार का माना गया है। व्यक्त और अव्यक्त दो प्रकार का वाम सिद्धान्त से युक्त है।।११।।

अवधूतो द्विधा प्रोक्तः सचेलश्च दिगम्बरः।
हंसो न कुर्यात् स्त्रीसङ्गं विधियोनिविहारवान्॥१२॥

अवधूत दो प्रकार का कहा गया है। एक सवस्त्र, दूसरा निर्वस्त्र अर्थात् दिगम्बर। विधिपूर्वक योनि में विहार करने वाले हंस को स्त्रीसंग नहीं करना चाहिये। ('अवधूत' का अर्थ पहले ही बता दिया गया है)।१२।।

गृहस्थश्च भवेत् कौलो द्वितीयस्थः सदाशिवः।
विभावः पशुर्वीरश्च आदौ नीलं समाचरेत्।।१३।।

और गृहस्थ ही कौल होता है, वह द्वितीयस्थ और सदाशिव है। वही विभाव है, पशु और वीर है, अतः आदि में नील साधन का आचरण करना चाहिये।।१३।।

महाबलो महावीर्यो महासाहसिकः शुचिः।
दिवा चरेद् ब्रह्मचर्यं नित्यपर्यटनं निशि।।१४।।

महा बल वाले महापराक्रमी, महा साहसी और पवित्र साधक दिन में ब्रह्मचर्य का आचरण करे तथा रात्रि में नित्य पर्यटन करे।।१४।।

शय्यादिश्मशानान्तञ्च साधनं सिद्धिदायकम्।
मन्त्रयोगो मुद्रायोगो मन्त्रचैतन्यकारणम्।।१५।।

शय्या आदि से श्मशान के अन्त तक के साधन सिद्धिदायक हैं। वहाँ मन्त्रयोग मुद्रायोग आवश्यक है, क्योंकि मन्त्र चेतनता (जागरुकता) का कारण है। अर्थात् मन्त्र देव की जागृति होती है।।१५।।

असिद्धश्चेतनाहीने भावः सुभावो दुर्लभः।
भावभेदे श्मशानादि भावभेदे शवासनम्।।१६।।

चेतनाहीन में भाव सिद्ध नहीं होता तथा अच्छा भाव दुर्लभ है। भाव का भेद होने पर श्मशान आदि का सेवन करना है तथा भावभेद में शवासन का सेवन करना है।।१६।।

शय्यादिशवपर्यन्तं द्विविधं नीलसाधनम्।
सचेलवर्त्म प्रवर्तं गुरुवर्त्म प्रदर्शकम्।।१७।।

शय्यादि पर्यन्त दो प्रकार का नील साधन है, उसमें सवस्त्र प्रवर्त होना गुरु के मार्ग का प्रदर्शक है।।१७।।

चीनो मिश्रो नीलश्रेष्ठो महाशङ्खादिसंयुतः।
विधिवत् कारणे सिद्धिरसिद्धिर्विधिलङ्घने।।१८।।

चीनाचार, मिश्राचार तथा नील श्रेष्ठ आचार महाशंख आदि से संयुत होना चाहिये तब विधिवत् उनका प्रयोग करने पर सिद्धि प्राप्त होती है तथा विधि का उल्लंघन करने से असिद्धि होती है।।१८।।

एकार्थवाचको भावो महाभावप्रदायकः।
एतत्प्रयोगविशेष आनन्दो भैरवीकृता॥१९॥

एक अर्थ को बताने वाला भाव महाभाव को प्रदान करने वाला होता है। यह विशेष प्रयोग भैरवीकृत आनन्द है॥१९॥

प्रथमे भूतशुद्ध्यादि पञ्चशुद्धिपुरस्कृतः।
पशुस्तु त्रिविधः प्रोक्तः स्वभावो मन्दो वर्जितः॥२०॥

इन सब साधनों में पहले पञ्च महाभूतों–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश की शुद्धि करनी चाहिये, फिर पञ्चशुद्धि करनी चाहिये। पशु तो तीन प्रकार का कहा गया है, स्वभाव, मन्द और वर्जित॥२०॥

स्वभावो द्विविधः प्रोक्तः संयातनाविधानवित्।
मन्दो निन्दको धूर्तश्च वर्जितः कौलघातकः॥२१॥

स्वभाव पशु दो प्रकार का कहा गया है संयातन और अविधानवित्। मन्द पशु निन्दक और धूर्त होता है तथा कौलाचार का घातक वर्जित पशु कहा जाता है॥२१॥

आदिक्रम आगमदीक्षा सूर्यगणेशमाधवाः।
शैवः शिवपरः शाक्तो विद्यादीक्षाक्रमागतः॥२२॥

आदिक्रम आगम (तन्त्र शास्त्र) की दीक्षा है तथा उस दीक्षा में सूर्य, गणेश फिर माधव, शैव, शिवपर और उसके बाद शाक्त विद्या दीक्षा क्रम से आती है॥२२॥

महाविद्या पराविद्या साधनं कौलसम्मतम्।
नियमज्ञो महाप्राज्ञः सर्वज्ञः श्रीगुरुर्यदि॥२३॥

महाविद्या, पराविद्या कौल सम्मत साधन है। यदि श्रीगुरु सर्वज्ञ हैं तो नियम को जानने वाला महाप्राज्ञ (महान् विद्वान्) है॥२३॥

भूतभविष्यज्ज्ञात्वा या विद्या पूर्वजन्मनि।
सच्छिष्ये दापयेत् तूर्णं क्रमलङ्घनपूर्वकम्॥२४॥
असामर्थ्ये महाविद्यां दत्त्वा यो लोभतत्परः।
उभयः पतति श्वभ्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥२५॥

यदि गुरु भूत और भविष्य को जान कर जो पूर्वजन्म में विद्या प्राप्त की, क्रम लंघन पूर्वक सच्चे शिष्य पर तूर्ण दिलाये अर्थात् ऐसा गुरु जो सच्चे शिष्य को क्रमानुसार दीक्षा न देकर बीच-बीच में छोड़ता हुआ दीक्षा दे, वह तथा जो लोभवश अयोग्य शिष्य को दीक्षा दे, वे गुरु और शिष्य दोनों ही जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं, तब तक श्वभ्र (घोर नरक) में गिरते हैं॥२४-२५॥

कौलाचारे क्रमदीक्षा महासाम्राज्यदीक्षिता।
ब्रह्मज्ञानं पूर्णध्यानं सर्वज्ञे प्राज्ञे दर्शितम्॥२६॥

कौलाचार में क्रम दीक्षा महासाम्राज्य प्राप्त करने में दीक्षित वनाने वाली है। ब्रह्मज्ञान पूर्ण ध्यान है, जो सर्वज्ञ (परंब्रह्म) प्राज्ञ (जीवात्मा) दोनों में दिखाया गया है।।२६।।

विमर्श—क्रमदीक्षा का अर्थ है एक-एक करके हर पक्ष को समझाते दीक्षा देना; क्योंकि कौलाचार में थोड़ी-सी असावधानी महान् अनर्थ का कारण बन सकती है।

अर्द्धसार्धप्रवर्तेषु सर्वं ब्रह्मेति यो वदेत्।
उभयोर्निरयं याति नास्ति निष्कृतिः कुत्रचित्॥२७॥

अर्द्ध सार्ध प्रवर्त होने पर सब ब्रह्म है, ऐसा बोले तो वे लोग गुरु और शिष्य नरक को जाते हैं। वहाँ पर कोई कहीं भी बचने का उपाय नहीं है।।२७।।

वीरोऽपि त्रिविधः प्रोक्त उत्तमाधममध्यमाः।
निर्विकल्पः सविकल्पः सकलध्यानवर्जितः॥२८॥

वीर भी तीन प्रकार का कहा गया है—उत्तम, मध्यम और अधम। उत्तम वीर निर्विकल्प ध्यान करने वाला होता है। मध्यम वीर सविकल्पक ध्यान करने वाला होता है तथा जो समस्त ध्यान से रहित है, वह अधम वीर होता है।।२८।।

विमर्श—यहाँ वीर का अर्थ साधक से है।

उत्तम वीर का लक्षण—

अनित्यकर्मसंत्यागी नित्यकर्मपरायणः।
व्याकुलः स कुलाचारे उत्तमं वीरलक्षणम्॥२९॥

अनित्य कर्म का सम्यक् प्रकार से त्याग करने वाला तथा नित्य कर्म में कुशल व्यक्ति जो कुलाचार में व्याकुल रहे, वह उत्तम वीर का लक्षण है।।२९।।

मध्यम वीर का लक्षण—

मध्यमः शास्त्रविश्वासः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
नित्यक्रिया ज्ञानध्यानं निष्कामी संयमी मतम्॥३०॥

जो व्यक्ति शास्त्र में विश्वास रखने वाला हो, जो श्रद्धा और भक्ति से युक्त हो तथा सन्ध्या-वन्दनादि, नित्य क्रिया, ज्ञान-ध्यान परायण हो एवं निष्काम (फल की इच्छा किये बिना) संयम में रहता हो, वह मध्यम वीर होता है।।३०।।

अधम वीर का लक्षण–

स्वेच्छामतं विपरीतमनित्यकर्मनिन्दितम्।
वर्जितोऽधमो वीरः कामना कामनागतः॥३१॥

जो अपनी इच्छा से कार्य करता हो, सदा धर्म से विपरीत हो तथा सदैव अनित्य और निन्दित कर्म करता हो तथा कामनागत रहे, वह अधम वीर होता है॥३१॥

इन्द्रियार्थो धनार्थो वा यशार्थो विधिलङ्घनम्।
प्रकाशः साधकवेशो मिथ्यावेशपरायणः॥३२॥
ततोऽधिको भवेन्मन्त्री मन्दकामपरायणः।

इन्द्रियार्थ अर्थात् इन्द्रियों के विषयों को चाहने वाला अर्थात् अच्छे शब्द सुनने की, अच्छे स्पर्श की, अच्छा (सुन्दर) देखने की, सुमधुर वस्तु का स्वाद लेने की तथा सुगन्धित वस्तु सूँघने की इच्छा रखने वाला तथा धन चाहने वाला अथवा यश चाहने वाला, विधि का उल्लंघन करने वाला, साधक के वेश का प्रकाश करने वाला, मिथ्या वेश धारण करने में कुशल अधम वीर होता है। उससे भी अधिक मन्दकाम परायण मन्त्र का करने वाला होता है॥३२॥

वामाचारस्त्रिविधश्च प्रवर्तः सिद्धिसाधनम्॥३३॥
वामाभावो महाभावस्तत्त्वमसीत्यभेदकः।
वामा भूत्वा यजेद् वामां साधनं सिद्धिलक्षणम्॥३४॥

वामाचार तीन प्रकार का होता है, प्रवृत्त होने पर सिद्धि करने वाला वामाभाव महाभाव और 'तत्त्वमसि' इस भेद वाला है। अतः वामा होकर वामा की साधना करनी चाहिये। वामाचार साधन सिद्धि का लक्षण है। अतः वामाचार साधन से सिद्धि अवश्य मिलती है॥३३-३४॥

विमर्श–आचार अनेकों प्रकार के १. वेदाचार, २. वैष्णवाचार, ३. शैवाचर, ४. दक्षिणाचर, ५. वामाचार, ६. सिद्धान्ताचार, ७. कुलाचार; परन्तु इस तन्त्र में वामाचार को ही महत्त्व दिया गया है। वमाचार और उसका स्वरूप १. वीरभाव में स्थित साधकों को वामाचार ग्रहण करना चाहिये।

२. अपने ही धर्म में स्थित होकर पंचतत्त्वों द्वारा यथाविधि एवं भक्ति तथा आनन्द के साथ पर देवता की अर्चना करनी चाहिये, पंचतत्त्वों द्वारा एवं विविध द्रव्यों द्वारा बाह्याभ्यन्तर भेद से परदेवता का अर्चना करनी चाहिये। साधक को चाहिये कि वह उद्यत मन से रहकर पूजा करे।

विभावः कल्पितभावः क्रमे सिद्धिप्रदायकः।
कल्पना दक्षिणाभावः शिवो भूत्वा यजेच्छिवाम्।।३५।।

विभाव कल्पित भाव है। वह कल्पित भाव क्रम में सिद्धिदायक है, अर्थात् विभाव को क्रम से किया जाये तो अवश्य सिद्धि प्रदान करने वाला होता है। कल्पना दक्षिणा भाव है, अतः शिव होकर शिवा का पूजन यजन करना चाहिये।।३५।।

कल्पना लभते सिद्धिर्न तु सिद्धिव्यतिक्रमः।
भावलाभो भवेत् सत्यः शिववत् कल्पनामयः।।३६।।

कल्पना सिद्धि को प्राप्त करती है। उसमें सिद्धि का व्यतिक्रम नहीं होता, अर्थात् असिद्धि नहीं होती। मैं शिव के समान हूँ, ऐसी कल्पना से युक्त भाव का प्राप्त होना सत्य होता है।।३६।।

कल्पभावो बहुविधो भैरवो वटुकादिकः।
दिव्योऽथ मानवः सिद्ध एतद्भावपरायणः।।३७।।

कल्प भाव अनेकों प्रकार का होता है। भैरव कल्प भाव, वटुकादिक कल्पभाव आदि आदि। इस प्रकार इस भाव में परायण भाव सिद्ध पुरुष का होता है और वह दिव्य होता है।।३७।।

निर्विकल्पा महाविद्या आद्या श्रीः परमेश्वरी।
न लभते शक्तिरूपे सती पतिपरायणा।।३८।।

महाविद्या निर्विकल्प है, अर्थात् उसमें किसी प्रकार की कल्पना नहीं की जा सकती, वह आद्या श्री परमेश्वरी है। पतिपरायणा सती शक्ति रूप में नहीं प्राप्त होती।।३८।।

तदंशस्तत्कला विद्या इच्छाज्ञानक्रियात्मिका।
माधुर्यैश्वर्यमिश्रा च सत्यकामफलप्रदा।।३९।।

उन आद्या श्री का अंश कला विद्या है, जो इच्छा, ज्ञान और क्रियात्मक है तथा वह विद्या, माधुर्य और ऐश्वर्य से मिश्रित है एवं सत्य काम से फल को प्रदान करने वाली है।।३९।।

निर्विकल्पस्त्रिविधश्च सूक्ष्मज्योतिस्थूलात्मकः।
सूक्ष्मब्रह्म अस्तिमात्रं नास्ति शेषमगोचरम्।।४०।।

निर्विकल्प तीन प्रकार का सूक्ष्म ज्योति (प्रकाशस्वरूप) और स्थूलात्मक सूक्ष्म ब्रह्म अस्तिमात्र नहीं है, अर्थात् वह है ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह शेष है और इन्द्रियों की पहुंच से परे है।।४०।।

सूक्ष्मसतीसमायोगे सर्वाधारं निरञ्जनम्।
तटस्थं लक्षणे ऐक्यं कूटस्थः परमात्मनः॥४१॥

सूक्ष्म सती के समायोग होने पर सर्वाधार निरंजन ब्रह्म में आत्मा जब तटस्थ हो जाती है, जिसका लक्षण एकत्व होता है। तब परमात्मा का वह कूटस्थ रूप है, अर्थात् आत्मा-परमात्मा का एक हो जाना है, परन्तु वह सूक्ष्म सती के समायोग होने पर ही सम्भव है। अर्थात् प्रकृति (प्रधान) तत्त्व में जब सेन्द्रिय मन, अहंकार और बुद्धि (महत्तत्त्व) प्रकृति में समायुक्त होंगे, तभी आत्मा परमात्मा का कूटस्थ रूप होगा।।४१।।

ज्योतिरभ्यन्तरे ज्योतिश्चैतन्यशक्तियोगतः।
महाकालो भूताकाशः पटाकाशः स्वतन्त्रकः॥४२॥

उस समय चैतन्य शक्ति के योग से ज्योति के अन्तर्गत ज्योति (एक दिव्य प्रकाश) उत्पन्न होगा। वही प्रकाश महाकाल भूताकाश है। पराकाश है तथा स्वतन्त्र है। वह प्रकाश किसी के अधीन नहीं है।।४२।।

भानुरणुः सुकृशानुर्विस्फुलिङ्गप्रवाचकः।
चिद्घनः सकलब्रह्म स्थूलो दम्पतिशक्तितः॥४३॥

सूर्य की किरण सुन्दर अग्नि हैं, जो विशेष रूप से चिन्गारी देने वाली कहा जाता है। वे सकल ब्रह्म चिद्घन हैं, अर्थात् साकार ब्रह्म चैतन्ययुक्त हैं तथा दम्पति शक्ति से वे स्थूल रूप में हैं, अर्थात् चिद्घन ब्रह्म प्रकृति के साथ संयुक्त होकर स्थूल रूप में विद्यमान होते हैं। भाव यही है सूर्य की किरण प्रकाश स्वरूप है। उसका स्थूल रूप अग्नि कहा जाता है। उसी तरह दम्पति की शक्ति से अर्थात् प्रकृति की शाक्ति से वह चिद्घन ब्रह्म साकार रूप से स्थूल हो जाते हैं, अर्थात् शरीरों के रूप में बदल जाते हैं।।४३।।

सुप्रकाशो महाकाशे नित्यधामे मुदान्वितः।
समभावो विराटादिरैश्वर्यशक्तिमिश्रितः॥४४॥

महाकाश में सुन्दर प्रकाश है तथा नित्यधाम अर्थात् ब्रह्मलोक में जीवात्मा सानन्द है। वहाँ आत्मा का विराट् आदि ईश्वरीय शक्ति से मिश्रित हो जाने पर आत्मा-परमात्मा दोनों में समान भाव हो जाता है।।४४।।

सुकृशानुः पञ्चतनुर्विस्फुलिङ्गश्चराचरः।
सङ्कल्पस्त्रिविधरूपो नित्यः सिद्धो गुणात्मकः॥४५॥
विराट्वाचको नित्यः क्रियाभेदे गुणाश्रयः।
क्रमे असंख्यसंज्ञा च संज्ञासङ्कल्पसिद्धकः॥४६॥

यह सुकृशानु पंचतनु है तथा इसने चराचर जगत् स्फूर्ति प्राप्त कर रहा है।

संकल्प तीन प्रकार का होता है—१. नित्यात्मक, २. सिद्धात्मक, ३. गुणात्मक। विराट् रूप को बताने वाला संकल्प नित्य संकल्प है। क्रिया के भेद होने पर संकल्प गुण पर आश्रित रहता है तथा क्रम में असंख्य संज्ञा है, अतः वह संज्ञासंकल्प सिद्ध संकल्प है।।४५-४६।।

महेश्वरी महासती क्रियादिसृष्टिमूलिका।
अष्टः स्पष्टो ब्रह्मण्यादिः क्रमे सती अनन्तकः।।४७।।

महेश्वरी महासती अर्थात् प्रकृति क्रिया आदि सृष्टि की मूल हैं। अर्थात् महेश्वरी महासती द्वारा ही संसार की समस्त क्रियाएँ चल रही हैं। ब्रह्माणी आदि आठ महासती स्पष्ट हैं तथा क्रम में अनन्त सती हैं।।४७।।

सर्वाराध्या आद्या विद्या ऐश्वर्यगुणवर्जिता।
निर्गुणा सद्गुणा विद्या त्रिगुणा त्रिपुरा स्थिता।।४८।।

ऐश्वर्यगुण से रहित आद्या विद्या सबके द्वारा आराध्य हैं तथा वह निर्गुण तथा सद्गुणा है तथा तीन गुण वाली त्रिपुरा स्थित हैं। अर्थात् वे तीन गुणों वाली है। कभी सगुण, कभी निर्गुण और कभी सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार की।४८।।

सामकामा विश्रामशुद्धमाधुर्यलक्षिता।
चतुःषष्टिकलापूर्णा पूर्णोत्तमा प्रचोदिता।।४९।।

आद्या विद्या त्रिपुरेश्वरी साम काम भाव वाली हैं। विश्रामशुद्ध माधुर्य से लक्षित हैं तथा वे देवी चौंसठ कलाओं से युक्त तथा पूर्ण उत्तम कही गयी हैं।।४९।।

विमर्श—स्पष्टतः श्रीचक्र स्थित बिन्दु के देवी महात्रिपुरेश्वरी की ओर संकेत है। उनकी चौंसठ कलायें हैं—

काल्यादिसकलाः सर्वा माधुर्यभावसंस्थिताः।
तथैव भैरवादयो महाभैरवांशजाः।।५०।।

कलाओं वाली सब देवियाँ माधुर्य भाव से संस्थित हैं। उसी प्रकार भैरव आदि महाभैरव के अंश से उत्पन्न हैं।।५०।।

सामकामः सामधाम सामसाम्राज्यसेवितः।
चिद्घनः सकलब्रह्म माया तदंशव्यापिका।।५१।।

वे चिद्घन सकल ब्रह्म सामकाम सामधाम तथा साम साम्राज्य से सेवित हैं तथा माया (प्रकृति) उनके अंश से व्यापक है, अर्थात् प्रकृति माया में उनका अंश व्याप्त है।।५१।।

विमर्श–चिद्घन सकल ब्रह्म (समस्त आत्माओं का समूह रूप ब्रह्म) है, जो शान्तकामभाव वाला शान्त तेज वाला है और शान्त साम्राज्य से सेवित है। अर्थात् शान्ति रूप से उसका साम्राज्य चल रहा है।

तदंशे मनः सञ्जातं सदसद् मनःकल्पितम्।
शुद्धसत्त्वे लभेद् ज्ञानं भक्तिप्रेमसमन्वितम्।।५२।।

उनके अंश में जब मन हो जाता है, तब सद् और असद् अर्थात् अच्छे बुरे की कल्पना करने लगता है। मन जब शुद्ध सत्त्व में स्थित होता है, तब भक्ति और प्रेम से युक्त ज्ञान प्राप्त होता है।।५२।।

रजःकामी स्वर्गकामी तमे निरयगामिणः।
स्वस्वपक्षे वामाचाराः परोक्षे विभावमनाः।।५३।।

जब मन रजोगुण में स्थित होता है, तब वह स्वर्ग की कामना करता है, अर्थात् सम्पूर्ण भोग ऐश्वर्य चाहता है तथा जब मन तमोगुण में स्थित होता है, तब वह नरकगामी होता है। अपने अपने पक्ष में वामाचार होता है और परोक्ष में विभावमन होता है। अर्थात् मन में विशेष भाव उत्पन्न होते हैं।।५३।।

विपरीतक्रिया सर्वा अकुले कुलसाधना।
सहस्त्रारो द्विधाकारः कल्पलतागतं दलम्।।५४।।

सभी विपरीत क्रियायें वामाचार होती हैं। अकुल (शिव) में कुलसाधना अर्थात् (शक्ति की साधना) करनी चाहिये। सहस्त्रार दो प्रकार के आकार का होता है। वह कल्पवृक्ष की लताओं वाले पत्रों वाला होता है।।५४।।

पञ्चाननः पञ्चवेदाः पञ्चपुष्पसमायुताः।
पञ्चमं फलपञ्चञ्च पञ्चमपुरुषार्थदः।।५५।।

पंचानन (भगवान् शिव) पाँच वेद वाले हैं तथा पाँच पुष्पों से युक्त हैं। पाँचवाँ फल पाँच है तथा पाँचवाँ पुरुषार्थ को प्रदान करने वाला है।।५५।।

चतुर्वेदाश्चतुःशाखाश्चतुर्थमुक्तिदायकाः।

चार वेद हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद तथा उनकी चार शाखायें हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अथर्ववेद ये सब मुक्ति प्रदान करने वाले हैं।।५५.५।।

विलयप्रलयो मोक्षो ब्रह्म सकलं निष्कलम्।।५६।।
विलयो वेदमार्गिणां प्रलयो निगमपथाम्।
निष्कले प्रलयो याति प्रलयः क्रियाभाविनाम्।।५७।।

सकलाः सकलाः सर्वे महाप्रलयरूपिणः।
शुक्रपद्मे वसेत् कालः कालिका गुणरूपिणः॥५८॥

विलय और प्रलय मोक्ष है। ब्रह्म सकल और निष्कल है। वेद के मार्ग पर चलने वालों का विलय होता है तथा निगम के पथ पर चलने वालों का प्रलय होता है। ब्रह्म के निष्कल (कलाहीन) होने पर प्रलय होती है तथा जब ब्रह्म सकल (कलाओं से युक्त) होते हैं, तब क्रिया भावों का विलीन हो जाना ही प्रलय है। सकल कलायें सब प्रलय रूप की कलायें हैं। कालिका गुण रूपी काल को काल शुक्र (श्वेत) पद्म में रहना चाहिये॥५६-५८॥

अधःपद्मे महाकालः कालिका कालभाविनी।
द्विदलो हि द्विधा कूलमासनं वृषभासनम्॥५९॥

नीचे वाले कमल में महाकाल और कालभाविनी (समय को बनाने वाली) कालिका निवास करती है। ये दल दो प्रकार के हैं, कूलमासन और वृषभासन॥५९॥

द्विदलं सकलाकुलमूर्ध्वबिन्दुर्निरञ्जनम्।
षोडशारे स्वरपुरे कुलाकुलं द्विधा मतम्॥६०॥

द्विदल सकलाकुल है, ऊर्ध्व बिन्दु में निरंजन का वास है। षोडशार (षोडशदल कमल) वाले स्वपुर में कुल और अकुल दो माने गये हैं॥६०॥

विमर्श—सकलाकुल का अर्थ यह भी हो सकता है कि दो पत्र वाला कमल सकल + अकुल है अर्थात् उसमें समस्त कलाओं वाले अकुल = शिव का ही वास है।

विशेष—कुल शक्ति है और अकुल शिव है।

द्वादशाब्दे कालः पूज्यः प्राणे ध्याने स्वतन्त्रके।
अपाने वर्तते प्राणः समानो नाभिमण्डले॥६१॥

द्वादशाब्द में प्राण में, ध्यान में और स्वतन्त्र में काल का पूजन करना चाहिये। अपान में प्राण रहता है और समान वायु नाभिमण्डल में रहता है॥६१॥

विमर्श—यहाँ यह वैज्ञानिक तथ्य है कि अपान वायु में भी प्राण रहता है। जिसका अनुभव मनुष्य को तब होता है, जब कि गुदा से अपान वायु का निकलना बन्द हो जाये तो प्राण निकलने की स्थिति हो जाती है। अतः प्राण में अपान रहता है।

दशदले महाबलः कन्दर्पलाञ्छितः सदा।
षडाननः पञ्चाननः विंशतिदलव्यापितः॥६२॥

दशदल में सदा कामदेव से लाञ्छित महाबल होता है, षडानन (कार्त्तिकेय) और पंचानन (शिव) वीसदल से घिरे हुए रहते हैं।।६२।।

व्रजेश्वरी अष्टनारी अष्टदले मुदान्वितः।
षोडशकला पूर्णबाला पञ्चदशकलाधृतः।।६३।।

अष्टनारी व्रजेश्वरी अष्टदल कमल में सानन्द निवास करती है। तथा वे सोलह कला वाली पूर्ण बाला १५ कलाओं से आवृत्त रहती है।।६३।।

अष्टनागा अनुरागा महाविष्णुपुरे स्थिताः।

वे १५ कलाओं से आवृत सोलह कलाओं वाली पूर्णबाला आठ नागों वाली हैं तथा अनुराग से युक्त हैं तथा महाविष्णुपुर में स्थित हैं।।।

मूलपद्मः क्रमे साध्यः शुक्रे रक्ते मणिपुरे।।६४।।
पाटलः पीतवर्णश्च जलस्थलसमायुतः।
जले विष्णुः स्थले विष्णुर्भानुमण्डलव्यापितः।।६५।।
कालग्रासे कूलनाशे कालग्रासे निपातितः।
स्थूलक्षयो जलमयश्चन्द्रमण्डलव्यापितः।।६६।।
सूर्यग्रासे जलनाशे हुताशे चन्द्रपतितः।

शुक्ररक्त मणिपुर में क्रम में लाल और पीला वर्ण वाले जल और स्थल दोनों से समायुत मूल पद्म की साधना करनी चाहिये।

जल में विष्णु हैं, स्थल में विष्णु हैं, विष्णु ही सूर्यमण्डल में व्यापित हैं। काल द्वारा ग्रास होने पर तथा कूलनाश होने पर काल ग्रास वह निपातित होता है।

स्थूल का नाश होना, जलमय होना तथा फिर चन्द्रमण्डल में व्यापित होना सूर्य के द्वारा ग्रास होने पर जलनाश हो जाता है और अग्नि में चन्द्र गिर जाता है।।६४-६६।।

तरुणः अरुणो भानुर्वायुवेगे गतागतः।।६७।।
वायुदर्पो भवेत् खर्वः प्रलये दिवि संगतः।
बाह्यनाशे मनोदेशे स्वप्नवत् सर्वमाप्लुतम्।।६८।।

प्रातःकालीन सूर्य तरुण होते हैं। जब अरुण (लाल वर्ण वाले) होते हैं, तब वे बहुत उग्र होते हैं। वायु का वेग होने पर सूर्य गतागत होते हैं, अर्थात् सूर्य का प्रभाव कम हो जाता है। प्रलय काल में वायु का दर्प (घमण्ड) खर्व हो जाता है।।६७-६८।।

मनोद्भवः पराभवः क्रमे शिवपुरे गतः।
जलहीनो यथा मीनो निष्कलः कलावर्जितः॥६९॥
सकला सकलो घनो घनाघनं कुलाकुलम्।
चन्द्रामृतवत् पूतो यदि सूर्यो न शुष्यति॥७०॥

प्रलयकाल में कामदेव पराजित होकर अर्थात् दुःखी होकर क्रम से भगवान् शिव के पुर में जाता है। तथा जैसे जल के बिना मछली निष्कल हो जाती है, अर्थात् व्याकुल हो जाती है, उसी तरह वह कामदेव भी अपनी सभी कलाओं से हीन हो जाता है। सभी कलाओं वाला घन (मेघ) घन और अघन हो जाता है तथा वह कुल और अकुल हो जाता है तथा यदि सूर्य उसे नहीं सोखता है, तो वह चन्द्र के अमृत के समान पवित्र हो जाता है॥६९-७०॥

विशेष—घन अर्थात् मेघ (बादल) प्रलयकाल में घनाघन अर्थात् तितर-बितर हो जाता है तथा वह कुलाकुल अर्थात् शक्ति और शिवमय हो जाता है।

पापक्षयं पूतमयं भावदेहं प्रलभ्यते।
सूर्यतीर्थः सुपवित्रः अपवित्रं प्रणश्यति॥७१॥

उस प्रलय काल में पाप का नाश हो जाता है और वह पाप पवित्रतायुक्त भाव रूपी शरीर को प्राप्त हो जाता है। सूर्य की यात्रा सुपवित्र हो जाती है और अपवित्रता नष्ट हो जाती है॥७१॥

शुचेरादिः आधिव्याध्यादित्रितापनाशकः।
जलरूपे भवेत्तीर्थं स्थूलरूपे कुलाकुलम्॥७२॥

सूर्य का आदि होना हो जाता है तथा वे भगवान् सूर्य आधि, व्याधि और दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के तापों को नष्ट करने वाले हो जाते हैं। समस्त तीर्थ जलरूप में हो जाते हैं। तथा स्थल रूप में कुल और अकुल हो जाते हैं।

कुल—कुलार्णव तन्त्र में कुल शब्द का अर्थ शक्ति तथा अकुल का अर्थ शिव किया गया है। 'ह' लिपि इसकी वाचिका है। प्रकाशात्मक अकुल (शिव) के बोधक अकार के साथ विमर्शात्मक कुल (शक्ति) के बोधक हकार को मिलाने पर 'अहम्' पद बनता है। इस 'अहं' तत्त्व से ही शब्दार्थात्मक षडध्वमय संसार की रचना होती है। तन्त्रालोक ३.६७ में कुल शक्ति को कौलिकी कहा जाता है। इस कौलिकी शक्ति से शिव कभी जुदा नहीं रहते। नित्य षोडशिकार्णव (४-६-७) और सौन्दर्य लहरी के प्रथम श्लोक में बताया गया है कि शक्ति के बिना शिव कुछ नहीं कर सकते।

यहाँ इस श्लोक का भाव है कि जब प्रलय होती है, तब सर्वत्र जल ही जल होता है और स्थल रूप में केवल शक्ति और शिव ही रहते हैं।।७२।।

चिद्रूपा सकला ब्रह्मकालिका कालरूपिणी।
सहस्रारे स्थितो देवो देवी हृदम्बुजे स्थिता।।७३।।

उस समय कालरूपिणी ब्रह्मकाली और प्रलय करने वाली ब्रह्मकाली समस्त कलाओं के साथ केवल चित् रूप में स्थित रहती है। चित् का अर्थ चैतन्य (जीव) है अर्थात् उस समय केवल चित् ही शेष रहता है और उस समय सहस्रार कोण में देव (भगवान् शिव) स्थित रहते हैं और उनकी शक्ति उनके हृदय कमल में विराजमान रहती है।।७३।।

मायाशक्तिर्वसेन्नाभौ गुणशक्तिर्मूलाम्बुजे।
चिद्ब्रह्म परमा आद्या द्वितीया परमात्मनि।।७४।।

उस समय माया शक्ति उन शिव की नाभि में रहती हैं और सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीनों शक्तियाँ मूल कमल में स्थित हो जाती हैं।।७४।।

विमर्श—प्रलयकाल में माया शक्ति अर्थात् प्रकृति का शिव की नाभि में रहना यह सिद्ध करता है कि प्रलयकाल में प्रकृतितत्त्व जीवनाधायक तत्त्व परमात्म तत्त्व (God Particle) शिव में समा जाता है। यह वैज्ञानिक रहस्य है। इस पर वैज्ञानिकों को विचार करना चाहिये। चित्कलात्मा का अर्थ है—चेतनतत्त्व वाली शक्ति।

भगवती महासती सुन्दरी शिवमोहिनी।
नाक्षत्री चन्द्रमाकाशे महाशून्यसमावृता।।७५।।
हृदये सुन्दरी भानुः सर्वतनुप्रकाशिनी।
श्मशानानलमध्यस्था कालिका चित्कलात्मनि।।७६।।

उस समय शिव को मोहित करने वाली महासती सुन्दरी भगवती शक्ति, जो कि नक्षत्र रूपा है, वह समस्त नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा को लेकर महाशून्य में समावृत हो जाती है, अर्थात् सब कुछ शून्यमय हो जाता है तथा समस्त शरीरों को प्रकाशित करने वाली कान्ति (सूर्य) हृदय में स्थित हो जाता है। श्मशान की अग्नि के मध्य रहने वाली कालिका (मृत्यु की देवी) चित् कलात्मा में स्थित हो जाती है।७५-७६।।

चिदाकारे सूक्ष्मद्वारे साधनं निष्कलात्मनः।
सविकल्पनिर्विकल्पसाधनं वेदवर्जितम्।।७७।।

जितने भी साधन हैं, चिदाकार होकर अत्यन्त सूक्ष्म द्वार में स्थित हो जाते हैं तथा वे सभी साधन कलाहीन हो जाते हैं तथा वेदवर्जित हो जाते हैं।।७७।।

कुलाकुलं शिलापुष्पे ब्रह्मणो रूपं कल्पितम्।
त्रिविधार्थो भवेत् सत्यो विभावज्ञानवादिनाम्।।७८।।

उस समय शिला पुष्प पर ब्रह्मा का रूप कुल और अकुल में कल्पित होता है, अर्थात् केवल शक्ति और शिव ही शेष रहते हैं और विभाव ज्ञानवादियों का सत्य तीन प्रकार के अर्थों वाला हो जाता है। अर्थात् सत्य सत्त्व, रजस् और तमस् के रूप में शेष रह जाता है।।७८।।

मूर्तिहीनं सुवर्मं हि ब्रह्मणः परमात्मनः।
मनःकल्पितव्याजेन स्वरूपो गुरुवर्त्मना।।७९।।

प्रलय काल में परमात्मा ब्रह्मा जो सृष्टि के रचयिता हैं, का सुन्दर वर्ण मूर्तिहीन हो जाता है। अर्थात् ब्रह्माण्ड का सब कुछ आकारविहीन हो जाता है। तब मन से कल्पना करने के बहाने से गुरुमार्ग से उसके स्वरूप का ज्ञान होता है। अर्थात् गुरु के बताये गये मार्ग से उस स्वरूप की कल्पना की जाती है।।७९।।

निराकारं परं ब्रह्म निराकारः परात्मनः।
अनुभव्येऽननुभव्यो ज्ञानिनां हठयोगिनाम्।।८०।।

तब उस परम आत्मा का निराकार रूप और निराकार ब्रह्म ज्ञानियों और हठयोगियों को अनुभव करने योग्य और अनुभव न करने योग्य हो जाता है, अर्थात् ज्ञानी उसे अनुभव के योग्य मानते हैं और हठयोगी अनुभव न करने योग्य मानते हैं।।८०।।

कौलाना मुद्रायोगो हि ज्ञानयोगसमन्वितः।
न शुष्कः सरसयोगो भक्तिप्रेमसमन्वितः।।८१।।
निर्विकल्पः शुष्कज्ञानी निर्वाणपदवाचकः।
सकलवाचकः कौलो यत आद्यन्तवर्जितः।।८२।।

कौलों (शक्ति की पूजा करने वालों) का मुद्रायोग ही ज्ञानयोग से युक्त है। वह मुद्रायोग शुष्क नहीं है। वह सरस योग है तथा भक्ति और प्रेम से पूर्ण युक्त है। यह मुद्रायोग निर्विकल्प है, अर्थात् इस योग में कोई विकल्प नहीं रहता। एकमात्र शक्ति में ही अधिष्ठित रहता है। यह शुष्क ज्ञान वाला है तथा मोक्ष के पद का वाचक है, अर्थात् मोक्ष को प्रदान करने वाला है। समस्त कलाओं का वाचक है तथा यह

कौल अर्थात् शक्ति की पूजा का योग आदि और अन्त से वर्जित है, अर्थात् अनादि और अनन्त है।।८१-८२।।

मुद्रायोग—मुद्रा का साधारण अर्थ है छाप-मोहरा। योग में इसका अर्थ होता है विशेष अंग विन्यास, विशेष रूप से हाथ की अंगुलियों की निश्चित स्थिति। अधिक व्यापक रूप से इसका अर्थ होता है—शरीर के कुछ अवयवों और इन्द्रियों पर विशेष नियन्त्रण, जिससे कि ध्यान और समाधि में सहायता प्राप्त होती है। यथा—भैरवी मुद्रा का अभ्यास करने वाले साधक को जीवन् मुक्त दशा प्राप्त हो जाती है। कुछ ग्रन्थों में मुद्रा को क्रिया शक्ति का विलास कहा गया है। स्वच्छन्द तन्त्र (४-३७५) अमृतानन्द के अनुसार परा संवित् ही क्रियाशक्ति के रूप में विश्व को मोद (सुख) से भर देती है। सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं। उक्त दोनों गुणों के आधार पर सन्निविष्ट क्रियाशक्ति ही मुद्रा कही जाती है। मुद्रा ग्रह आदि के दोषों को दूर कर देती है। इस तरह मोचन और द्रावण गुणों के आधार पर इसे मुद्रा कहा गया है। योगिनी हृदय (१/५७) तन्त्रालोक के अनुसार देह के माध्यम से देही आत्मा को स्वरूप के ज्ञान का सुख देने के कारण इसको मुद्रा कहते हैं। अर्थ रत्नावली के अनुसार दो प्रकार की मुद्रायें होती हैं। अंगुलियों के विन्यास से प्रदर्शित की जाने वाली मुद्रा बाह्य और बन्ध के नाम से प्रसिद्ध मुद्रा आभ्यन्तर कही जाती है। क्षेमराज के अनुसार मनोजा, वाग्भवा और देहोद्भवा के नाम से तीन प्रकार की मुद्रायें होती हैं। तन्त्रालोक में करजा, कायिकी, विलापाख्या और मानसी चार प्रकार की मुद्राओं का उल्लेख है। परशुराम कल्पसूत्र में सौ से अधिक मुद्रायें वर्णित हैं (पृ० ६०८-६५२)। भगवान् राम की उपासना में प्रयुक्त ज्ञानमुद्रा भी वहाँ वर्णित है। तंत्रालोक में करंकिणी, क्रोधना, भैरवी और लेलिहान मुद्रा खेचरी के ही प्रपंच हैं। ये पाँच मुद्रायें विज्ञान भैरव, चिद्गगन चन्द्रिका, महार्थमंजरी आदि ग्रन्थों में भी वर्णित हैं। वहाँ बताया गया है कि करंकिणी मुद्रा पाँच तत्त्व वाली भौतिक देह को परम आकाश में विलीन कर देती है। इसके साधक ज्ञानसिद्ध कहलाते हैं। क्रोधनी मुद्रा पृथिवी से लेकर प्रकृति तक चौबीस तत्त्वों को मन्मय शरीर में विलीन कर देती है। इसके साधक मन्त्रसिद्ध कहलाते हैं। भैरवी मुद्रा अपने स्वरूप में सारे संसार को विलीन कर देती है। इसके साधक मेलापसिद्ध कहे जाते हैं। लेलिहान मुद्रा सारे संसार का अपने पूर्ण विमर्शमय स्वरूप में बार-बार आस्वादन करती है। इसके साधक शाक्तसिद्ध कहे जाते हैं। खेचरी मुद्रा शक्ति व्यापिनी आदि स्थानों में सदा विचरण करने वाली है। इसके साधक शाम्भवसिद्ध कहे जाते हैं। इनका कितना

पारख्य तथा मानस विभाग में समावेश होगा। महार्थ मंजरी ने वेशविन्यास को भी मुद्रा के अन्तर्गत माना है। आगमाचार्य आगम प्रामाण्य में पाशुपत मत में प्रसिद्ध कर्णिका, अचक कुण्डल, शिखामणि, भस्म और यज्ञोपवीत नामक छः मुद्राओं तथा कपाल और खट्वाङ्ग नामक छः उपमुद्राओं का उल्लेख है।

वैष्णव सम्प्रदाय में शंख, चक्र आदि से शरीर को अलंकृत किया जाता है। इसे भी मुद्रा ही कहा गया है। यहाँ तप्त मुद्रा और शीतल मुद्रा दो नाम से जानी जाती है। आग में तपे चक्र आदि के ठप्पों से जो शरीर पर चिह्न बनाये जाते हैं, उन्हें तप्त मुद्रा और चन्दन आदि से जो शरीर पर छाप दिये जाते हैं, वह शीतल मुद्रा कही जाती है। पञ्च मकार में भी मुद्रा का उल्लेख है। वहाँ खाद्य अन्नविशेष में उड़द अथवा चने को मुद्रा कहा जाता है। शैव, शाक्त और बौद्ध तन्त्रों में इनके भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। शक्तिसङ्गम तन्त्र में अंक बीज, बीजक, मन्त्र और नाम के भेद से पाँच प्रकार की मुद्रायें वर्णित हैं। उसके अनुसार मुहर और अंगूठी को भी मुद्रा कहा जाता है।

अद्वैत दृष्टि के प्रतिपादक तन्त्रग्रन्थों में सब कुछ स्वात्म स्वरूप माना जाता है, तदनुसार मुद्रा भी परासंवित् का ही विस्फार है। शिवानन्द के अनुसार तन्त्रसद्भाव आदि ग्रन्थों की सहायता से इसको समझाने का प्रयास किया गया है। खेचरी मुद्रा भी मुद्रायोग का एक रूप है। खेचरी मुद्रा के तीन भेद हैं—१. अंगुलिविरचनात्मा, २. बोधगगनरूपा, ३. संस्थान विशेषरूपा। पहले प्रकार की मुद्रा में अंगुलियों का उपयोग किया जाता है। वाचस्पत्य पृ० २४७८ के अनुसार बायें हाथ को दाहिनी और तथा दाहिने हाथ को बाईं ओर करले, फिर अनामिका को मिला कर तर्जनी से लगाये और बीच की अंगुली को सटा कर अंगूठे पर जमावे।

बोध गगन में विचरण करने वाली खेचरी को शिवानन्द ने अवर्णनीय बताया है। यह स्वात्म रूप में उछलती हुई आनन्द की लहरी है। तन्द्रसद्भाव शि०वि० २, ५ में सका परसंविति के रूप में वर्णन किया गया है। तीसरे प्रकार की खेचरी का वर्णन विज्ञानभैरव, विवेकमार्तण्ड, स्कन्दपुराण, काशीखण्ड तथा हठयोगदीपिका जैसे ग्रन्थों में मिलता है। तदनुसार जीभ को उलट कर कपाल के कुहर में तथा दृष्टि को ऊपर उठा कर भौंहों के बीच में लगाने का नाम खेचरी मुद्रा है। इसके अभ्यास से सभी रोग और कर्मफल नष्ट हो जाते हैं। चित्त और जिह्वा दोनों को आकाश में स्थित कर देने के कारण इसको खेचरी मुद्रा कहते हैं। इसके अभ्यस्त पुरुष को मृत्युभय नहीं रहता। आकाशगमन की शक्ति भी प्राप्त हो जाती है।

तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि में अश्विनी मुद्रा का भी उल्लेख है। इसका अभ्यास प्राणशक्ति के संकोच और विकास के लिये किया जाता है।

इस प्रकार ये उपर्युक्त मुद्रायें हैं। इनमें योग अर्थात् लगना ही मुद्रायोग कहा जाता है।

सकला परमा विद्या परं ब्रह्म परात्मनि।
एकात्मा द्विविधा भूत्वा प्रेमार्थं प्रेमरूपिणी॥८३॥

शक्ति के उपासकों का यह मुद्रायोग परं ब्रह्म परम आत्मा में सभी कलाओं वाली परम श्रेष्ठ विद्या है। इसमें एक आत्मा दो प्रकार का होकर प्रेम के लिये प्रेम रूप हो जाता है। अर्थात् आत्मा और परमात्मा दो रूप में होकर आत्मा परमात्मा के प्रति प्रेम करता है और उसका एक प्रेम रूप हो जाता है।।८३।।

ब्रह्मसती अनन्ताद्यब्रह्मणो बहुवाचकः।
आभरणाश्रितं गात्रं न गात्रं स्वर्णभूषणम्॥८४॥

इस विद्या में ब्रह्म का अस्तित्व है और आदि अन्त रहित ब्रह्म की बहुवाचक विद्या है, अर्थात् ब्रह्म का अस्तित्व आदि अन्तरहित तथा अपरिमित संख्या वाला है। आभरण पर आश्रित स्वर्णभूषण युक्त शरीर शरीर नहीं है।।८४।।

प्रकृतिपुरुषज्ञाने प्रकृतिपुरः पञ्चधा।
कूटस्थे शेरते सर्वे विराटादिचराचराः॥८५॥

इस विद्या से अर्थात् मुद्रायोग से प्रकृति और पुरुष का ज्ञान होने में पाँच प्रकार की प्रकृति का ज्ञान हो जाता है तथा पाँच प्रकृतियों से मानव युक्त हो जाता है। तब वह कूटस्थ हो जाता है। अर्थात् तब न उसे न प्रकृति (शरीर) का बोध रहता है और न आत्मबोध रहता है। उस समय आत्मा परमतत्त्व में विलीन हो जाता है। तब उस कूटस्थ में विराट् आदि चर और अचर अर्थात् जड़ और चेतन सभी सो जाते हैं, अर्थात् जड़-चेतन आदि किसी का भी बोध नहीं रहता।।८५।।

व्यष्टिसमष्टिरूपेण साक्षी भूत्वा परस्परम्।
वाक्यार्थे वामाप्रभृतिर्वामाचारस्वरूपकाः॥८६॥

व्यष्टि और समष्टि रूप से परस्पर साक्षी होकर वाक्यार्थ वामादि वामाचार स्वरूप वाले हो जाते हैं। व्यष्टि आत्मा को कहा जाता है, क्योंकि वह एक आत्मा है तथा समष्टि समस्त आत्माओं को कहा जाता है, अर्थात् आत्माओं का समूह जो परमात्मा ही है, अतः कूटस्थ की स्थिति में आत्मा और परमात्मा एक होकर वाक्यार्थ में वामा आदि वामाचार स्वरूप वाले हो जाते हैं।।८६।।

विशेष–वामा–शैव सिद्धान्त में कलात्मक और भुवनात्मक प्रपंच की सृष्टि करने में शिव की सहकारिणी शक्ति को वामा कहते हैं। यह शक्ति अत्यन्त रहस्यमय मानी गयी है। पति शिव का यह स्वरूप ज्ञान और क्रियाशक्ति से परिपूर्ण है। इसी को वामाशक्ति कहते हैं। इसी की सहायता से शिव सृष्टि करने में समर्थ होते हैं। इस तरह वाम अर्थात् विलक्षण गुह्य अर्थात् अदृष्ट तेज वाला यह वामगुह्य कहलाता है।

वामाचार को प्राणतोषिणी पृ० ९६५ के अनुसार पंचतत्त्व अर्थात् पंचमकार (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन) ख पुष्प अर्थात् रजस्वला का रज और कुलस्त्री का पूजन आदि के माध्यम से आद्या शक्ति की उपासना करने वाली विधि को वामाचार कहते हैं।

यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि चित्त की एकाग्रता चित्त का एक बिन्दु पर स्थित होने को ही योग कहा जाता है, जिसका आठवाँ और अन्तिम अंग समाधि है। 'सम्' और 'आ' उपसर्गपूर्वक 'डुधाञ्' (धारणे) धातु से 'कि' प्रत्यय से समाधि शब्द बना है, जिसका अर्थ है कि सम्यक् प्रकार से 'आ' समन्तात् (सब ओर से) अथवा विशिष्ट क्रम में जिस लक्ष्य को धारण किया जाये, वह समाधि है। अर्थात् चित्तवृत्ति का किसी एक लक्ष्य या विन्दु पर स्थित होना समाधि है। अतः यदि इस ध्यान की एकाग्रता एकनिष्ठता का सबसे अधिक प्रभावशाली क्षेत्र है, तो वह सम्भोग है, क्योंकि उस काल में दोनों की चित्तवृत्तियाँ एक ही लक्ष्य पर इतनी एकाकार हो जाती हैं कि वहाँ पर कोई अन्य विषय कुछ काल के लिये सर्वथा समाप्त–सा हो जाता है। उस समय उस आनन्द में इतनी तन्मयता है कि कुछ समय के लिये सब कुछ समाप्त हो जाता है। मैं समझता हूँ, सम्भवतः इस तल्लीनता की पराकाष्ठा ने ही वामाचार की प्रथा को समाधि के लिये सर्वथा उचित माना है तथा पंचमकार पूजा का विधान किया है।

कुलज्ञाने कुलध्याने कालीकालसमागमः।
शब्दार्थं कालिकाकूलं पञ्चकलाप्रवाचकम्।।८७।।

कुल (शक्ति) का ज्ञान हो जाने पर शक्ति का ध्यान करने पर काली और काल अर्थात् शक्ति और शिव का समागम हो जाता है। वह कालिकाकूल शब्द का अर्थ पाँच कलाओं (पंचमकार) का प्रवाचक है।।८७।।

कामकलासमा सोमचित्कला कलारूपिणः।
त्रिगुणः साम्यकला च मायाकलाप्रकाशितः।।
यन्त्रध्यानं ब्रह्मज्ञानं साधनं प्रेममिश्रितम्।।८८।।

कला रूपी भगवान् शिव की सोमचित्कला कामकला के समान है। वह साम्यकला अर्थात् समान होने की कला तीन गुण वाली है और माया रूपी कला से प्रकाशित है। जहाँ यन्त्र का ध्यान ब्रह्मज्ञान है और वह प्रेममिश्रित साधन है।।८८।।

विमर्श—तीन गुण सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ही हैं।

विना वामां कथं श्यामा सकला कलासेविता।
भावान्तरे यदा सिद्धी रूपान्तरप्रदर्शिका।।८९।।
द्विभुजश्चतुर्भुजश्च दशभुजः स्वतन्त्रकः।
अष्टविद्या दुर्गावाच्या दुर्गादिकालीवाचकाः।।९०।।
उमा गौरी श्यामा भीमा भावरूपे प्रदर्शिताः।
महाकालं यजेद् देव्या दक्षिणे द्विविधार्थकम्।।९१।।

वामाचार के बिना सकल कलाओं से सेवित श्यामा की सिद्धि कैसे हो सकती है? भावान्तर होने पर जब सिद्धि होती है, वह उस अन्तर रूप को दिखाने वाली होती है। तथा वह रूप है दो भुजाओं वाला, चार भुजाओं वाला, दश भुजाओं वाला तथा स्वतन्त्र रूप वाला। उस रूप को ही आठ विद्याओं वाली दुर्गा आदि देवी और काली कहा गया है। वही देवी उमा, गौरी, श्यामा, भीमा तथा भावरूप में प्रदर्शित कही गयी है। दक्षिण में दो प्रकार के अर्थ वाले महाकाल का पूजन देवी द्वारा किया जाना चाहिये।।८९-९०।।

ब्रह्मानन्दं सहस्त्रारे गुरुरूपे प्रपूजितम्।
दक्षवामे पतिः पत्नी दक्षिणो दिव्यतीर्थदः।।९२।।

सहस्त्रार में ब्रह्मानन्द गुरु रूप में प्रपूजित है और उनके दायें और बायें भाग में पति और पत्नी रहेंगे। दक्षिण भाग दिव्य तीर्थ (दिव्य मार्ग) को प्रदान करने वाला है।।९२।।

कुलानंन्दः कुले पूज्यः कुलाकुलसमावृतः।
भक्तिसाध्या यदा आद्या हृदये रूपचिन्तनम्।।९३।।

शक्ति का आनन्द शक्ति में ही पूजनीय है, परन्तु वह शक्ति और शिव से समन्वित होनी चाहिये। तब आद्या शक्ति (गौरी, उमा) भक्ति द्वारा साध्य हो जाती है। जब हृदय में उनके रूप का चिन्तन होता है, तब वे स्वतः सिद्ध हो जाती हैं अर्थात् हृदय में उनके रूप का चिन्तन ही उन आद्या शक्ति को सिद्ध करने का उपाय है।।९३।।

प्रत्यक्षे सम्मुखे श्यामा कल्पितपुत्तल्यादिकम्।
सव्ये कालवामा श्यामापूजनं विधिपूर्वकम्।।९४।।

प्रत्यक्ष (आँखों के सामने) सम्मुख पुत्तली आदि से कल्पित श्यामा देवी स्थित हैं। अर्थात् वामाचार पूजा में सामने श्यामा अर्थात् षोडश वर्षीया युवती पुत्तली आदि से सजी हुई होनी चाहिये। तथा बायें भाग में कालवामा स्थित हैं, जहाँ श्यामा का विधिपूर्वक पूजन किया जाना है।।९४।।

प्रेमसाध्या यदा आद्या महाभावे प्रपूजिता।
तरुणारुणदक्षाक्षरूपं सर्वं प्रकाशितम्।।९५।।

जब प्रेम से सिद्ध हो जाने वाली आद्याशक्ति (महादुर्गा) महाभाव में प्रकृष्ट रूप से पूजित होती है, तब सूर्य की तरुण अरुण आभा दक्ष अक्ष रूप सब कुछ प्रकाशित हो जाता है।।९५।।

समाबन्धः पञ्चानन्दः पञ्चकामे प्रसेवितः।
बोधानन्दः सुधानन्दो ध्यानानन्दस्तृतीयकः।।९६।।
श्यामानन्दो रामानन्दः कन्दर्पपञ्चमिलितः।
पञ्चयोगः पञ्चभोगो भवरोगविनाशनः।।९७।।

उस समय पंचकाम में प्रसेवित पाँच प्रकार के आनन्द सम्यक् प्रकार से विशिष्ट क्रम से बंध जाते हैं। वे आनन्द हैं—१. बोधानन्द, २. सुधानन्द, ३. ध्यानानन्द, ४. श्यामानन्द तथा पाँचवाँ आनन्द है रामानन्द। ये पाँचों ही आनन्द कामदेव के पाँच बाणों से मिले हुए हैं। इस प्रकार पंचयोग और पाँचों का भोग भवसागर में पैदा होने वाले रोगों का नाशक है।।९६।।

नित्यधामे यथा श्यामः श्यामा सह समागतः।
वामाचारे यजेत् श्यामा वामाभावः सुविस्तरः।।९८।।

नित्य धाम में जब श्याम श्यामा साथ-साथ समागत होते हैं, तब वामाचार में श्यामा का वामाभाव विस्तार के साथ पूजन करना चाहिये।।९८।।

रश्मिवृन्दः कुलानन्दः सामरसानन्दभागितः।
विद्यानन्दो योगानन्दः स्वयं सुरतानन्दितः।।९९।।
सहजानन्दो ब्रह्माद्यः कारणानन्दसेवितः।
सेवानन्दः असंख्यश्च दर्शनार्थी ततोऽधिकः।।१००।।

उस समय रश्मियों का समूह कुलानन्द (शक्ति का आनन्द) शान्त रस से युक्त होता है। तब विद्यानन्द (विद्या का आनन्द) योग का आनन्द प्राप्त होता है, जो

स्वयं सुरत (मैथुन) के आनन्द से युक्त होता है। वह मैथुन के आनन्द से युक्त सहजानन्द (स्वाभाविक आनन्द) ब्रह्मानन्द है तथा संसार के कारण रूप आनन्द से सेवित है। क्योंकि यह सुरतानन्द से भागित सब प्रकार का आनन्द संसार का कारण है, क्योंकि इसी से सृष्टि होती है तथा यह समस्त प्राणियों का स्वाभाविक आनन्द है। यह आनन्द नहीं होता तो संसार ही नहीं होता। सेवा का आनन्द और असंख्य (सांख्य विहीन) वह तो दर्शनार्थी है, उससे भी अधिक है।।९९-१००।।

देवाङ्गना अप्सराद्या गन्धर्वा नृत्यगायनाः।
न कल्पनाविर्भूतो · जीवभूतो न चेत् कदा।।१०१।।

नाच-गाना करने वाली देवाङ्गना (अप्सरायें) गन्धर्व स्त्रियाँ कल्पना से आविर्भूत नहीं हैं। यदि वे कभी भी जीवभूत नहीं होतीं। भाव यह है कि केवल कल्पना में ही आनन्द नहीं है। आनन्द साक्षात्कार में यदि अप्सरायें और गान्धर्व नहीं होते। उनके नाच-गाने की कल्पना की जाती तो क्या आनन्द आता। अतः वे जब साक्षात् सामने जीवित रूप से नृत्यगान दिखाती है, तभी आनन्द आता है। अतः आनन्द साक्षात्कार में ही कल्पना में नहीं।।१०१।।

विशेष—यह स्पष्टतः वामाचार प्रयोग विहित है।

अनादिरादिः श्रीआद्या सच्चिदानन्दवाचकः।
भक्तियोगे सर्वाः साध्या न भक्तपुरगामिनः।।१०२।।

ये आद्या श्री (आद्या लक्ष्मी) अनादि और आदि दोनों रूपों वाली हैं, अर्थात् ये आदि अर्थात् सबसे पहले हैं तथा अनादि भी हैं। अर्थात् इन्हें यह भी नहीं कहा जा सकता कि ये सबसे पहले पैदा हुईं, अर्थात् इनका आदि भी नहीं है, अर्थात् ये सब कालों में वर्तमान रहती हैं। ये देवी ही सत् चित् और आनन्द वाचक हैं, अर्थात् इन्हें ही सत् प्रकृति, चित् जीव और आनन्द अर्थात् ईश्वर कहा गया है। अर्थात् ये ही सच्चिदानन्द रूप हैं। भक्तियोग में सब कुछ साध्य है, अर्थात् भक्तियोग से ये देवी स्वयं सिद्ध हो जाती हैं। ये देवी भक्तिपुरगामिनी नहीं हैं।।१०२।।

विमर्श—यहाँ पर प्रत्यक्ष रूप से नास्तिकमत का समर्थन है तथा सांख्य वादिता लक्षित हो रही है; क्योंकि यहाँ त्रिगुणात्मिका प्रकृति को ही ईश्वर कहा गया है।

चिन्मयी कृपामयी भाक्ते अंशकलाप्रदर्शितः।
न स्वयं करोति सिद्धं न नाशार्थमस्त्रधारणम्।।१०३।।
कारणं कारणज्ञानं निर्विकल्पसमाधिना।
अंशकल्पा बहुरूपं स्वरूपं फलदायिनम्।।१०४।।

चिन्मयी शक्ति जीवस्वरूपा शक्ति कृपामयी शक्ति है, वह भक्त में अंशकला से प्रदर्शित है। वह स्वयं सिद्ध नहीं करता और न नाश के लिये असाधारण करता है। निर्विकल्प समाधि से कारण तथा कारण का ज्ञान होता है। उसका वहुरूप अंशकल्पा है तथा स्वरूप फलदायी है।।१०३-१०४।।

सविकल्पो बहुविधो भैरवभैरवीगणः।
सविकल्पो विभावश्च स्वभावो वामभावितः।।१०५।।

सविकल्प अनेकों प्रकार का है, जिसमें कालभैरव और कालभैरवीगण स्थित रहते हैं। सविकल्प विशेष भाव रूप है तथा वामभावित स्वभाव वाला है।।१०५।।

विमर्श—सविकल्प का अर्थ ही है जिसमें कि अनेकों विकल्प रहते हैं अतः इस साधना में भैरव (भगवान् शिव) भैरवी (शक्तिपा पार्वती) तथा उनके असंख्य गण रहते हैं।

कल्पसिद्धः कल्पे लब्धः कल्पान्ते स्वभावगतः।
पुरुषकारो द्विधाकारो निर्विकल्पसकल्पना।।१०६।।
साक्षात्कारः सेवासारो ह्यच्युतभावे भावितः।
आत्मानं न तारयेद् यस्तु स एव आत्मघातकः।।१०७।।

कल्पसिद्ध कल्प में लब्ध है तथा कल्प के अन्त में स्वभावगत होता है। पुरुषकार दो प्रकार के आकार का होता है। निर्विकल्प और सविकल्प। साक्षात्कार होना सेवा का सार है, क्योंकि साक्षात्कार में भगवान् विष्णु के भाव में उपासक भावित हो जाता है। इस प्रकार जिसने उनके साक्षात्कार से अपनी आत्मा का उद्धार नहीं किया, वह समझो अपनी आत्मा को ही नष्ट करने वाला है।।१०६-१०७।।

निर्विकल्पो निष्कलार्थो नास्ति मात्रमुपासना।
ज्ञाता ज्ञेयं ज्ञानमैक्यं निर्विकल्पः समाधिना।।१०८।।

निर्विकल्प, अर्थात् जिसमें कोई विकल्प नहीं रहता। जानने वाले और जाने जाने वाले का जहाँ आभास नहीं होता, अर्थात् आत्मा जब परमात्मा में लीन हो जाती है, तब आत्मा को अपना और परमात्मा का कोई ज्ञान नहीं रहता, वही निर्विकल्प की स्थिति है, अतः निर्विकल्प कलारहित अर्थ वाली स्थिति है। उस समय शरीर निष्कल हो जाता है, अतः निर्विकल्प की स्थिति उपासना मात्र नहीं है। उपासना का अर्थ है—इष्टदेव के पास स्थित होना, परन्तु वहाँ तो कुछ भी नहीं रहता।

ज्ञाता (जानने वाला आत्मा) और ज्ञेय (जिसे जाना जा रहा है, वह शिव) तथा तीसरा ज्ञान, इन तीनों की निर्विकल्प समाधि द्वारा एकाकारता हो जाती है।।१०८।।

द्विपक्षो लक्षालक्षश्च सापेक्षो लक्षवाचकः।
अहं भोक्ता सखा अंशः साक्षीरूपं निरञ्जनम्।।१०९।।

उस समाधि में दो पक्ष होते हैं, लक्ष और अलक्ष। अर्थात् दिखाई देना और फिर न दिखाई देना। पहले तो सविकल्प समाधि में ज्ञेय दिखायी देता रहता है, परन्तु जब निर्विकल्प समाधि हो जाती है, तब लक्ष्य अलक्ष्य हो जाता है। लक्षवाचक सापेक्ष होता है, अर्थात् जब तक लक्ष्य दिखाई देता है, तब तक वह लक्षवाचक देखने वाला आत्मा सापेक्ष अर्थात् उस तत्त्व पर निर्भर रहता है। उस समय 'मैं भोक्ता हूँ', 'मैं उसका अंश हूँ' और 'मैं साक्षीरूप निरञ्जन हूँ' यही स्थिति होती है।।१०९।।

शुद्धज्ञानं पूजाध्यानमुपचारविवर्जितम्।
शान्तिलाभः क्रमे लाभो यदि दोषविवर्जितः।।११०।।

उपचार (ढोंग) रहित पूजा और ध्यान ही शुद्ध ज्ञान है। वह शुद्ध ज्ञान यदि दोषरहित है, तो क्रमशः शान्ति प्राप्त कराने वाला होता है।।११०।।

उक्त्या लीनो यदा लीनो वासना मम सहितः।
तदा मुक्तिर्भविष्यति उक्तिमात्रं प्रचारणा।।१११।।

जब मनुष्य उक्ति द्वारा अपनी वासना के साथ लीन हो जाता है, तब मुक्ति हो जायेगी। प्रचारणा तो उक्ति मात्र है अर्थात् जो कुछ प्रचार किया जाता है, वह तो कथनमात्र है।।१११।।

अभिन्नः प्रकृतिर्ब्रह्म तथा मनो जीवात्मनि।
अभिन्नवासना नित्यसंयोगचेतनामने।।११२।।

प्रकृति और ब्रह्म अभिन्न है। वे अलग-अलग नहीं हैं, अर्थात् ये त्रिगुणात्मिका प्रकृति और वह परं ब्रह्म परमेश्वर एक ही है। उसी प्रकार यह मन जीवात्मा में लीन हो जाता है। उस समय वासना भी अभिन्न हो जाती है, अर्थात् जब मन जीवात्मा में लीन हो जाता है, तब वासनायें भी उसी में लीन हो जाती हैं तथा उस नित्य चेतन आत्मा में सब कुछ लीन हो जाता है।।११२।।

अचेतः सुप्त उत्थितः सदसद्वासनागतः।
खपुष्पदर्शनमात्रं भ्रान्तिमात्रं न लभ्यते।।११३।।

उस निर्विकल्प समाधि से जब आत्मा परमात्मा से अलग होता है, तब

ऐसा लगता है, मानों अचेत सोया हुआ उठा है। उस समय सत् और असत् वासनागत होता है। उस समय आकाशकुसुम के समान दर्शनमात्र होता है, भ्रान्तिमात्र नहीं प्राप्त होता। अर्थात् उस समय भ्रान्ति नहीं होती, परन्तु आकाशपुष्प के समान दर्शनमात्र होता है।।११३।।

विमर्श–खपुष्पदर्शन का अर्थ है 'आकाश में पुष्प का देखना'; क्योंकि आकाश में पुष्प होता ही नहीं है, फिर उसे कैसे देखा जा सकता है? अतः यहाँ समाधि का उपहास किया गया है, जो वाममार्गी धारा है। अतः यहाँ यह कहा गया है भले ही आकाशपुष्प नहीं है फिर भी उसकी कल्पना की जा सकती है। जैसे कि आगे कहते हैं कि–

अथवा चन्द्रमा सत्यः स्पर्शने कः क्षमो भवेत्।
बालवत् क्रीडनं मात्रं निष्कलं चिदाराधना।।११४।।

अथवा चन्द्रमा सत्य है; परन्तु स्पर्श करने में कौन समर्थ हो। जैसे बच्चा चन्द्रमा है, इतना जानता है, स्पर्श करने में समर्थ नहीं होता। वह केवल उससे क्रीड़ा करता है। उसी तरह उस चित् (जीव) की आराधना निष्कल है। वह जीव उस सदाशिव के साथ क्रीड़ा करता है, परन्तु उसे स्पर्श नहीं कर सकता।।११४।।

अमृतममृतकुण्डे सत्यं न भ्रान्तिवाचकम्।
संलाभः पानं दुःसाध्यो नाम्नि न मृत्युनाशनः।।११५।।

उस परमतत्त्व से आत्मतत्त्व के मिलने पर अर्थात् उस अमृतकुण्ड में गोता लगाने पर अमृत मिलेगा, यह सत्य है, यह भ्रान्तिवाचक नहीं है। परन्तु उसका प्राप्त करना और उसका पान करना बहुत ही कठिन है। केवल नाम लेने में मृत्यु का नाश नहीं है। अर्थात् अमृतत्व तो उस अमृत का पान करने पर ही सम्भव है। उसका नाम मात्र लेने से कुछ भी नहीं है, उससे मृत्यु नष्ट नहीं हो सकती।।११५।।

चित्तशुद्धि शुद्धबुद्धिर्नामक्रममुपासना।
निर्गुणो निष्कलो देव उपदेवो विडम्बना।।११६।।

नाम क्रम से उपासना में शुद्ध बुद्धि और चित्त शुद्धि होती है। निर्गुण और निष्कल देव (शिव) हैं। उपदेव तो एक विडम्बना मात्र है। अर्थात् एक शिव ही निर्गुण और निष्कल देव हैं। अन्य देव तो एक विडम्बना हैं। यहाँ एकेश्वरवाद की ही झलक है।।११६।।

मांसरूपं मां स्वरूपं स्वरूपं रूपगर्वितम्।
वामाचारे स्वरूपञ्च विभावे सत्यं कल्पितम्।।११७।।

वामाचार सिद्धि में साधक की यह भावना होती है कि यह मेरा जो शरीर है, वह मांसरूप है। यही मेरा स्वरूप है। तथा यह शरीर रूपगर्वित है। मुझे अपने इस रूप पर गर्व है। अतः वामाचार में विशिष्ट भाव में स्वरूप ही कल्पित होता है।।११७।।

स्वरूपं निर्विकल्पञ्च सकलब्रह्मसाधना।
एकरूपा जगन्माता द्वितीया कामनापरा।।११८।।
कल्पनारहितरूपा निर्विकल्पविवेचना।
सविकल्पो सत्यरूपं गुरुदत्तः सुकल्पना।।११९।।
अनन्तरूपमैश्वर्यं विभवः सकलात्मना।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।।१२०।।

स्वरूप और निर्विकल्प ये सब ब्रह्म को सिद्ध करने की साधना है। संसार को पैदा करने वाली शक्ति एक रूप है, दूसरी शक्ति कामना है। वह शक्ति कल्पनारहित रूप वाली है, वह निर्विकल्प विवेचना है। वह सत्यरूप सविकल्प है, उसकी कल्पना गुरु द्वारा की जा सकती है। उसका अनन्त रूप है और अनन्त ऐश्वर्य है और कलायुक्त आत्मा द्वारा वह सर्वसमर्थ है। परन्तु वह शक्तिस्वरूपा देवी देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये जब प्रकट होती है, तब उसका अनन्त रूप और अनन्त ऐश्वर्य होता है।।११८-१२०।।

उत्पन्ना च क्वचित् सर्वे अदर्शनेति रोधना।
गुरुवाक्यं च मन्त्रैक्यं सुचित्तं ध्यानदर्शितम्।।१२१।।
शुद्धा अन्तःक्रियावन्तो देववद् देवसाधना।
मन्त्रार्थस्तन्त्रसंकेतः स्वरूपरूपदर्शनम्।।१२२।।

कहीं न दिखाई देने से रोके हुए सब उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु गुरु का वाक्य है एक मन्त्र है तथा गुरुमन्त्र अच्छे प्रकार से चित्त लगाकर ध्यानपूर्वक प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि देव साधना देव के समान शुद्ध और अन्तर हृदय से क्रिया की जाने वाली होती है। अतः वहाँ मन्त्र का अर्थ तन्त्र का संकेत है तथा उसी से अपनी आत्मा के रूप का दर्शन होता है।।१२१-१२२।।

आकारस्त्रिविधाकारो बहुभाग्ये प्रदर्शनम्।
चारुचक्षुः सूक्ष्मः अक्ष आबासत्यागवर्जितः।।१२३।।

आकार तीन प्रकार के आकार वाला होता है, जो बहुत भाग्य में दिखाई देता है। चारु चक्षु, सूक्ष्म अक्ष आभास के त्याग से रहित है, अर्थात् उस आकार में

सुन्दर नेत्र होते हैं, सूक्ष्म दृष्टि होती है तथा उसमें आभास रहता है, अर्थात् आवास का त्याग नहीं होता।।१२३।।

कृपासिद्धिः क्रियासिद्धिरिच्छासिद्धिः परोत्तमा।
सिद्धान्तः कौलो मिश्रश्च वामाभावो विभावकः।।१२४।।
दिव्यभावस्त्रिविधश्च कौलाचारे प्रतिष्ठितः।
आरूढः सिद्धः कौलश्च महावीरश्च नित्यता।।१२५।।

सिद्धि तीन प्रकार की होती है—१. कृपासिद्धि, २. क्रियासिद्धि और ३. इच्छा सिद्धि तथा इनमें कृपासिद्धि से उत्तम क्रियासिद्धि है और क्रियासिद्धि से उत्तम इच्छासिद्धि होती है। सिद्धान्त, कौल और मिश्र ये कौलाचार में प्रतिष्ठित हैं। आरूढ़, सिद्ध, कौल और महावीर इनकी नित्यता है।।१२४-१२५।।

अभेद ऐक्यमेकञ्च स्वरूपं स्वरूपे स्थितम्।
सुवर्णे सुवर्णयोगं शुद्धसत्त्वे भविष्यति।।१२६।।
अविद्या ताम्रवद् योगः सत्यासत्ये भविष्यति।
यथा वर्णो वर्णशिक्षा शिक्षान्ते वर्णव्यापितः।।१२७।।
शिक्षान्ते अक्षो लक्षश्च सिद्धान्ते अक्षः पूजितः।
प्रवर्तसाधनं वक्ष्ये सावधानावधारय।।१२८।।

अभेद, एकाकारता और एक होना यह स्वरूप में स्वरूपस्थित होता है। अर्थात् अपने ही रूप में अपनी आत्मा का रूप ऐसा स्थित होता है कि वहाँ कोई भेद नहीं होता, एकाकारता होती है तथा अपने शरीर का रूप और आत्मा का रूप दोनों एक होते हैं। अथवा यों कहिये कि अपना और उस सहचारिणी का स्वरूप एक होता है। सुवर्ण (सोने) में सोना का योग शुद्ध सत्त्व में होगा और अनजाने में सोना में तांबे का योग सत्य अथवा असत्य रूप होगा। जैसे कि पहले वर्णमाला सिखाई जाती है, फिर वर्णों को मिला कर सिखाया जाता है तथा जब वर्णों की शिक्षा का अन्त हो जाता है, तब वर्ण शब्द के रूप में विस्तृत हो जाता है। शिक्षा के अन्त में अर्थात् वर्णों की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर अक्ष और लक्ष रह जाते हैं और सिद्धान्त में अक्ष पूजित होता है।

अब शंकर भगवान् ने कहा कि हे पार्वति! अब मैं प्रवर्त होने का साधन कहूँगा, आप ध्यानपूर्वक सुनिये।।१२६-१२८।।

तमःपुरं रजोपुरं अनुभवो द्विधा मतः।
पापवक्ता दुःखभोक्ता सत्यच्छेत्ता दुराशयः।।१२९।।
सत्यपुरं स्वतन्त्रकं तमोनाशे प्रदर्शितम्।

तमःपुर और रजःपुर ये दो प्रकार के अनुभव कहे गये हैं। ये दोनों ही अनुभव पापवक्ता, दुःखभोक्ता सत्य को काटने वालेऔर दुष्ट आशय वाले हैं। अर्थात् जो अनुभव तमोगुण के साथ किया गया है, वह पापपूर्ण है तथा ऐसा अनुभवी व्यक्ति पापी होता है तथा जो अनुभव रजोगुण पूर्ण है, वह दुःख का भोगने वाला है। साथ ही तमोगुणपुर अनुभव सत्य नष्ट करने वाला है और रजोगुणपुर अनुभव दुष्ट आशय पूर्ण है। तमोगुण के नष्ट होने पर स्वतन्त्र सत्यपुर दिखाई देता है।।१२९।।

त्रिगुणमिश्रिता माया भूततत्त्वप्रसाधिनी।।१३०।।

यह माया (प्रकृति) सत्त्व, रजस् और तमस् तीन गुणों से मिश्रित है। यह माया ही पृथ्वी तत्त्व का धारण करने वाली है तथा पृथ्वी में और पृथ्वी पर समस्त पदार्थों को पैदा करने वाली है।।१३०।।

त्रिमात्रा कुण्डलीयोगे वायुवेगे प्रधाविता।
क्रमे लयः पापक्षयो योनिजो योनिसंयुतः।।१३१।।

कुण्डली योग में तीन मात्रायें होती हैं, जो वायु के वेग में दौड़ती हैं। उन तीन मात्राओं में लय से पाप का नाश होता है और योनि से जन्म लेने वाला योनि से युक्त होता है। अर्थात् कुण्डली योग में जब अभेद और एकाकार रूप दो देह परस्पर लीन होते हैं, तब योनि से उत्पन्न होने वाला जीव योनि से युक्त हो जाता है।।१३१।।

षट्चक्रभेदः प्रवर्तो गुरुवर्त्मप्रदर्शितः।
पापपुण्ये सर्वशून्ये पक्षशून्ये समाश्रिते।।१३२।।
पञ्चप्रेते स्थिता बाला तारिणी पञ्चमात्रगा।
त्रिमात्रा द्विनादबिन्दुः सर्वान्ते कालिका स्थिता।।१३३।।

उस समय गुरु के द्वारा बताये गये मार्ग से प्रदर्शित षट्चक्र भेद को प्रवर्त किया जाता है, तब पाप-पुण्य सब शून्य हो जाते हैं तथा जब दोनों पक्ष शून्य हो जाते हैं, तब वह बाला पंचप्रेत में स्थित होती है, जो पाँच मात्राओं वाली होती है। उस समय तीन मात्रायें दो नाद और बिन्दु सबके अन्त में कालिका स्थित होती है।।१३२-१३३।।

विमर्श—साधना के समय साधक को योगाभ्यास में जो चक्र दिखाई देते हैं, वे भिन्न-भिन्न हैं। वे हैं—१. मूलाधार चक्र, २. स्वाधिष्ठान चक्र, ३. मणिपूरक

चक्र, ४. अनाहत चक्र, ५. विशुद्धनामक चक्र, ६. आज्ञा चक्र। ये चक्र गुरु द्वारा बताये जाते हैं तथा इनको भेदन करने की क्रिया बतायी जाती है। जब साधक इन चक्रों का भेदन कर लेता है, तब वह शून्य चक्र (सहस्रार) में पहुंच जाता है, तब उसके सब पाप-पुण्य शून्य हो जाते हैं। तब वह बाला पंचप्रेत में स्थित होती है और पांच मात्राओं बली ही पंचप्रेत है। पंचप्रेत हैं-

दहने दहति पापं प्राणेऽज्ञानं च शुध्यति।
अमृतप्लावनादात्मा शुद्धसत्त्वं भविष्यति॥१३४॥

दहन करने पर प्राण में पाप जल जाता है और अज्ञान शुद्ध हो जाता है और अमृत के आप्लावन से आत्मा शुद्ध सत्त्व हो जाता है॥१३४॥

ध्यानानन्दो ज्ञानानन्दो विषयानन्दः अच्युतः।
योगानन्दो भोगानन्दः पञ्चानन्दलक्षणम्॥१३५॥

उस समय अपने स्वरूप से न गिरे हुए अर्थात् अपने स्वरूप में स्थित उस विष्णु के ध्यानानन्द, ज्ञानानन्द, विषयानन्द, योगानन्द और भोगानन्द इन पाँच प्रकारों के आनन्दों से समायुक्त हो परम सुख को भोगता है॥१३५॥

ध्यानानन्दो नकारश्च वकारो ज्ञानरूपकः।
वकारो विषयानन्दो भोगानन्दसमायुतः॥१३६॥
योगानन्दो हकारश्च क्रमयोगो यकारकः।
सोमधारा सर्वसारा ब्रह्मरन्ध्रात् प्रसर्पति॥१३७॥

वर्णों के अनुसार ध्यानानन्द न कार (न) में स्थित है। अर्थात् 'न' ध्यानानन्द रूप है व कार ज्ञानरूपक है। अर्थात् व कार ज्ञानानन्द का प्रतीक है। तब नव शब्द बना जो वास्तव में नव ही है। तथा यह व कार ही विषयों के आनन्द और भोग के आनन्द से समाहित है। योगानन्द ह कार स्वरूप है और क्रमयोग में य कार है। इस क्रमयोग में ब्रह्मरन्ध्र से सब द्रव्यों की सार-स्वरूप सोमधारा बहती रहती है। इस प्रकार 'न व ह य' यह वर्ण रूप हुआ॥१३६-१३७॥

क्रमे गतिः पुरं प्रति पुरं त्रिपुरमच्युतम्।
अच्युतः अच्युतपुरं वरुणालयं दधतः॥१३८॥

क्रमयोग में पुर की ओर गति होती है तथा वह पुर त्रिपुर है, जो अच्युत है, भगवान् विष्णु का स्थान है, जो अपने स्वरूप से कभी भी नहीं गिरता है। वरुणालय का धारण करता हुआ वह विष्णु का निवास स्थान है॥१३८॥

इडा इक्षुं क्षरेद् बिन्दुं पिङ्गलामृतवारुणीम्।
अरुणस्तरुणो यत्र नवीनो भवति तनुः॥१३९॥

जहाँ इडा नाड़ी पिङ्गलामृतवारुणी वाले इक्षु रस को बिन्दु रूप में टपका रही है। जहाँ पर सूर्य अपनी तरुणावस्था में हैं तथा वहाँ यह शरीर नवीन हो जाता है।।१३९।।

सूर्यद्वारं सहस्रारं चैतन्यं कुलरूपिणी।
चन्द्रद्वारमन्धकारं भानुस्तनुप्रकाशकः॥१४०॥

जहाँ सहस्रार सूर्य का द्वार है। कुलरूपिणी (शक्ति) चैतन्य रूप से विद्यमान है। चन्द्रद्वार में अन्धकार है और जहाँ सूर्य शरीर को प्रकाशित करने वाले हैं।।१४०।।

जाग्रत्कुण्डलिनी व्यग्रा पथप्रज्ञा यदा भवेत्।
सुविस्तारं सहस्रारं गुरुपदप्रदर्शितम्॥१४१॥
पादुकातत्त्वसाधने गुरुसत्यं प्रकाशितम्।

जब कुण्डलिनी जाग्रत होती है, तब व्यग्र होती हुई पथ प्रज्ञा होती है। अर्थात् उस मार्ग को बताती है, जिस अत्यन्त विस्तार वाले सहस्रार मार्ग को गुरु चरणों की कृपा से बताया गया था। पादुका तत्त्व साधन में जो गुरुसत्य प्रकाशित हुआ है।।१४१।।

नाथसाध्वी दयामयी चिन्मयो प्रेमफलदा॥१४२॥
नवचक्राः कलाधाराः त्रिशून्यं पञ्चव्योमकम्।
षड्चक्राः पञ्चदेवाश्च त्रिलिङ्गं पञ्चदेवताः॥१४३॥

यह कुण्डलिनी नाथ साध्वी है, अर्थात् कुण्डलिनी जागरण नाथ द्वारा ही किया जा सकता है। यह दयामयी है। चिन्मयी अर्थात् चैतन्यशक्ति युक्त है और प्रेम के फल को देने वाली है। यह नौ चक्रों वाली है। कलाओं के आधार वाली है। तीन शून्य युक्त है, पाँच आकाशों वाली है, छः चक्र वाली है, पाँच देवों वाली, तीन लिंगों वाली है। पाँच देवियों वाली है।।१४२-१४३।।

ज्ञानदाता शिवपद्मे द्विदले सुखदः स्थितः।
प्राणपानसमायोगे फलदाता हृदम्बुजे॥१४४॥

दो दल वाले शिवपद्म में ज्ञान देने वाला, सुख देने वाला स्थित है। प्राण और अपान का समायोग वाले हृदय कमल में फलदाता स्थित है।।१४४।।

प्रेमदाता नाभिमूले भूर्भुवो भोगमोक्षदा।
कविदाता कण्ठदेशे भ्रुवोर्मूले च ध्यानदा॥१४५॥

नाभि के मूल में प्रेम को प्रदान करने वाला है। भूः और भुवः भोग और मोक्ष को देने वाली देवी है। कण्ठदेश में कवित्व शक्ति प्रदान करने वाली देवी है तथा भ्रुवोः अर्थात् भौंहों के मध्य ध्यान देने वाली देवी है। क्योंकि भौंहों के मध्य ही ध्यान एकाग्र होता है, इसीलिये भौंहों के मध्य का स्थान ध्यानद कहा गया है।।१४५।।

षट्चक्रध्यानं प्रत्यक्षं सप्तमचक्रे गुरुः सदा।
सर्वं कुण्डलिनी पिण्डं ब्रह्माण्डः कुण्डली मतः।।१४६।।

षट्चक्र ध्यान (छः चक्रों का ध्यान) प्रत्यक्ष ध्यान है तथा सप्तम चक्र में सदा गुरु विराजमान रहते हैं। समस्त कुण्डली का पिण्ड ब्रह्माण्ड है, अतः ब्रह्माण्ड ही कुण्डली माना गया है।।१४६।।

चिद्घना परिपूर्णा च तदंशे विद्याघनता।
गुणे अंशकलाध्वंसः अध्वंसो द्विविधा गतिः।।१४७।।

चित् घन (समूह) परिपूर्ण है तथा उसके अंश में विद्या का घनत्व है। अर्थात् चैतन्य समूह अर्थात् समष्टि रूप परमात्मा परिपूर्ण है। उसके अंश में विद्या की घनता अर्थात् समस्त विद्यायें स्थित हैं। गुण में अंश कला का ध्वंस होता है और अध्वंस दो प्रकार की गति है।।१४७।।

पुरुष्कारः चिदाकारो यदि प्रत्यक्षो जायते।
विशुद्धात्मनो भूत्वा विद्यातत्त्वसमन्वितः।।१४८।।
शिवतत्त्वं लभेदाशु चिद्घनपरमात्मनः।
चिद्घनः सकलब्रह्म विशुद्धात्मा प्रदर्शयेत्।।१४९।।

पुरुष्कार चिदाकार है। यदि वह प्रत्यक्ष होता है। अर्थात् विशुद्ध आत्मा वाला विद्यातत्त्व से समन्वित होकर यदि प्रत्यक्ष होता है, तो पुरुष्कार ही चिदाकार है। भाव यह है कि यदि कोई विशुद्ध आत्मा विद्या तत्त्व से समन्वित पुरुष के रूप में सामने आता है, तो उस चिद्घन अर्थात् जीव समूह अर्थात् परमात्मा का शिव तत्त्व शीघ्र प्राप्त हो जा सकता है तथा फिर जीवसमूह सकल ब्रह्म विशुद्ध आत्मा को वह दिखाये।।१४८-१४९।।

विमर्श—यह पुरुष्कार अशुद्ध है; परन्तु छन्द भंग न हो इसलिये शुद्ध मान लिया गया है।

शुद्धः सत्त्वं विशुद्धो हि हेतुवादविवर्जितः।
कामरागो भवेत्त्यागः रजस्तमःसमन्वितः।।१५०।।
मनजीवात्मनो शुद्धिः भूतशुद्धिप्रसादतः।
प्राणयोगः सगर्भश्च निगर्भात् शतगुणितः।।१५१।।

श्रद्धा भक्तिर्ध्यानं ज्ञानं मन्त्रयोगेन मिलितम्।
पञ्चयोगः पञ्चयोगः पञ्चयोग उदाहृतः॥१५२॥

वह शिवतत्त्व शुद्ध सत्त्व समन्वित है, विशुद्ध है और कारणवाद से रहित है, अर्थात् वह सबका कारण है, परन्तु उसका कारण कोई नहीं है। रजोगुण और तमोगुण समन्वित काम राग का त्याग होना चाहिये। पंच महाभूतों की शुद्धि के प्रसाद से मन और जीवात्मा की शुद्धि होनी चाहिये। सगर्भ प्राणयोग शतगुणित निगर्भ से मन्त्रयोग, श्रद्धायोग, भक्तियोग, ध्यानयोग और ज्ञानयोग ये ही पाँच योग कहे गये हैं। अर्थात् मन्त्रयोग, श्रद्धायोग, भक्तियोग, ध्यान योग और ज्ञान योग ये ही पाँच योग हैं॥१५०-१५२॥

हंसयोनिर्भवेत् काली विद्यायोनिश्च तारिणी।
हंसो माया समाख्याता सर्वमन्त्रप्रकाशिनी॥१५३॥
हकारः शिवरूपश्च सकारः सतीरूपिणी।
सा सती त्रिपुरा बाला विश्वयोनिः प्रकाशिनी॥१५४॥
जीवयोनिः कूटस्थश्च प्रकृतिः पुरुषः स ह।
हंसः शिवः सोऽहं जीवो नाहं सकारहीनतः॥१५५॥

हंसयोनि काली होती है और विद्यायोनि तारिणी है। हंस माया सब मन्त्रों का प्रकाश करने वाली कही गयी है। क्योंकि हंस में हकार शिवरूप है और सकार सतीरूप वाला है तथा वह सती त्रिपुरा बाला है, जो विश्व योनि (विश्व के उत्पत्ति स्थान) है तथा सर्वत्र प्रकाश करने वाली है और वह हकार जीवयोनि है (जीवों की उत्पत्ति का स्थान) है। वह जीवों का उत्पत्ति स्थान हकार (शिव) कूटस्थ है। अर्थात् स्वतन्त्र प्रकृति से बँधा हुआ नहीं है। इस प्रकार प्रकृति सकार है और पुरुष हकार है। इस प्रकार हंस शिव ही सोऽहं है, जीव जो अहं है, वह सकारहीन से नहीं है अर्थात् हंस का अर्थ शिव और सती रूप है या यों कहिये कि पुरुष और प्रकृति रूप है। जीवित शरीर है, हंस रूप है तथा जब सोऽहं अर्थात् 'वह मैं हूँ' की स्थिति होती है, उस समय जीव सकार हीन अर्थात् प्रकृति से रहित नहीं होता है। प्रकृति अर्थात् इस शरीर के बिना 'सोऽहम्' ऐसी स्थिति कदापि सम्भव नहीं है॥१५३-१५५॥

स्मरहरो भवेत् पुरं भुवनं सर्वमिलितम्।
तथैव सकारयोगे इन्दुरन्ते प्रकाशितः॥१५६॥

कामदेव के विजेता भगवान् शिव का पुर सर्वमिलित भुवन है, अर्थात् यह

संसार है। उसी प्रकार स कार के योग में वह भुवन अन्त तक चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित है। अर्थात् स कार सती (प्रकृति) योग से ही यह संसार चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित है।।१५६।।

पराप्रसादमन्त्रश्च हहीने त्रिपुरामनुः।
मनुः सूक्ष्मः ज्योतिरक्षः प्रत्यक्षा चित्कुलेश्वरी।।१५७।।

ह अर्थात् शिव के हीन होने पर पराशक्ति को प्रसन्न करने वाला मन्त्र त्रिपुरा मनु है। मनु सूक्ष्म है, ज्योति उसकी आँख है तथा चित् कुलेश्वरी उस मनुष्य में प्रत्यक्ष है।।१५७।।

त्रिगुणा सृष्टिस्त्रिमात्रा शवः शक्तिविवर्जितः।
शिवशक्ती यदा सूक्ष्मौ नादबिन्दू प्रकाशितौ।।१५८।।

यह सृष्टि सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों वाली है तथा तीन मात्राओं वाली है। इसे ही शक्ति कहा गया है। शक्ति के अभाव में शिव शव अर्थात् मृत शरीर (मुर्दा) हैं। शिव और शक्ति दोनों सूक्ष्म रूप होते हैं, तब वे नाद और बिन्दु के रूप में प्रकाशित होते हैं।।१५८।।

विमर्श–नाद–प्रणव की १२ कलाओं में बिन्दु और नाद की स्थित है। आगम और तन्त्रासार की विभिन्न शाखाओं में नाद और बिन्दु की अपनी अलग–अलग व्याख्यायें हैं। सबने अपने–अपने तरह से नाद की व्याख्या की है। नादकारिका में नाद को मालिनी महामाया समना अनाहत बिन्दु अघोष वाणी और ब्रह्म कुण्डलिनी बताया है। प्राणवायु के द्वारा निकाली गयी ध्वनि को भी नाद कहा जाता है। हकारस्तु स्मृतः प्राणः स्वप्रवृत्तो हलाकृतिः स्वच्छन्द तंत्र (४.२५७) के इस कथन के अनुसार स्वाभाविक रूप लगातार हलाकृति प्राण को ही हकार कहा गया है। यही हंसोच्चार कहलाता है। इसी का अनाहत ध्वनि अथवा नादभट्टारक भी कहा गया है। यह नादभट्टारक शब्द ब्रह्म का ही प्रतीक है। यह दश प्रकार का होता है। तंत्रालोक (५.५९) में दश प्रकार का राव नाद बताया गया है। स्वच्छन्द तंत्र के ११.१७ में महाशब्द के नाम से नवम नाद भी माना गया है। दस प्रकार के नाद में धारणा ध्यान और समाधि का अभ्यास करने पर शब्दब्रह्म के स्वरूप को समझ लेता है, वह जान लेता है कि शब्द ब्रह्म से ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार प्रकार की वाणियों का विकास होता है।

यह नाद तत्त्व परा और पश्यन्ती के क्रम से विकसित होता हुआ मध्यमा में आकर योगाभ्यास द्वारा श्रवणेन्द्रिय के अन्तर्मुख होने पर सुनाई पड़ता है। जब

यह अन्तर्मुखता की ओर बढ़ता है, तब इसका सूक्ष्म सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम अभ्यास करते–करते और फिर अन्वेषण करके योगी इसके रहस्य को भली–भाँति जान लेता है और फिर वह निष्णात हो जाता है। शब्दब्रह्म के स्वरूप को अच्छी तरह जान लेने पर साधक अनायास परं ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् लगात्तान नदन करती हुई अनाहत ध्वनि में चित्त को एकाग्र कर लेने पर योगी का परमाकाशस्वरूप चिदाकाशमय और प्रकाशात्मक स्वरूप प्रकट हो जाता है।

नाद बिन्दु का प्रथम परिमाण है। बिन्दु इच्छा शक्ति है, जो प्रकाश प्रधान है। नाद उसी का विमर्श प्रधान स्वरूप है। सदाशिव दशा नाद का बाहरी स्फोट है। चित्तवृत्ति के ज्ञान में भी नाद व्याप्त है; क्योंकि वहाँ भी वस्तु विमर्शन होता है। शुद्ध विमर्श नाद का सूक्ष्मतर स्वरूप है इसका आकार "अहम्" है। बुद्धि का व्यापार यह नाद विषयोन्मुख विमर्श है तथा सदाशिव को बताने वाला है शैवस्यिन्त में ज्ञान आत्मा के साथ मिला हुआ रहने पर भी यह नाद की उपाधि है आत्मा अनन्त है, तो नाद भी अनन्त है। सभी प्रकार के ज्ञान बुद्धि में आकर नाद के रूप में व्यवहार्य है। कथन क़ा आशय है कि ज्ञान शक्ति की अतिसूक्ष्म स्थिति ही नादवृत्ति है। सविकल्पक ज्ञान में यह मायावृत्ति के साथ सम्बद्ध रहती है। ज्ञान को यदि बुद्धि का व्यापार माल लें तो शुद्ध भुवनों में स्थित अनन्तादि में सविकल्पकज्ञान नहीं हो सकता; क्योंकि माया के ऊपर बुद्धि तत्त्व का कोई प्रभाव नहीं होता। इसीलिये नादतत्त्व को स्वीकारना ही पड़ेगा। बुद्धि से निश्चय किया हुआ ज्ञान किसी इन्द्रिय से ही ग्राह्य होगा। इसी प्रकार अन्दरूनी विचार से किसी विषय का निश्चय होता है तथा अन्तः बिन्दु रूप आन्तरिक सम्यक् कथन का कारण नाद है। वह नाद आन्तरिक सम्यक् कथन को उत्पन्न करता है। इसी नाद के कारण बुद्धि बाह्य विषय के प्रतिबिम्ब का निश्चय करती है। बाहर प्रकट होने वला शब्द आन्तरिक सम्यक् कथन का बाहरी आकार वास्तव में नाद को बुद्धि के सामने रखता है। बुद्धि द्वारा निश्चय किया हुआ विषय प्रकट वर्णों द्वारा प्रकट होता है। अतः नाद शक्तितत्त्व का नामान्तर है। इसीलिये इसे शैवसिद्धान्त में द्वितीय तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है।

बिन्दु—सत्त्वगुण की वह अवस्था ही बिन्दु है, जिसे वैष्णव विशुद्ध सत्त्व तथा व्यास प्रकृष्ट सत्त्व कहते हैं। यह तमोगुण और रजोगुण से सदा के लिये विमक्त अवस्था है। तान्त्रिक गण इसे बिन्दु कहते हैं।

शैवसिद्धान्त में छत्तीस तत्त्वों के अन्तर्गत बिन्दु को पहला स्थान दिया गया है। रत्नत्रय श्लोक ७१ में इसे शिव कहा गया है। शक्ति सदाशिव, ईश्वर तथा

शुद्ध विद्या इन चार शुद्ध तत्त्वों के शरीर बिन्दु तत्त्व से ही बने हैं। अर्थात् इनका शरीर बैनदव कहा जाता है। तत्त्व प्रकाश (पृ. २७) के अनुसार बिन्दु को ही परनाद कुण्डलिनी ब्रह्म आदि कहा गया है। भुवनेश्वरों की आराधना करने पर तथा दीक्षित साधकों की अपनी ज्ञान और क्रियाशक्ति से यह प्रकट होता है। यह परमात्म की शक्ति है। हवा से जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठती हैं, उसी प्रकार बिन्दु में लहरें उठती हैं। नाद और ज्योति ही इसकी लहरें हैं। मंत्रों मंत्रेश्वर और मंत्रमहेश्वरों का शरीर बैन्दव होता है। बिन्दु का अगला रूप परबिन्दु है। परमकारण व्योमाकार शिवतत्त्व में सभी शब्दों वाफ़ कारण अतिसूक्ष्म नाद अप्रकटरूप में विद्यमान है। इसी को परबिन्दु कहा जाता है। शक्ति तत्त्व के आविर्भूत काल में सभी शब्द समुदाय के केन्द्र में स्थित स्फोट रूपी तत्त्व यही है। आगम और तन्त्र के महान् आचार्य भास्करराय के अनुसार प्रलयावस्था में ब्रह्म घनीभूत दशा में अविस्थत रहता है। उस समय आगे की सृष्टि की प्रत्याशा में माया शक्ति भी प्रसुप्तावस्था में रहती है। समयानुसार जब ब्रह्म में सृष्टि की विशेष इच्छा होती है, उस समय माया शक्ति जग जाती है, जिसे अव्यक्त प्रकृति कहा जाता है; क्योंकि इस दशा में यद्यपि कर्मों का परिपाक हो जाता है और उसकी शक्ति भी जग जाती है; किन्तु वह अभी अप्रकट ही रहती है। इसी को कारण बिन्दु कहा जाता है; क्योंकि यह सृष्टि रूपी वृक्ष का बीज है। जैसे कन्द से अंकुर फूट कर ऊपर आता है, उसी तरह इस कारण बिन्दु के विकास से आगे की सृष्टि चलती है। प्रपञ्चसार (१.४१) के अनुसार यह बिन्दु शब्द कारण बिन्दु का बोधक है।

कारण बिन्दु से कार्य बिन्दु नाद और बीज की उत्पत्ति होती है, जो पदार्थों पर, सूक्ष्म और स्थूल दशा के प्रतीक है। ये क्रमशः चित्स्वरूप (केवल चैतन्य रूप) चिद् अचिद् मिला हुआ रूप और फिर अचित् स्वरूप (साकार) होते हैं। ये ही कारण बिन्दु आदिकालीन चार तत्त्व अधिदैवत् अवस्था में अव्यक्त, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् के रूप में शान्ता, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री शक्ति के रूप में तथा अम्बिका, इच्छा ज्ञान, क्रिया शक्ति के रूप में विकसित होते हैं। अधिभूत अवस्था में से कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर, ओड्याण पीठ के रूप में होते हैं तथा अध्यात्म पक्ष में कारण, बिन्दु, शक्ति, पिण्ड, कुण्डली जैसे शब्दों से पुकारे जाते हैं। जो मूलाधार में स्थित होते हैं।

योगे योगे अनुरागे शिवशक्ती प्रकाशितौ।
सकारयुक्तो नादेन उकारो मन्त्रभूषितः॥१५९॥

नादो व्यक्तो वकारश्च मन्त्रो महाकाशे स्थितः।
भुवनयुगलरूपकामिनी त्रिपुरे स्थिता॥१६०॥
कामकला पूर्णकला मिलितो र अयोनिजः।
वकारो नादरूपश्च वकारः अबलालये॥१६१॥

योग से योग होता है और अनुराग (प्रेम) हो जाता है। और फिर शिव और शक्ति दोनों प्रकाशित हो जाते हैं। नाद से सकार युक्त उकार मन्त्र से भूषित है। नाद व्यक्त है और वह व कार है, जो महाकाश में स्थित है। भुवनयुगल रूप कामिनी त्रिपुर में स्थित है। कामकला पूर्ण कला से मिला हुआ र कार अयोनिज है। वह योनि से पैदा होने वाला नहीं है। व कार नाद रूप है। व कार ही नारी के गृह में स्थित है॥१५९-१६१॥

पुरमध्ये स्थितः कालः शून्यं हंसस्य वाचकम्।
सकारशक्तियोगेन हंसो मायाप्रकाशितः॥१६२॥

पुर के मध्य में काल स्थित है, जो शून्य रूप है और जो हंस अर्थात् शिव और शक्ति का वाचक है। सकार (शक्ति) के योग से ही हंस माया से प्रकाशित है॥१६२॥

शिवो हंसो भवेज्जीवः सोऽहं सगुणमिश्रितः।
त्रिमात्रा ब्रह्मबीजञ्च वर्णव्यञ्जनहीनतः॥१६३॥

शिव ही हंस है, जिसे जीव कहा जाता है। और सोऽहं सगुण मिश्रित है और सोऽहं में जीव और प्रकृति दोनों का योग है। सः वह जीवरूप परमात्मा और 'अहम्' मैं रूप जीवात्मा है। ब्रह्मबीज तीन मात्राओं वाला है, जो व्यञ्जनवर्णहीन है॥१६३॥

विमर्श—यहाँ सोऽहम् का अर्थ होना चाहिये सः वह आत्मा (चेतन तत्त्व) अहम् 'मैं' (सशरीर जीवात्मा) जो कि सगुण है।

यतीशः परममन्त्रो युवतीशविवर्जितः।
सकला सकला सिद्धिः पञ्चमात्रा उपाङ्गतः॥१६४॥

यतीश परम मन्त्र है, जो युवतीश से रहित है। कलायुक्ता सकल सिद्धि है। पंच मात्राएँ उपाङ्ग से हैं॥१६४॥

गुरुपादे गुरुबीजं कामबीजं हृदम्बुजे।
स्त्रीबीजं शक्तिबीजञ्च द्विदलपतिमस्तके॥१६५॥

गुरु के चरणों में गुरुबीज है और कामबीज हृदय कमल में स्थित है। स्त्रीबीज शक्तिबीज है, जो द्विदल पति के मस्तक में स्थित है।।१६५।।

सहचरी सहचरी सहचरी समायुतम्।
सुषुम्नावर्त्म प्रवर्तं त्रिशून्यं द्विः प्रकाशितम्।।१६६।।
ब्रह्मरन्ध्रं ब्रह्मवक्त्रं ब्रह्ममार्गसमावृतम्।
पद्मरूढः क्रमे पूज्यः षट्चक्रदेवी देवता।।१६७।।

सहचरी सहचरी और सहचरी अर्थात् तीन सहचरी से युक्त सुषुम्ना के मार्ग से प्रवृत्त तीन शून्य और दो प्रकाशित हैं। ब्रह्मरन्ध्र, ब्रह्मवक्त्र, और ब्रह्ममार्ग से समावृत पद्मरूढ़ क्रम से षट्चक्र देवी और देवता पूज्य हैं।।१६७।।

करुणा कामकला काली तरुणा तारा तारिणी।
लावण्यसुन्दरी पूज्या कामबीजेन तर्पिता।।१६८।।

कामबीज से अर्पित करुणा, कामकला, काली, तरुणा, तारा, तारिणी और लावण्यसुन्दरी पूज्य हैं।।१६८।।

द्विदलोर्ध्वे आदिनाथो निःशब्दः शब्दभाषितः।
दलगतो महाब्रह्मा महाविष्णुसमन्वितः।।१६९।।

दो दल के ऊर्ध्व भाग में आदिनाथ बिल्कुल शब्द रहित (शान्त) शब्द से भाषित हैं, और वहाँ दलगत ब्रह्मा महाविष्णु समन्वित होकर स्थित हैं।।१६९।।

कामचारो बीजसारो महाकालसमावृतः।
नादशक्तिलयस्थानं तमालयगतो रविः।।१७०।।

कामाचार और बीज के सार महाकाल से समावृत नादशक्तिलय स्थान रवि अंधकार के गृह में गये हुए सूर्य हैं।।१७०।।

बिन्दुरिन्दुः सिन्धुचरो ह्यन्धकारप्रकाशितः।
सृष्टिबीजं बीजबीजं मुक्तिबीजं सदाशिवः।।१७१।।

बिन्दु चन्द्रमा है, जो समुद्र में विचरण करने वाला है और जो अन्धकार में प्रकाशित है। तथा सदाशिव सृष्टि के कारण हैं। बीजों के बीज (कारणों के कारण) हैं और वे ही मुक्ति के भी कारण हैं।।१७१।।

अखण्डमण्डलं सूर्यः खण्डवह्निस्तदंशकः।
सप्तस्वर्गसप्तमर्तसप्तपातालव्यापितः ।।१७२।।

वहाँ अखण्डमण्डल (ऐसा मण्डल जो कभी न टूट सके) ऐसे भगवान् सूर्य हैं, जो कि खण्डवह्नि है, अर्थात् जिसमें टूट कर (विस्फोट हो हो कर आग

जल रही है) उसी का अंश यह अग्नि है। जो सूर्य सात स्वर्गों, सात मर्त्य लोकों और सात पातालों में व्यापित हैं।।१७२।।

विमर्श–सूर्य में लगातार विस्फोट होने का ज्ञान बहुत पहले ही हो चुका था। अतः यह वैज्ञानिक अनुसन्धान का प्रथम रूप है।

सप्तसमुद्र आख्यातो लवणाम्बुधिसंयुतः।
पूर्णशैलः कुलाचलः सप्तव्यक्तः प्रभाषितः।।१७३।।

लवण समुद्र से युक्त सात समुद्र कहे गये हैं। पूर्ण शैल कुल नाम का शैल है, जो शैल भी सात बताये गये हैं।।१७३।।

मेदिनी मेदाङ्गजाता रसो ज्योतिः क्रमोद्भूतः।
अनिलो लीनः सर्वत्र कन्दर्पदर्पदर्पितः।।१७४।।

मेदिनी (पृथ्वी) मेद के अंग से उत्पन्न हुई है। रस और ज्योति क्रम से उद्भूत है। और उस मेदिनी में कामदेव के क्रोध से क्रुद्ध वायु सर्वत्र लीन छिपा हुआ है।।१७४।।

महाशून्ये दिवि चक्रः खगो हंसः स्वरूपतः।
सुपथः कुपथः पथः सुपथः तत्त्वविद्गतः।।१७५।।
मनुमन्त्रसुरथेन सुपथविधिनिर्मितः।
प्रवर्तः सुषुम्नावर्त्मसाधनं चित्रिणीपथः।।१७६।।

महाशून्य स्वर्ग में आकाश में विचरण करने वाला चक्र स्वरूप से हंस अर्थात् शिवशक्ति विराजमान हैं, जो सुन्दर मार्ग है, कुपथ है, पथ सुपथ है तथा तत्त्व को जानने वालों से युक्त है। जो मनु के मन्त्र सुरथ द्वारा सुपथपथ निर्मित है। तथा सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग रूपी साधन वाला है तथा वह चित्रणी पथ है।।१७५-१७६।।

ब्रह्मनाडी सिद्धपुरी योगेश्वरीप्रचोदिता।
शिवसन्दर्शनोत्साही कुण्डली सह संगता।।१७७।।

ब्रह्मनाड़ी सिद्धपुरी है, जो योगेश्वरी से प्रेरित है, जो योगेश्वरी शिव के सम्यक् दर्शन के प्रति उत्साह वाली है और कुण्डली से युक्त है।।१७७।।

स्वयं वामा कामकला विभावकल्पभावतः।
ऐक्यलक्षविभावेन स्वभावः स्वभावे स्थितः।।१७८।।

वहाँ विभाव कल्प भाव से स्वयं वामा देवी कामकला हैं। वहाँ एकता लक्ष के विभाव से स्वभाव (अपना भाव) स्वभावे (अपने भाव) में स्थित हैं।।१७८।।

स्थूलाकारे चिदाकारः शिवशक्तिप्रदर्शकः।
चिद्घनविग्रहध्यानं स्थूलरूपे प्रकाशितम्।।१७९।।

वहाँ चिदाकार (आत्मा के आकार वाला) जीव स्थूल आकार में है, जो शिव और शक्ति का प्रदर्शक है। वह चिद्घन (समष्टि रूप परमात्मा के शरीर) का ध्यान स्थूल रूप में प्रकाशित है।।१७९।।

दर्पणो मुखसापेक्षोऽक्षिदर्शनकारणम्।
न सूक्ष्मादक्षहीनेन लक्ष्यालक्ष्यदर्शनम्।।१८०।।

दर्पण मुख का सापेक्ष है, अर्थात् दर्पण और मुख तो दोनों एक दूसरे की अपेक्षा रखने वाले हैं तथा आँख ही देखने का कारण है। आँख में देखने वाला जो अक्ष है, वह बहुत सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म पुतली के बिना लक्ष्य अलक्ष्य का दर्शन नहीं होता।।१८०।।

समनेन विना किञ्चित् निर्मलं दर्शनं भवेत्।
साधने समनदेहो भावदेहः सुनिर्मलः।।१८१।।
सुनिर्मलः समोज्ज्वलः सिद्धे एकमहेश्वरः।
दर्शनजन्यं चक्षुर्हि स्थूलसूक्ष्मचिदात्मकम्।।१८२।।

समाान होने के बिना कभी भी निर्मल दर्शन होना चाहिये। साधन में समन देह और भाव देह सुनिर्मल होना चाहिये। सुनिर्मल ही समुज्ज्वल है तथा सिद्ध हो जाने पर एक महेश्वर ही है तथा दर्शन कराने वाली आँखें हैं, जो आँखें स्थूल और सूक्ष्म आत्मस्वरूप हैं। (श्लोक में कापि शब्द अशुद्ध है अतः किञ्चित् किया गया है।।१८१-१८२।।

आधिभौती आधिदैवी आध्यात्मिकसमायुतः।
दर्शनं दर्पणं चक्षुः सुचक्षुर्ज्ञाननिर्मित्।।१८३।।
सुचारुरूपं ध्येयञ्च सर्वावयवमिलितम्।
स्थूलजाग्रत् चक्षुश्च सूक्ष्मः स्वप्नप्रदर्शकः।।१८४।।

वह देवी प्रकृति आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के दुःखों वाली है। दर्शन दर्पण चक्षु हैं। सुन्दर चक्षु ज्ञान से निर्मित हैं। सुचारु रूप से ध्यान करने योग्य सब प्रकार के अवयवों से मिली हुई स्थूल, जाग्रत् और चक्षु सूक्ष्म स्वप्न को दिखाने वाले हैं।।१८३-१८४।।

मनश्चक्षुस्त्रिगुणश्च सदसत्संप्रदर्शकः।
जीवाकारो निराकारो मन आकारवर्जितः।।१८५।।

मन, चक्षु और तीन गुण (सत्त्व, रजस् और तमस्) सत् और असत् को सम्यक् प्रकार से दिखाने वाले हैं। वह निराकार ब्रह्म जीव के आकार वाला है तथा मन भी आकार से रहित है।।१८५।।

कारणं प्रकृतिः सूक्ष्मा निराकारा निरञ्जना।
भावलक्षस्त्रिधा पक्षः स्थूलसूक्ष्मचिदात्मकः।।१८६।।

इस स्थूल शरीर का कारण प्रकृति है, जो सूक्ष्म बिना आकार वाली तथा निरंजन (निष्कलंक) उनका भाव तीन प्रकार के पक्ष वाला है। वे हैं स्थूल, सूक्ष्म और जीवात्मा स्वरूप।।१८६।।

आत्मा सूक्ष्मो न चेल्लक्षः कूटस्थो जीवशब्दितः।
स्थूलो घनः सकलश्च चिद्घनो विराटादिकः।।१८७।।

आत्मा अत्यन्त ही सूक्ष्म है। वह कभी भी दिखाई नहीं देता है। यह आत्मा कूटस्थ है, अर्थात् किसी से बँधा हुआ नहीं है। वह स्वतन्त्र है तथा इस आत्मा को जीव शब्द से पुकारा जाता है। घन अर्थात् अविभाज्य है। उसके टुकड़े नहीं किये जा सकते। वही समस्त कलाओं वाला है। चिद्घन अर्थात् चेतनता समूह (समष्टि रूप ब्रह्म) से युक्त है तथा वही विराट् आदि कहा जाता है।।१८७।।

सम्राट् च सकलं ब्रह्म विराट् अंशकल्पितः।
सर्वव्यापी निराकारो ब्रह्मब्रह्मादिखण्डकः।।१८८।।
समष्टिव्यष्टिरूपेण घटः खण्डः चराचरः।

वह ही सम्राट् है और कलाओं से युक्त ब्रह्म है तथा वही समष्टि ब्रह्म परमात्मा का अंश रूप है। वह सर्वत्र व्याप्त रहने वाला, निराकार और ब्रह्म और ब्रह्म आदि अनेकों नामों वाला है। वह समष्टि और व्यष्टि रूप से घट रूप और खण्ड रूप है। समष्टि का अर्थ है आत्माओं का पुंज अर्थात् परमात्मा तथा व्यष्टि है एक जीव, जो प्रत्येक शरीर में विद्यमान है, अतः परमात्मा घट रूप है तथा जीवात्मा सशरीर उसका खण्ड रूप है।।१८८।।

कुण्डली त्रिविधा नित्या जाग्रता सुप्ता स्वप्निता।।१८९।।
जाग्रता त्रिविधा भद्रा चिन्मया सत्यरूपिणी।

कुण्डली नित्य और तीन प्रकार की होती है। जाग्रता, सुप्ता और स्वप्निता। जाग्रता तीन प्रकार की होती है। भद्रा, चिन्मया और सत्यरूपिणी।।१८९।।

ज्ञानशक्तिस्त्रिविधा च लिङ्गः अङ्गः चिदङ्गकः।।१९०।।
स्वप्नवत् पश्यति लिङ्गे अङ्गे जाग्रज्जायते।

ज्ञानशक्ति तीन प्रकार की होती है—लिङ्ग, अङ्ग और चिदङ्गक।

लिङ्ग ज्ञानशक्ति में स्वप्न के समान देखता है और अङ्ग में ज्ञानशक्ति जाग्रत् हो जाती है॥१९०॥

चिदङ्गः सकलं ब्रह्म पुंस्त्रीरूपे प्रकाशितः॥१९१॥
निष्कलः सकलं ब्रह्म पुंस्त्रीरूपे प्रकाशितः।
निष्कलः परमं ब्रह्म अन्तरात्मा अगोचरः॥१९२॥

चिदङ्ग (चैतन्य अंग वाला) समस्त कलाओं वाला ब्रह्म है। वह पुल्लिंग और स्त्री लिङ्ग रूप में प्रकाशित है। अर्थात् संसार में स्त्री और पुरुष रूप में जितने भी प्राणी हैं, वे सब चिदङ्ग अर्थात् चैतन्य शरीर वाले हैं। तथा निष्कल और सकल ब्रह्म भी पुरुष और स्त्री रूप में प्रकाशित है अर्थात् वे स्त्री और पुरुष दोनों में ही समाये हुए हैं। निष्कल अर्थात् कलाओं से रहित परम ब्रह्म है, जो प्रत्येक प्राणी की आत्मा के अन्तर्गत स्थित है और जिसे किसी भी इन्द्रिय से जाना नहीं जा सकता॥१९१-१९२॥

सकलः परिपूर्णश्च कल्पितरूप अंशकः।
कल्पितरूपं बहुधा सत्यं कल्पितमव्ययम्॥१९३॥

कलाओं से युक्त ब्रह्म परिपूर्ण है। उसका कल्पित रूप उसका अंश भी है, अर्थात् जीव के द्वारा उस परम ब्रह्म की कल्पना की जा सकती है। कल्पित रूप जो जीव है, वे अनेकों प्रकार के हैं तथा इस जीव के स्वरूप द्वारा उसके स्वरूप की जो कल्पना की जाती है, वह समष्टि रूप परमात्मा सत्य है, अर्थात् सदा रहने वाला है और कभी कम या अधिक होने वाला नहीं है, वह अव्यय है। उसमें से कितने ही जीव निकल कर पैदा हो जायें, परन्तु उसमें कमी नहीं आती है॥१९३॥

पुंमन्त्रो रथमारुह्य चक्रवायुज्योतिर्मयम्।
महाशून्ये प्रगच्छन्ति भावशक्तिसमाश्रितः॥१९४॥

चक्रवायु ज्योतिर्मय पुं मन्त्र रथ पर आरूढ़ होकर भावशक्ति से समाश्रित होकर महाशून्य में चला जाता है॥१९४॥

स्त्री आचारो वामाचारो वामापि द्विविधा स्मृता।
दक्षिणो द्विविधाचारो विविधार्थप्रवाचकः॥१९५॥

स्त्री आचार ही वामाचार है। वामा भी दो प्रकार की मानी गयी है। कलात्मक और भुवनात्मक, अर्थात् चर और अचर समस्त प्रपंच की सृष्टि करने वाली शिव की शक्ति वामा भी दो प्रकार की कही गयी है। दक्षिण आचार भी दो

प्रकार के आचार वाला है तथा वह अनेकों प्रकार के अर्थों को बताने वाला है॥१९५॥

तान्त्रिकी वैदिकी मिश्रा इति मे त्रिविधं मतम्।
वैदिकी दक्षिणाचारः पश्चाचारः प्रमाणितः॥१९६॥

पूजा तीन प्रकार की कही गयी है—१. तांत्रिकी, २. वैदिकी, ३. मिश्रा। वैदिक पूजा दक्षिणाचार है तथा पश्चाचार प्रमाणित है॥१९६॥

विभावो दक्षिणाचारो विभावः पशुमिश्रितः।
दिवाकृत्यो ब्रह्मचर्यो रात्र्यां कूलः प्रपूजितः॥१९७॥

विभाव भी दक्षिणाचार है तथा विभाव पशुमिश्रित है। दिन का कृत्य ब्रह्मचर्य और रात्रि में कूल प्रपूजित है॥१९७॥

दक्षार्थः पुरुषवाच्यो वामे वामा प्रतिष्ठिता।
पुंसाचारो वीराचार आगमार्थः प्रचारितः॥१९८॥

दक्षार्थ पुरुष वाच्य है, अर्थात् दायें भाग में पुरुष होना चाहिये। वांम भाग वामा (स्त्री) प्रतिष्ठित है। पुंसाचार और वीराचार आगम के अर्थ में प्रचारित है॥१९८॥

सकला चित्कला काली स्त्रीरूपा श्रीकुलेश्वरी।
श्यामापुरे वामारूपे गमने सेवने क्षमा॥१९९॥
पुंरूपं विरूपं सर्वं सतीपुरे पतिं विना।

समस्त कलाओं वाली और चेतन कला युक्त काली स्त्री रूपा है और कुलेश्वरी वही श्यामापुर में वामा रूप में गमन और सेवन में समर्थ हैं। वे सतीपुर में पुरुष रूप और विरूप पति के बिना गमन और सेवन में समर्थ हैं॥१९९॥

किमाश्चर्यमनिवार्या द्वारप्रवेशमात्रतः॥२००॥
क्षरन्ति भवन्ति क्षिप्रा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
शान्तमन्तं दाससुतौ भाविनां भक्तिसाधने॥२०१॥
दर्शनं भवति सत्यं अन्तरे स्वनिकेतने।
कल्पान्ते सृष्टिरादौ च दर्शनार्थं शिवादयः॥२०२॥
दृष्टिमात्रमाकर्षितास्ते देवाः कुलवर्जिताः।
देवत्रयः सिद्धमयः तनयभावे करणे॥२०३॥
इच्छामये अचिरात्ते भावलाभः सशक्तिदः।
सहकारी कर्तृनारी द्वारी कर्ता अगणितः॥२०४॥

क्या आश्चर्य है कि द्वार में प्रवेश मात्र से ही ब्रह्मा, विष्णु और सदाशिव शीघ्र द्रवित होते हैं तथा शान्तमन दाससुति भक्ति के साधन में अपने घर के ही अन्तर्गत सत्य दर्शन होता है तथा कल्प के अन्त में सृष्टि के आदि में शिव आदि दर्शन के लिये आते हैं और उनका दर्शन होता है और कुलवर्जित देवता दृष्टिमात्र आकर्षित होते हैं। परन्तु वे तीनों देवता तनयभावकरण में ही आकर्षित होते हैं और फिर वे शीघ्र ही शक्ति देते हैं और जो इच्छा होती है, उसे पूर्ण करते हैं। कर्ता (साधक) और उसकी सहकारी नारी सब लाभ पाते हैं।।२००-२०४।।

पुंभावः अलाभभावो लाभभावो वामा गतिः।
पराभक्तिप्रसादेन मातृभावे प्रपश्यति।।२०५।।
यामिनी कामिनीवर्ज्या पूज्या सर्वत्र पूजिता।
स्त्रीभावः कल्पनाभावः कल्पान्तरे सुसिद्ध्यति।।२०६।।

पुंभाव अलाभ भाव, लाभ भाव, वामागति है। पराभक्ति के प्रसाद से मातृभाव में देखता है। कामिनी से रहित यामिनी पूज्य होती है। वह सर्वत्र पूजिता है। स्त्रीभाव कल्पनाभाव है और वह कल्पान्तर में अच्छी प्रकार सिद्ध होता है।।२०५-२०६।।

सहस्त्रारो ब्रह्मद्वारो द्विप्रकारा भवेद्गतिः।
सूक्ष्मपथो मोक्षपथो महापथमहारतिः।।२०७।।
पथः सुषुम्नामार्गश्च त्रिवेणी द्विविधा स्मृता।
मूलकूले लभेत् स्थूलं सकलपरदेवता।।२०८।।

सहस्त्रार और ब्रह्मद्वार दो प्रकार की गति होती है।

सूक्ष्मपथ, मोक्षपथ, महापथ और महारति ये पथ हैं। सुषुम्ना का मार्ग भी एक पथ है। त्रिवेणी दो प्रकार की कही गयी है। मूलकूल में सकल परदेवता स्थूल प्राप्त होते हैं।।२०७-२०८।।

गङ्गाधरशिरे गङ्गा गङ्गा त्रिपथगामिनी।
विष्णुपादोद्भवा गङ्गा विष्णुशयनं निर्जने।।२०९।।

जब साधक सुषुम्ना नाड़ी द्वारा सहस्त्रार में प्रवेश करता है, तो वहाँ देखता है कि गंगा को धारण करने वाले शंकर के शिर में त्रिपथगामिनी अर्थात् स्वर्ग, नरक और पाताल में गमन करने वाली गंगा स्थित है। वह गंगा विष्णु के पैरों से उत्पन्न हुई है। वह निर्जन स्थान में है, उसी में विष्णु शयन करते हैं।।२०९।।

गङ्गागमे पूतो विष्णुर्भानुकन्यासमावृतः।
सरस्वती महाज्योतिश्चन्द्रसूर्याग्निवाहिका।।२१०।।

वहाँ गंगा के आगमन पर पवित्र विष्णु भानुकन्या से समावृत (घिरे हुए) हैं। सरस्वती महाज्योति स्वरूप है। वह चन्द्र, सूर्य और अग्नि को वहन करने वाली है॥२१०॥

वृन्दावने घनश्यामस्त्रिवेणी वेणीवेष्टिता।
द्विदलोर्ध्वे महासिद्धे शुक्लध्वजरथे गतिः॥२११॥
महाकालश्चिरकालं पूर्वमुखे सदा स्थितः।
रथः पश्चिमसम्मुखश्चलाचलौ विपरीतौ॥२१२॥

वृन्दावन में घनश्याम त्रिवेणी की वेणी से वेष्टित हैं। महाकाल चिरकाल तक पूर्व मुख में सदा स्थित हैं। रथ पश्चिम सम्मुख चल और अचल विपरीत दिशा में है॥२११॥

कमण्डलुधरो ब्रह्मा स्थिरा गङ्गा कमण्डलौ।
श्रीकान्तः शान्तभावेन एकान्ते जलशायिने॥२१३॥

वहाँ ब्रह्मा कमण्डलु धारण करने वाले हैं और फिर वह गंगा विष्णुपद से निकल कर ब्रह्मा के कमण्डलु में स्थिर हो गयी। श्रीकान्त भगवान् विष्णु शान्त भाव से एकान्त जलशय्या पर सोये हुए हैं॥२१३॥

पूजने अपवर्गश्च स्नाने पूतः सदा शुचिः।
मार्जने परमः स्वर्गः पाने मृत्युः प्रणश्यति॥२१४॥

वहाँ उनके पूजन में मोक्ष है। स्नान करने में सदा पवित्रता होती है तथा गंगा के जल में मार्जन करने पर परम स्वर्ग की प्राप्ति होती है और पान करने पर मृत्यु नष्ट हो जाती है॥२१४॥

विष्णुनिकेतने ब्रह्मा चरणोद्भूतसम्भवा।
यमुना मिलिता गङ्गा शशधरधरशिरे॥२१५॥

वहाँ विष्णु के घर में ब्रह्मा हैं तथा विष्णु के चरण से निकली हुई ब्रह्मा के कमण्डलु से निकली, यमुना से मिली हुई गंगा शिर में चन्द्रमा को धारण करने वाले शिव के शिर पर स्थिर हो गयीं॥२१५॥

सरस्वती सृष्टिपतिमिलिता च कमण्डलौ।
सूर्यतीर्थो नादचक्रे नादो ह्यरुणकन्यका॥२१६॥
चक्रतीर्थो भवेद्गङ्गा सरस्वतीसरोवरे।
सरस्वती वह्नितीर्थो नित्या अन्तरबहिरे॥२१७॥

सरस्वती सृष्टि के स्वामी ब्रह्मा को कमण्डलु में प्राप्त हुई। नादचक्र में

सूर्यतीर्थ है और नाद तथा सूर्य कन्या है। सरस्वती सरोवर में गंगा चक्रतीर्थ है। सरस्वती वह्नितीर्थ है तथा यह अन्दर और बाहर नित्य है।।२१६-२१७।।

यदा वृष्टिस्तदा सृष्टिः परमेष्टिसहकारे।
श्रीपतिः स्थितिः रतिश्च रुद्रः प्रलयरूपिणः।।२१८।।

जब वर्षा होती है, तभी सृष्टि हो सकती है। परमेष्टि (सदाशिव)के सहकार में जब वर्षा होती है, तभी सृष्टि होती है तथा श्रीपति, स्थिति, रति और फिर प्रलयरूपी रुद्र उपस्थित होते हैं।।२१८।।

पञ्चाननो रसास्वादी षडाननो रसाम्बुधिः।
कृष्णवर्णः शशी यत्र यत्र सारञ्च तत्त्रयम्।।२१९।।

पंचानन रस का स्वादु लेने वाले हैं षडानन। रस के सागर हैं जहाँ पर कृष्ण वर्ण वाले शशी (चन्द्रमा) हैं तथा जहाँ तीनों ही सार, ब्रह्मा, विष्णु और शिव उपस्थित हैं।।२१९।।

प्रयोजनं फलं पक्वं साधनं फलकारणम्।
शुक्लो रक्तस्तथा पीतः कृष्णश्च नीलिमो नीलः।।२२०।।

प्रयोजन पका हुआ फल है तथा साधन फल का कारण अर्थात् साधन से पका हुआ फल प्राप्त होता है। भले ही वह फल सफेद, लाल, पीला, काला और नीला तथा नीलिमा युक्त हो।।२२०।।

अध ऊर्ध्वो भवेत् पद्मो मन्त्रयोगी योगेश्वरः।
पश्चिमाभिमुखं पूर्वममरार्थो विपर्ययः।।२२१।।
ऊर्ध्वाननश्चन्द्रनाथः पश्चिमाचलयास्थितः।
उदयः शुक्लरूपश्च अग्रे रक्तसमाकृतिः।।२२२।।
चराचरः कृष्णवर्णः पीते मृत्युर्विमुञ्चति।

वहाँ नीचे और ऊपर कमल होता है और मन्त्रयोगी और योगेश्वर होते हैं। अमर अर्थ वाले देवता पूर्व में पश्चिम की ओर मुख करके मन्त्रयोगी और योगेश्वर स्थित हैं तथा ऊपर को मुख करके चन्द्रनाथ पश्चिम पर्वत पर स्थित हैं। जिनका उदय शुक्लरूप है और आगे रक्त के समान आकृति है। वहाँ चर और अचर है, कृष्णवर्ण का जल है, जिसके पीने पर मृत्यु छोड़ जाती है।।२२१-२२२।।

पश्चाचारो मूलाधारो नकुले तत्त्वचिन्तनम्।।२२३।।
विद्यासाध्ये ज्ञानरथे गमने परमा गतिः।
स्वभावोऽरिभावो भावस्तदूर्ध्वे कुलसाधनम्।।२२४।।

निष्कलं ब्रह्मसायुज्यं सम्भवं सकलं न च।
कल्पान्ते कल्पनासिद्धिर्ब्रह्मादिदेवता यतः॥२२५॥

वहीं पर पश्वाचार मूल आधार है और नकुल अर्थात् अकुल (शिव) में तत्त्व का चिन्तन है। विद्या द्वारा साध्य ज्ञान रथ में गमन करने पर परम गति प्राप्त होती है। स्वभाव अरि भाव और भाव उसके ऊपर कुल का साधन है। निष्कल ब्रह्म का मिलना है और सम्भव सकल नहीं है। कल्प के अन्त में कल्पना की सिद्धि होती है और तभी ब्रह्मादि देवता की भी सिद्धि होती है॥२२३-२२५॥

वामभावो महाभावः सकलमूर्तिसेवनम्।
स्वभावः सुभावो भावो विभावो ह्यंशरूपकः॥२२६॥

वामभाव ही महाभाव है। वाम भाव ही समस्त मूर्त्तियों की सेवा का साधन है, स्वभाव ही सुन्दर भाव है, भाव-विभाव है और विभाव है, जो हंस रूपक है। अर्थात् वामाचार में जो स्त्रीपुरुष हैं, वे विभाव हैं। उनका अपना स्वभाव ही सुन्दर भाव है, जो हंस-शिव और शक्ति स्वरूप है॥२२६॥

वामाचारः पञ्चभावः पञ्चरससमन्वितः।
स्वयं कामकला भूत्वा यजनं परमं प्रियम्॥२२७॥

वामाचार पाँचवाँ भाव है, जो पाँच रसों (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन) से समन्वित है। जिसमें स्वयं ही स्त्री-पुरुष कामदेव की कला होकर परम प्रिय यजन (यज्ञ) कार्य करते हैं॥२२७॥

सुभावो युगलध्यानं योगज्ञानसमन्वितम्।
भावः सुललिताकारः परस्पररसान्वितः॥२२८॥
विदग्धा रसिकं वेत्ति रसज्ञो रससाधनम्।

सुभाव (सुन्दर भाव) स्त्री-पुरुष के परस्पर ध्यान को कहा जाता है, जो योग के ज्ञान से युक्त होता है। अर्थात् योग के ज्ञान से युक्त स्त्री-पुरुष के परस्पर ध्यान को सुभाव कहा जाता है। भाव सुललिताकार होता है, अर्थात् सुन्दर स्त्री के आकार का होता है। तथा वह परस्पर एक दूसरे में मिल कर एक रस होने के आकार का होता है। जो विदग्धा है, अर्थात् जिसने रसास्वाद लिया है,वह स्त्री रसिक को जानती है तथा जो रस को जानने वाला पुरुष है, वह रस के साधन को जानता है॥२२८-२२८.५॥

क्रियाभावो विभावानामेकभावो विधिर्मतः॥२२९॥
शिवभावो यजेद् वामा स्वयं वामाविदूरतः।
माधुर्यवीर्यरसिका विदग्धा रसिकप्रियाः॥२३०॥

योगभोगध्यानज्ञानजपयज्ञादिका क्रिया।
यद् यदाचरते योगी योगिनी तत्करिष्यति॥२३१॥
योगिना योगिनी साध्या सत्यसङ्कल्प ईश्वरी।
विभावो वामानां भावो रहस्यं कालसाधनम्॥२३२॥
शैवाः शैवपरा मन्त्रा प्रेतो मृत्युञ्जयादिकः।

नायक-नायिका (~~स्त्री और पुरुषों~~) की क्रिया का भाव क्रिया भाव है, अर्थात् वामाचार में वे दोनों जो परस्पर कार्य कर रहे हैं, वह क्रिया भाव कहा गया तथा दोनों का एकभाव होना विधि माना गया है। उस समय वामा स्वयं शिवभाव का पूजन करती है और स्वयं विशेष दूरी से शिव भाव का यजन करती है। माधुर्य मधुरता और वीरता से युक्त रस का आनन्द वाला होता है और रसिक की प्रिया रस में लीन हो जाती है। उस समय योग (चित्तवृत्ति का निरोध) भोग (मैथुन का आनन्द, ज्ञान, जप, यज्ञ आदि क्रिया जो भी है, जिसे योगी चाहता है), योगिनी उसे करेगी। इस प्रकार योगी द्वारा सत्य संकल्प ईश्वरी योगिनी सिद्ध करने योग्य है। विभाव वामाओं का भाव है और रहस्य काल का साधन है। शिव जी परक जो मन्त्र है, वे शैव हैं तथा प्रेत अर्थात् उपलब्धि मृत्यु को जीतना आदि है।।२२९-२३२.५।।

तद्भावभाविनां भावस्तारिणी कालभाविनी॥२३३॥
अथवा कालभावेन योगेन ब्रह्मचिन्तनम्।
ऐक्यं विलक्षणपक्षः सिद्धान्तः कौलसाधनम्॥२३४॥

उनके भाव में लीन हो जाना भाव है और कालभाविनी तारिणी है, अथवा काल के भाव के योग द्वारा ब्रह्म का चिन्तन है। एकता विलक्षण पक्ष है और परस्पर एकीभूत हो जाना विलक्षण पक्ष है तथा कौल का साधन सिद्धान्त है।।२३३-२३४।।

ध्यानज्ञानद्वयाभ्यासे भावलाभो भविष्यति।
कल्पनाज्जायते सिद्धिः पक्वेन अच्युतादिकः॥२३५॥

ध्यान और ज्ञान दोनों का अभ्यास करने पर भाव का लाभ होगा, क्योंकि कल्पना से सिद्धि होती है। तथा सिद्धि में परिपक्व हो जाने पर अच्युत (विष्णु) आदि सिद्ध हो जाते हैं।।२३५।।

कल्पान्ते कल्पनाभावः क्रमे स्वभावं पश्यति।
सिद्धान्तोऽनन्तभावः पञ्चमी तद् गरीयसी॥२३६॥

कल्प के अन्त में कल्पनाभाव होता है तथा क्रम में वह स्वभाव को देखता है। सिद्धान्त अनन्त भाव है, पञ्चमी सिद्धि उससे भी महान् है।।२३६।।

विमर्श—पंचमी सिद्धि यहाँ पंचमकार में पांचवी मैथुन वाली ही है।

ऊर्ध्वशून्यमधःशून्यं मध्यशून्यं निरामयम्।
ऊर्ध्वशून्ये महाकालः अधःशून्ये च कालिका॥२३७॥
मध्यशून्यसमायोगे अमलानन्दः अव्ययः।
योगिनो योगिनीयोगे योगेश्वरीं प्रपश्यति॥२३८॥

ऊर्ध्वशून्य अधः शून्य और मध्य शून्य ये तीन शून्य निरामय (निष्कलंक विशुद्ध) हैं। ऊर्ध्वशून्य में महाकाल, अधःशून्य में कालिका है तथा मध्य शून्य के समायोग में अमलानन्द अव्यय है। योगी योगिनी के योग में योगेश्वरी को देखता है।।२३७-२३८।।

योगश्च द्विविधः प्रोक्तो युक्तो युञ्जान एव च।
युक्तयोगी रसभोगी युञ्जानो मुक्तिदायकः॥२३९॥

योग दो प्रकार का कहा गया है। युक्त अर्थात् जो योग में लग गया है, वह युक्त योग है। दूसरा है युञ्जान अर्थात् जो योग के अभ्यास में व्यस्त है। युक्त योगी अर्थात् जो योगी योग में सफल हो चुका है, वह रस (परमानन्द) का भोग करने वाला है तथा जो योगाभ्यास में लगा हुआ है, वह उसका लगना मुक्ति देने वाला है।।२३९।।

नवचक्रं कलाधारं त्रिशून्यं पञ्चव्योमकम्।
स्वदेहं यो न जानाति स योगी नामधारकः॥२४०॥
षट्चक्रञ्च षडाम्नायं कामकलाप्रकाशिनीम्।
षट्शून्यं कुण्डलीं कालीं चिच्चैतन्यस्वरूपिणीम्॥२४१॥
पञ्चकामं त्रिशून्यञ्च पञ्चाम्नायं शिवोदितम्।
समायोगे नवचक्रे योगिनो ध्यानतत्पराः॥२४२॥

नवचक्र, कलाधार, तीन शून्य और पाँच व्योम वाले अपने शरीर को नहीं जानता है, वह योगी नामधारक है। तथा षट्चक्र षडाम्नाय, कामकला प्रकाशिनी, छः शून्य वाली कुण्डली काली जीव स्वरूप वाली, पाँच काम, तीन शून्य शिवोदित पंचाम्नाय नवचक्र के समायोग में योगी ध्यान में तत्पर रहता है।।२४०-२४२।।

मूलाधारादिमाख्यातं नादबिन्दुगुरुपदम्।
ज्ञानिना शून्यं शून्यञ्च नवचक्रं प्रकीर्तितम्॥२४३॥

नाद बिन्दु और गुरु का पद मूलधार कहा गया है। ज्ञानी से शून्य शून्य नवचक्र कहा गया है।।२४३।।

कलाधारं कलाधारं कुलाधारञ्च योगिनाम्।
ध्यानिनां षोडशाधारं मूलादिञ्च भ्रुवान्तकम्॥२४४॥

ज्ञानिनां शक्तिमाधारमाधेयं परमात्मनः।

कलाधार कला का आधार है और कुलाधार योगियों का आधार है। ध्यानियों के सोलह आधार हैं। भौंहों के अन्त तक मूलाधार है। ज्ञानियों की शक्ति आधार है, आधेय परमात्मा का है।।२४४-२४४।।

इतराख्यं बाणलिङ्गं स्वयम्भूलिङ्गत्रितयम्।।२४५।।
पूर्वाम्नायं कुण्डलिनीं लिङ्गं शून्ये समायुताम्।

दूसरा बाणलिंग है, स्वयंभू के तीन लिंग हैं। पूर्वाम्नाय कुण्डलिनी लिङ्ग है, जो शून्य में समाई हुई है।।२४५।।

महाकालः पञ्चवक्त्रः अक्षोभ्यो भैरवः स्वयम्।।२४६।।
काली तारा तथा वामा त्रिपुरे त्रिपुरे स्थिता।

महाकाल पाँच मुख वाला है और भैरव स्वयं अक्षोभ्य हैं। काली, तारा तथा वामा तीनों त्रिपुर वाली देवियां त्रिपुर में स्थित हैं।।२४६।।

स्थूला सूक्ष्मा ज्योतिः क्वचित् सच्चिदानन्दविग्रहा।।२४७।।
ध्यानिनां परमं ध्यानं नादबिन्दुश्च योगिनाम्।
त्रिमात्रा ज्ञानिनां प्राणाः पञ्चमात्रा च कर्मिणाम्।।२४८।।

कहीं स्थूल और सूक्ष्म ज्योति है? कहीं सत् चित् और आनन्द शरीर है? ध्यानियों के वे परम धाम हैं और योगियों के नाद और बिन्दु हैं। तीन मात्रायें ज्ञानियों के प्राण हैं और पाँच मात्रायें कर्मियों के प्राण हैं।।२४७-२४८।।

महाशून्यं महाकाशः सहस्रारो द्विरूपकः।
ऊर्ध्वशून्यं द्विदलस्थं शक्त्याधारः अनन्तकः।।२४९।।
मध्यशून्यं हृदाकाशो दीपवद् हृदये ग्रस्तः।
ग्रस्तत्यागी जीवो भोगी जीवो दीपान्तरो यथा।।२५०।।

महाशून्य महाकाश है, द्वो रूप वाला सहस्रार है। ऊर्ध्वशून्य दो दल में स्थित है, वही शक्ति का आधार है और अनन्तक (कभी अन्त न होने वाला है) मध्यशून्य हृदयाकाश है, जो दीप के समान हृदय में ग्रस्त है। ग्रस्त त्यागी जीव है, जैसे भोगी जीव जो द्वीपों के मध्य में रह रहा है।।२४९-२५०।।

एकवृक्षसमारूढो द्विखगः शक्तिसंयुतः।
समोज्ज्वला लीला केलिः पिण्डब्रह्माण्डव्यापिता।।२५१।।

एक वृक्ष पर चढ़ा हुआ दूसरा पक्षी शक्ति संयुत है, उस दूसरे पक्षी की क्रीडा केलि पूरी तरह से उज्ज्वल है तथा उस दूसरे पक्षी का पिण्ड ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

यहाँ पर सांख्य का वर्णन है, एक वृक्ष पर दो पक्षी हैं। एक फल को खाकर स्वाद ले रहा है, दूसरा देख रहा है। स्वादु लेने वाला पुरुष है, जिसे आत्मा या जीव कहा जाता है। यही पक्षी जीव है, जो शक्ति संयुत तथा इस जीव की ही समस्त क्रीडा है। तथा यह ऐसी क्रीडा करता है, जो उज्ज्वल है। इसी जीव रूप पक्षी का शरीर ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, क्योंकि यह निराकार है, इसलिये स्वाभाविक है कि व्याप्त होगा ही, परन्तु प्रकृति रूपी शरीर की व्याप्ति केवल शरीर तक ही है।।२५१।।

ग्रासकर्ता भोक्ता भूत्वा आदेशप्रतिपालकः।
पूर्वकृतः अत्युत्कटः सुखदुःखेन योजितः।।२५२।।

यह जीवात्मा ग्रासकर्ता है और भोक्ता अर्थात् खाने और भोगने वाला है। अतः ग्रासकर्ता और भोक्ता होकर उस प्रकृति (शक्ति) के आदेश का पालन करने वाला है; क्योंकि पुरुष प्रकृति के आदेश का पालन करता है अर्थात् आंख, कान, नाक से देखकर सुनकर सूंघकर मन के द्वारा यह प्रकृति पुरुष से सब कुछ कराती है। यह जो कहती है पुरुष को करना पड़ता है। वही पूर्व में किया गया है, अर्थात् पूर्व में भी वह कहीं था तथा वहाँ उसने कर्म किया। तथा वह अत्यन्त ही शक्तिशाली है तथा सुख और दुःख से योजित है। अर्थात् सुख और दुःख इस जीवात्मा को ही होता है, शरीर को नहीं। चोट शरीर को लगती है, कभी-कभी शरीर पूरा कट जाता है, तब भी दुःख जीवात्मा को ही होता शरीर को नहीं होता। यदि दुःख शरीर को होता तो जीवात्मा के निकल जाने पर अर्थात् व्यक्ति के मर जाने पर शरीर आहें भरता, चिल्लाता, रोता, आँसू बहाता, परन्तु ऐसा नहीं होता। शरीर को जला देने पर भी वह उठ कर नहीं भागता है।।२५२।।

योगिनां पञ्चव्योमं हि देहव्याप्तकुलाकुलम्।
अनङ्गः अङ्गरूपेण पञ्चव्योमे प्रतिष्ठितः।।२५३।।

योगियों के पाँच व्योम हैं, वह जो कुल और अकुल दो शरीर में व्याप्त हैं। अंग रूप से कामदेव पंच व्योम में प्रतिष्ठित है।।२५३।।

विमर्श—पांच व्योग हैं—आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाश। कहा भी गया है कि जो पंचव्योम नवचक्र १६ आधार ३ लक्ष्य को भली-भाँति नहीं जानता वह केवल नाम मात्र का योगी है अतः सभी आकाशों का ध्यान करना है।

कवलितोऽहङ्कारः त्रिगुणः त्रिकलान्वितः।
पञ्चमः सुसमायोगः त्रिपूर्णो व्योमपञ्चकः।।२५४।।

उस जीवात्मा द्वारा अहंकार कवलित है तथा वह अहंकार तीन गुण वाला है। वे गुण हैं सत्त्व, रजस् और तमस्। इन तीनों गुणों के आधार पर स्थित अहंकार व्यक्ति को उस तरह के स्वभाव का बनाता है। इसी के आधार पर मनुष्य सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी बनता है तथा त्रिगुण तीन कलात्मक है। पंचम सुसमायोग है तथा त्रिपूर्ण व्योमपंचक है।।२५४।।

मन्त्रयोगे सुयोगे च सच्चिदानन्दो लभ्यते।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।।२५५।।

मन्त्रयोग और सुन्दर योग में सच्चिदानन्द प्राप्त किये जाते हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव प्राप्त किये जाते हैं।।२५५।।

सदाशिवः खगाकारो देव्याः पर्यङ्कवाहनः।
खमध्ये कुरु चात्मानं गकारे खः समागतः।।२५६।।
यथाध्यानं यथाध्यानं यथाध्यानं प्रकाशितः।

सदाशिव खगाकार हैं, अर्थात् 'ख' और 'ग' आकार वाले हैं तथा वे देवी के पर्यङ्क (पलंग) को वहन करने वाले हैं, अर्थात् सदाशिव पक्षी के रूप में देवी उमा के पर्यङ्क पलंग को वहन करने वाले हैं। वे 'ख' के मध्य स्वयं को करे और 'ग' कार में 'ख' समाहित है। उनका जैसे-जैसे ध्यान किया जाता है। जैसे ये प्रकाशित होते हैं।।२५६.५।।

आकाशाज्जायते वायुर्वायोरुत्पद्यते रविः।।२५७।।
रवेरुत्पद्यते तोयं तोयाद् उत्पद्यते मही।
मही विलीयते तोये तोयं विलीयते रवौ।।२५८।।
रविर्विलीयते वायौ वायुर्विलीयते च खे।
ध्यानयोगभूतशुद्धिप्राणसंयमनादिना ।।२५९।।
मन्त्रयोगादिप्रत्यक्षाः सिद्ध्यन्ते सिद्धिलक्षणाः।
ज्ञानिनां ज्ञानचिन्ता च ऐक्यपक्वेन मुक्तिदः।।२६०।।

सृष्टि के समय आकाश से वायु उत्पन्न होती है और वायु से सूर्य उत्पन्न होते हैं। रवि से जल पैदा होता है और जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है। प्रलयकाल में पृथ्वी जल में विलीन हो जाती है। जल सूर्य में (अग्नि तत्त्व) में विलीन हो जाता है। सूर्य वायु तत्त्व में विलीन हो जाता है और वायु तत्त्व आकाश तत्त्व में विलीन हो जाता है। प्राणसंयम (प्राणायाम) आदि द्वारा ध्यानयोग से पञ्चभूत शुद्धि होती है अर्थात् प्राणायाम आदि द्वारा हो जाता है। अर्थात् प्राणायाम आदि द्वारा यह दृश्यमान

पंचभूत वाला शरीर शुद्ध होकर अत्यन्त नीरोग होकर बलयुक्त और अधिक काल तक स्थिर हो जाता है तथा मन्त्रयोग आदि जो प्रत्यक्ष किये जाते हैं, उनसे सिद्धि के लक्षण सिद्ध होते हैं। ज्ञानियों की ज्ञानचिन्ता एकता परिपक्व होने से मुक्ति देने वाली होती है।।२५७-२६०।।

पञ्चभूतप्रपञ्चेषु मायागुणसमन्वितः।
न बद्धः परमज्ञाने खगो बन्धविमुक्तकः।।२६१।।

पंचभूत प्रपंचों में अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पाँच महाभूतों में माया का गुण समाया हुआ है। अर्थात् इन महाभूतों में प्रकृति कहो, माया कहो या दुर्गा-चण्डी जो भी कहो, उसके सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीनों गुण समाये हुए हैं। परन्तु खग पक्षीरूपी जीव इसके परम ज्ञान में बँधा हुआ नहीं है, वह उसके बन्धन से मुक्त है।।२६१।।

मनोभूतं विषयञ्च शून्यञ्च परमात्मनः।
पापं पुण्यं भवेत् शून्यं ज्ञानशून्ये मनोगते।।२६२।।

मन में पैदा होने वाले विषय परमात्मा में शून्य हो जाते हैं, तब मन में ज्ञान शून्य हो जाने से पाप और पुण्य भी शून्य हो जाते हैं।।२६२।।

मनोविलयो मोक्षश्च नेयो ध्येयो द्विधा मतः।
वासनासंक्षये नेयो ध्येयो वै अच्युताच्युते।।२६३।।

।।इति रहस्यषडाम्नायनिगमसन्दर्भे तन्त्रे चतुर्थः पटलः।।

◆ ◆ ◆

मन का उस परमात्मा में विलय होना और मोक्ष होना ये नेय और ध्येय दो प्रकार के माने गये हैं। मन का परमात्म तत्त्व में लीन होना नेय है तथा मोक्ष इस आत्मा का ध्येय (लक्ष्य) है। वासना (इच्छाओं) का नष्ट हो जाना नेय है और अच्युता अच्युते अर्थात् अच्युत में अच्युत होना अर्थात् विष्णु में मिल कर विष्णु हो जाना मोक्ष है।।२६३।।

इस प्रकार रहस्य षडाम्नाय तन्त्र में चतुर्थ पटल समाप्त हुआ।

ग्रन्थश्च समाप्तः

◆ ◆ ◆

व्याख्याकार

डॉ. रूपेश कुमार चौहान

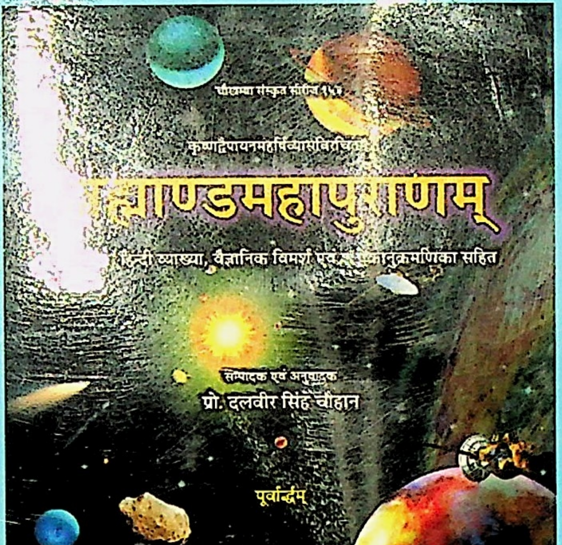

चौखम्बा संस्कृत सीरीज [illegible]

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचित

ह्माण्डमहापुराणम्

हिन्दी व्याख्या, वैज्ञानिक विमर्श एवं [illegible]कानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक

प्रो. दलवीर सिंह चौहान

पूर्वार्द्धम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

₹ 2000.00 (Set in 2 Vols.)

designed by Shreyash GRAPHICS, mo. 9839814784

Also can be had from : **Chowkhamba Krishnadas Academy**, Varanasi.

ISBN : 978-81-7080-485-7

₹ 225.00